सुनो भाई साधो

(कबीर-वाणी)

नवीनतम प्रकाशन

एस धम्मो सनंतनो–१
एस धम्मो सनंतनो–२
एस धम्मो सनंतनो–३
जिन-सूत्र–१
जिन-सूत्र–२
सबै सयाने एक मत
अध्यात्म-उपनिषद
महागीता–१
महागीता–२
महागीता–३
महावीर-वाणी–३
गीता-दर्शन अध्याय १८
पिवपिव लागी प्यास
साधना-सूत्र
सहज समाधि भली
मेरा मुझमे कुछ नही
भजगोविन्दम्

साहित्य पुनर्मुद्रित

महावीर या महाविनाश
ताओ-उपनिषद–१

साहित्य–शीघ्र प्रकाश्य

जिन-सूत्र–३
जिन-सूत्र–४
गीता-दर्शन–अध्याय १२
गीता-दर्शन–अध्याय १३–१४
गीता-दर्शन–अध्याय १५–१६
गीता-दर्शन–अध्याय १७
गीता-दर्शन–अध्याय ३
नहिं राम बिन ठाव
कहै कबीर दीवाना
कठोपनिषद
समाधि के सप्त द्वार
कैवल्य उपनिषद
बिन बाती बिन तेल



सुनो भाई साधो

सत कबीर के चुने हुए दस विशिष्ट पदो पर

भगवान श्री रजनीश के दस प्रवचन

दिनाक ११ सितम्बर से २० सितम्बर, १९७४

श्री रजनीश आश्रम, पूना

सकलन

स्वामी चैतन्य भारती

सपादन

स्वामी चैतन्य कीर्ति

कला-सज्जा

स्वामी आनद अर्हत

रजनीश फाउंडेशन प्रकाशन

१९७६

प्रकाशक
मा योग लक्ष्मी
सचिव, रजनीश फाउंडेशन
श्री रजनीश आश्रम,
१७, कोरेगाव पार्क,
पूना–४११ ००१ (महाराष्ट्र)

प्रथम संस्करण
११ दिसम्बर, १९७६

मूल्य ३० रुपये

मुद्रक
नारायण मु. उस्कैकर
श्री रजनीश आश्रम प्रेस,
पुणे ४११ ००१

अनुक्रम

प्रवचन-क्रम — **पृष्ठ**

दिनाक ११ नवम्बर, १९७६,
श्री रजनीश आश्रम, पूना

माया महाठगिनी हम जानी।
निरगुन फास लिए कर डोलै, बोलै मधुरी बानी।।
केसव के कमला होइ बैठी, सिव के भवन भवानी।
पडा के मूरत होइ बैठी, तीरथ हू में पानी।।
जोगि के जोगिन होइ बैठी, राजा के घर रानी।
काहू के हीरा होइ बैठी, काहू के कौडी कानी।।
भक्तन के भक्ति होइ बैठी, ब्रह्म के ब्रह्मानी।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, यह सब अकथ कहानी।।

१

माया महाठगिनि हम जानी

कबीर अनूठे है। और प्रत्येक के लिए उनके द्वारा आशा का द्वार खुलता है। क्योकि कबीर से ज्यादा साधारण आदमी खोजना कठिन है। और अगर कबीर पहुच सकते है, तो सभी पहुच सकते है। कबीर निपट गवार है, इसलिए गवार के लिए भी आशा है, बे-पढे-लिखे है इसलिए पढे-लिखे होने से सत्य का कोई भी सबध नही है। जाति-पाति का कुछ ठिकाना नही कबीर की—शायद मुसलमान के घर पैदा हुए, हिंदू के घर बडे हुए। इसलिए जाति-पाति से परमात्मा का कुछ लेना-देना नही है।

कबीर जीवन भर गृहस्थ रहे—जुलाहे—बुनते रहे कपडे और बेचते रहे, घर छोड हिमालय नही गये। इसलिए घर पर भी परमात्मा आ सकता है। हिमालय जाना आवश्यक नही। कबीर ने कुछ भी न छोडा और सभी कुछ पा लिया। इसलिए छोडना पाने की शर्त नही हो सकती।

और कबीर के जीवन मे कोई भी विशिष्टता नही है। इसलिए विशिष्टता अहकार का आभूषण होगी, आत्मा का सौंदर्य नही।

कबीर न धनी है, न ज्ञानी है, न समादृत है, न शिक्षित है न सुसस्कृत है। कबीर जैसा व्यक्ति अगर परमज्ञान को उपलब्ध हो गया तो तुम्हे भी निराश होने की कोई भी जरूरत नही। इसलिए कबीर मे बडी आशा है।

बुद्ध अगर पाते है तो पक्का नही कि तुम पा सकोगे। बुद्ध को ठीक से समझोगे तो निराशा पकडेगी, क्योकि बुद्ध की बडी उपलब्धिया है पाने के पहले। बुद्ध सम्राट है। इसलिए सम्राट अगर धन से छूट जाए, आश्चर्य नही। क्योकि जिसके पास सब है, उसे उस सब की व्यर्थता का बोध हो जाता है। गरीब के लिए बडी कठिनाई है—धन से छूटना। जिसके पास है ही नही, उसे व्यर्थता का कैसे पता चलेगा? कोई चीज व्यर्थ है इसे जानने के पहले, कम-से-कम उसका अनुभव तो होना चाहिए। तुम कैसे कह सकोगे कि धन व्यर्थ है? धन है कहा? तुम हमेशा अभाव मे जिए हो, तुम सदा झोपडे मे रहे हो—तो महलो मे आनद नही है यह तुम कैसे कहोगे? और तुम कहते भी रहो, तो भी यह आवाज तुम्हारे हृदय की आवाज न

हो सकेगी, यह दूसरो मे सुना हुआ सत्य होगा। और गहरे मे धन तुम्हे पकडे ही रहेगा।

बुद्ध का समझोगे, तो हाथ-पैर ढीले पड जाएगे।

बुद्ध कहते है, स्त्रिया मे सिवाय हड्डी, मास-मज्जा के और कुछ भी नही है, क्योकि बुद्ध को सुदरतम स्त्रिया उपलब्ध थी, तुमने उन्हे केवल फिल्म के परदे पर देखा है। तुम्हारे और उन सुदरतम स्त्रियो के बीच बडा फासला है। वे सुदर स्त्रिया तुम्हारे लिए अति मनमोहक है। तुम सब छोड कर उन्हे पाना चाहोगे। क्योकि जिसे पाया नही है वह व्यर्थ है, इसे जानने के लिए बडी चेतना चाहिए।

कबीर गरीब है, और जान गये यह सत्य कि धन व्यर्थ है। कबीर के पास एक साधारण-सी पत्नी है, और जान गये कि सब राग-रग, सब वैभव-विलास, सब सौदर्य मन की ही कल्पना है।

कबीर के पास बडी गहरी समझ चाहिए। बुद्ध के पास तो अनुभव से आ जाती है बात, कबीर का तो समझ से ही लानी पडेगी।

गरीब का मुक्त होना अति कठिन है। कठिन इस लिहाज से कि उसे अनुभव की कमी बोध से पूरी करनी पडेगी, उसे अनुभव की कमी ध्यान से पूरी करनी पडेगी। अगर तुम्हारे पास भी सब हो, जैसा बुद्ध के पास था, तो तुम भी महल छोड के भाग जाओगे क्योकि कुछ और पाने को बचा नही, आशा टूटी, वासना गिरी भविष्य मे कुछ और है नही वहा—महल सूना हो गया!

आदमी महत्त्वाकाक्षा मे जीता है। महत्त्वाकाक्षा कल की—और बडा होगा, और बडा होगा, और बडा होगा दौडना रहना है। लेकिन आखिरी पडाव आ गया अब कोई गति न रही—छोडोगे नही तो क्या करोगे? तो महल या तो आत्मघात बन जाता है या आत्मक्राति। पर कबीर के पास कोई महल नही है।

बुद्ध बडे प्रतिभाशाली व्यक्ति है। जो भी श्रेष्ठतम ज्ञान था उपलब्ध, उसमे दीक्षित किये गये थे। शास्त्रो के ज्ञाता थे। शब्द के धनी थे। बुद्धि बडी प्रखर थी। सम्राट के बेटे थ। और सब तरह मे सुशिक्षा हुई थी।

कबीर सडक पर बडे हुए। कबीर के मा-बाप का कोई पता नही। शायद कबीर नाजायज सतान हो। तो मा ने उसे रास्ते के किनारे छोड दिया था—बच्चे को—पैदा होते ही। इसलिए मा का कोई पता नही। कोई कुलीन घर से कबीर आये नही। सडक पर ही पैदा हुए जैसे, सडक पर ही बडे हुए जैसे। जैसे भिखारी होना पहले दिन से ही भाग्य मे लिखा था। यह भिखारी भी जान गया कि धन व्यर्थ है, तो तुम भी जान सकोगे। बुद्ध से आशा नही बधती। बुद्ध की तुम पूजा कर सकते हो। फासला बडा है, लेकिन बुद्ध-जैसा होना तुम्हे मुश्किल मालूम पडेगा। जन्मो-जन्मो की यात्रा लगेगी। लेकिन कबीर और तुम मे फासला जरा भी नही है। कबीर जिस सडक पर खडे है—शायद तुमसे भी पीछे खडे है, और अगर

कबीर तुमसे भी पीछे खडे होकर पहुच गये, तो तुम भी पहुच सकते हो।

कबीर जीवन के लिए बडा गहरा सूत्र हो सकते है। इसे तो पहले स्मरण मे ले ले। इसलिए कबीर को मैं अनूठा कहता हू। महावीर सम्राट के बेटे हैं, कृष्ण भी राम भी, बुद्ध भी, वे सब महलो से आये है। कबीर बिल्कुल सडक से आये हैं, महलो से उनका कोई भी नाता नही है। कहा है कबीर ने कि कभी हाथ से कागज और स्याही छुई नही—'मसी कागद छुओ न हाथ'।

ऐसा अपढ आदमी, जिसे दस्तखत करने भी नही आते, इसने परमात्मा के परम ज्ञान को पा लिया—बडा भरोसा बढता है। तब इस दुनिया मे अगर तुम वचित हो तो अपने ही कारण वचित हो, परिस्थिति को दोष मत देना। जब भी परिस्थिति को दोष देने का मन में भाव उठे, कबीर का ध्यान करना। कम-से-कम मा-बाप का तो तुम्हे पता है, घर-द्वार तो है, सडक पर तो पैदा नही हुए। हस्ताक्षर तो कर ही लेते हो। थोडी-बहुत शिक्षा हुई है, हिसाब-किताब रख लेते हो। वेद, कुरान, गीता भी थोडी पढी है। न सही बहुत बडे पडित छोटे-मोटे पडित तो तुम भी हो। तो जब भी मन होने लगे परिस्थिति को दोष देने का, कि पहुच गए होगे बुद्ध, सारी सुविधा थी उन्हे, मैं कैसे पहुचू, तब कबीर का ध्यान करना। बुद्ध के कारण जो असतुलन पैदा हो जाता है कि लगता है हम न पहुच सकेगे—कबीर तराजू के पलडे को जगह पर ले आते है। बुद्ध से ज्यादा कारगर है कबीर। बुद्ध थोडे-से लोगो के काम के हो सकते है। कबीर राजपथ है। बुद्ध का मार्ग बडा सकीर्ण है, उसमे थोडे ही लोग पा सकेगे, पहुच सकेगे।

बुद्ध की भाषा भी उन्ही की है—चुने हुए लोगो की। एक-एक शब्द बहुमूल्य है लेकिन एक-एक शब्द सूक्ष्म है। कबीर की भाषा सबकी भाषा है—बे-पढे-लिखे आदमी की भाषा है। अगर तुम कबीर को न समझ पाए, तो तुम कुछ भी न समझ पाओगे। कबीर को समझ लिया, तो कुछ भी समझने को बचता नही। और तुम कबीर को जितना समझोगे, उतना ही तुम पाओगे कि बुद्धत्व का कोई भी सबध परिस्थिति से नही। बुद्धत्व तुम्हारी भीतर की अभीप्सा पर निर्भर है—और कही भी घट सकता है, झोपडे मे महल मे, बाजार में, हिमालय पर, पढी-लिखी बुद्धि मे, गैर-पढी-लिखी बुद्धि मे, गरीब को, अमीर को, पडित को अपढ को, कोई परिस्थिति का सबध नही है।

ये जो वचन इस समाधि शिविर मे हम कबीर के लेने जा रहे है, इनका शीर्षक है 'सुनो भाई साधो'। और कबीर अपने हर वचन मे कही न कही साधु को ही सबोधित करते है। इस सबोधन को थोडा समझ ले, फिर हम उनके वचनो मे उतरने की कोशिश करे।

मनुष्य तीन तरह से पूछ सकता है। एक कुतूहल होता है—बच्चो-जैसा। पूछने के लिए पूछ लिया कोई जरूरत न थी कोई प्यास भी न थी, कोई प्रयोजन भी न

था। ऐसे ही मन की खुजली थी। उठ गया प्रश्न, पूछ लिया। उत्तर मिले तो ठीक, न मिले तो ठीक, दुबारा पूछने का भी खयाल नही आता—छोटे बच्चे जैसा पूछते हैं। रास्ते से गुजर रहे है, पूछते है, यह क्या है? वृक्ष क्या है? वृक्ष हरे क्यो हैं? सूरज सुबह क्यो निकलता है, रात क्यो नही निकलता? अगर तुमने उत्तर दिया तो कोई उत्तर सुनने के लिए उनकी प्रतीक्षा नही है। जब तुम उत्तर दे रहे हो, तब तक वे दूसरा प्रश्न पूछने चले गये। तुम उत्तर न भी दो, तो भी कुछ जोर न डालेंगे कि उत्तर दो। तुम दो या न दो, यह असगत है, प्रसग के बाहर है। बच्चा पूछने के लिए पूछ रहा है। बच्चा केवल बुद्धि का अभ्यास कर रहा है, जैसा पहली दफे जब बच्चा चलता है, तो बार-बार चलने की कोशिश करता है—कही पहुचने के लिए नही, क्योकि अभी बच्चे की क्या मजिल है! अभी तो चलने मे ही मजा लेता है। अभी तो पैर चला लेता है, इससे ही बडा प्रसन्न होता है, नाचता है कि मैं भी चलने लगा। अभी चलने का कोई सबध मजिल से नही है, अभी चलना अपने-आप मे ही अभ्यास है। ऐसा ही बच्चा जब बोलने लगता है तो सिर्फ बोलने के लिए बोलता है। अभ्यास करता है। उसके बोलने मे कोई अर्थ नही है। पूछना जब सीख लेता है, तो पूछने के लिए पूछता है। पूछने में कोई प्रश्न नही है, सिर्फ कुतूहल है।

तो एक तो उस तरह के लोग है, वे बचकाने है—जो परमात्मा के सबध मे भी कुतूहल से पूछते है। मिले उत्तर ठीक, न मिले उत्तर ठीक। और कोई भी उत्तर मिले, उनके जीवन मे उस उत्तर से कोई भी फर्क न होगा। तुम ईश्वर को मानते रहो तो तुम वैसे ही जिओगे, तुम ईश्वर को न मानो तो भी तुम वैसे ही जिओगे।

यह बडी हैरानी की बात है कि नास्तिक और आस्तिक के जीवन मे कोई फर्क नही होता। तुम जीवन को देख के बता सकते हो कि यह आदमी आस्तिक है या नास्तिक है। नही, तुम्हे पूछना पडता है कि क्या आप आस्तिक है या नास्तिक! आस्तिक और नास्तिक के व्यवहार मे रत्ती भर का कोई फर्क नही होता। वैसा ही बेईमान यह, वैसा ही दूसरा। वे सब चचेरे-मौसेरे भाई है। कोई अतर नही है। एक ईश्वर को मानता है एक ईश्वर को नही मानता है। इतनी बडी मान्यता और जीवन मे रत्ती भर भी छाया नही लाती! कही कोई रेखा नही खिचती! दुकानदारी मे वह उतना ही बेईमान है जितना दूसरा, बोलने मे उतना ही झूठा है जितना दूसरा। न इसका भरोसा किया जा सकता है, न उसका। क्या जीवन मे कोई अतर नही आता आस्था से? तो आस्था दो कौडी की है। तो आस्था कुतूहल से पैदा हुई होगी, वह बचकानी है। ऐसी बचकानी आस्था को छोड देना चाहिए।

सबसे सतह पर कुतूहल है।

दूसरे, थोडी गहराई बढे, तो जिज्ञासा पैदा होती है। जिज्ञासा सिर्फ पूछने के लिए नही है—उत्तर की तलाश है, लेकिन तलाश बौद्धिक है, आत्मिक नही है। तलाश विचार की है, जीवन की नही है। जिज्ञासा से भरा हुआ आदमी, निश्चित

ही उत्सुक है, और चाहता है कि उत्तर मिले, लेकिन उत्तर बुद्धि मे सजो लिया जायेगा, स्मृति का अग बनेगा, जानकारी बढेगी, ज्ञान बढेगा—आचरण नही, जीवन नही। उस आदमी को बदलेगा नही। वह आदमी वैसा ही रहेगा—ज्यादा जानकार हो जाएगा।

जिज्ञासा पैदा होती है बुद्धि से।

फिर एक तीसरा तल है, जिसको मुमुक्षा कहा है। मुमुक्षा का अर्थ है जिज्ञासा सिर्फ बुद्धि की नही है, जीवन की है। इसलिए नही पूछ रहे है कि थोडा और जान ले, इसलिए पूछ रहे हैं कि जीवन दाव पर लगा है। इसलिए पूछ रहे हैं कि उत्तर पर निर्भर होगा कि हम कहा जाए, क्या करे, कैसे जिए। एक प्यासा आदमी पूछता है, पानी कहा है? यह कोई जिज्ञासा नही है। मरुस्थल मे तुम पडे हो, प्यास जगती है और तुम पूछते हो, पानी कहा है? उस क्षण तुम्हारा रोआ-रोआ पूछता है, बुद्धि नही पूछती। उस क्षण तुम यह नही जानना चाहते कि पानी की वैज्ञानिक परिभाषा क्या है। उस समय कोई तुमसे कहे कि पानी-पानी क्या लगा रखा है 'एच टू ओ' विज्ञान का उपयोग करो फार्मूला जाहिर है कि उद्जन और ऑक्सिजन से मिलकर पानी बनता है, दो मात्रा उद्जन, एक मात्रा आक्सीजन—'एच टू ओ'। लेकिन जो आदमी प्यासा है, उसे इससे कोई फर्क नही पडता कि पानी कैसे बनता है। यह सवाल नही है, पानी क्या है, यह भी सवाल नही है। यह कोई जिज्ञासा नही है पानी के सबध मे जानकारी बढाने के लिए। जानकारी बढाने के लिए यहा जीवन दाव पर लगा है, अगर पानी नही मिलता घडीभर और तो मृत्यु होगी। पानी पर ही जीवन निर्भर है। मृत्यु और जीवन का सवाल है।

मुमुक्षा का अर्थ है जिज्ञासा केंद्र पर पहुच गई। अब हमारे लिए यह सवाल ऐसा नही है कि ईश्वर है या नही, पूछ लिया बच्चो जैसा, या पूछ लिया दार्शनिको जैसा, एक बुद्धिगत सवाल, बुद्धिगत उत्तर खोजने मे लग गए, शास्त्रों मे गये। जिसको प्यास लगी है, वह शास्त्रों मे नही खोजेगा कि पानी का स्वरूप क्या है। जिसको प्यास लगी है, वह सरोवर चाहता है। जिसको प्यास लगी है, वह ऐसा ज्ञानी चाहता है जिसको पी के वह अपनी प्यास को बुझा ले। ज्ञान नही चाहता ज्ञानी को चाहता है।

मुमुक्षु गुरु को खोजता है। जिज्ञासु शास्त्र को खोजता है। कुतूहली किसी से भी पूछ लेता है।

कबीर उसको साधु कहते है, जो मुमुक्षु है। इसलिए उनका हर वचन इस बात को ध्यान में रख के कहा गया है 'सुनो भाई साधो'। साधु का मतलब है जो साधना के लिए उत्सुक है, जो साधक है। साधु का अर्थ है जो अपने को बदलने के लिए शुभ करने के लिए, सत्य करने के लिए आतुर है - जो साधु होने को उत्सुक है।

साधु शब्द बडा अद्भुत है। विकृत हो गया बहुत उपयोग से। साधु का अर्थ है

सीधा, सादा, सरल, सहज। साधु शब्द की बडी भाव-भगिमाए हैं। और सीधा, सादा, सरल, सहज—यही साधना है।

इसलिए कबीर कहते है साधो, सहज समाधि भली। सहज हो रहो, सरल हो जाओ।

थोडा समझ लेना जरूरी है। क्योकि हम बहुत से लोगो को जानते हैं, जो सरल होने की चेष्टा मे ही बडे जटिल हो गये हैं, सरल होने की ही चेष्टा मे चले थे, और उलझ गये हैं।

मेरे एक मित्र है। लोग उन्हे साधु कहते हैं। मैं उन्हे असाधु कहता हू, क्योकि वे सीधे-सादे जरा भी नही है। अगर सुबह उन्हे दूध दो, तो वे पहले पूछते है कि गाय का है कि भैस का। क्योकि भैस का दूध वे नही पीते। शुद्ध हिंदू हैं, गाय का ही पीते है। और गाय का ही नही पीते, सफेद गाय का पीते है। किसी शास्त्र से उन्होने खोज लिया है कि सफेद गाय का दूध शुद्धतम होता है। वह भी कुछ घडी पहले लगा हो तो ही पीते हैं। क्योकि इतनी घडी देर तक दूध रह जाए, तो उसमे विकृति का समावेश हो जाता है। कुछ घडी पहले का तैयार घी ही लेते है, क्योकि इतनी देर ज्यादा रह जाए तो शास्त्रो मे उल्लेख है कि घी विकृत हो जाता है। इस तरह का पानी पीते है कि जो भी भर के लाए, वह गीले वस्त्र पहने हुए भर के लाए, ताकि बिल्कुल शुद्ध हो। क्योकि सूखे वस्त्रो का क्या भरोसा, किसी ने छुए हो, धोबी धो के लाया हो, लाण्ड्री मे गये हो— तो ठीक नही। वही कुए पर स्नान करो, वस्त्र पहने हुए, ताकि वस्त्र भी धुल जाए, तुम भी धुल जाओ, फिर पानी भर के ले आओ। ब्राह्मण ने भोजन बनाया हो तो ही लेते है। यह सब चेष्टा मे वे चौबीस घटे व्यस्त है। चौबीस घटे मे उन्हे भगवान के लिए एक क्षण बचता नही, भोजन सारा समय ले लेता है। निकले थे सरल होने, वे इतने जटिल हो गये है कि बडी कठिनाई है। जीना ही मुश्किल हो गया है। और जिसके घर मे पहुच जाए, वह भी प्रार्थना करने लगता है परमात्मा मे—उसने कभी प्रार्थना न की हो भला—कि कब इनसे छुटकारा हो।

अगर साधु आपके घर रुक जाए, तो आप एक ही प्रार्थना करते है कि अब ये जल्दी जाए, क्योकि तीन बजे रात वे उठ आते है। और वे नही उठते, पूरे घर को उठा देते है। क्योकि ऐसा शुभ कार्य ब्रह्ममुहूर्त मे उठने का। वे खुद तो करते ही है, लेकिन इतने जोर से ओकार का पाठ करते है कि आप सो नही सकते। और आप उनसे यह भी नही कह सकते कि आप गलत कर रहे हैं, क्योकि कुछ गलत भी नही कर रहे है। ब्रह्ममुहूर्त मे ओकार की ध्वनि कर रहे है। तो एक उपकार ही कर रहे है आपके ऊपर।

सरलता की खोज मे निकला हुआ आदमी भी जटिल हो जाता है। कही कुछ भूल हो रही है। सरलता को समझा नही गया।

सरलता का अर्थ ही यह है कि तुम सहज होकर क्षण-क्षण जीना, अनुशासन से नही। क्योकि अनुशासन तो जटिल होगा। जब भूख लगे, तब खाना खा लेना। जो मिल जाए, उसे चुपचाप स्वीकार कर लेना। जब नीद खुल जाए तब ब्रह्ममूहूर्त समझना। जब नीद लग जाए तो परमात्मा का आदेश समझना कि सो जाओ। और जब नीद खुल जाए तब उसका आदेश समझना कि जग जाओ। अपनी तरफ से कुछ भी मत करना। उस पर ही छोड देना—'जो तेरी मरजी'! क्योकि तुम कुछ भी करोगे तो जाटिलता खडी कर लोगे। तुम जो भी करोगे, मन से ही करोगे—और मन जटिलता का यन्त्र है। वह उसी मे से उपद्रव निकाल लेगा—फिर उपद्रव बढता जाता है। फिर उसका कोई अन्त नही है। और जिनको तुम साधु कहते हो, वे साधु कम और असाधु ज्यादा हो जाते है। क्योकि साधु का मूल अर्थ—सादगी, सीधापन—खो जाता है। हमने सादगी के दूसरे ही अर्थ कर लिये हैं। सादगी का हम मतलब लेते है कि जो आदमी एक ही लगोटी पे रहता है, वह सादगी। लेकिन जो आदमी एक ही लगोटी पे रहता है, उसका आपको पता है कि उसका अपनी लगोटी पर इतना मोह होता है जितना कि सम्राट को अपने साम्राज्य पर। होगा भी, क्योकि अब मोह को और कोई जगह न बची। सारा मोह लगोटी पर ही लग जायेगा। लगोटी और साम्राज्य का तो कोई सवाल नही है, सवाल तो मोह का है। सम्राट का मोह तो विस्तीर्ण होता है, बटा होता है। भिखारी का मोह सकीर्ण होता है, एक ही जगह केंद्रित होता है। और अगर कोई गौर से देखे तो पायेगा कि भिखारी का मोह ज्यादा खतरनाक होता है, क्योकि अनबटा होता है, घना होता है, सघन होता है। एक ही चीज पे सब दाव लगा होता है। लगोटी खो जाये तो भिखारी आत्महत्या कर लेगा। क्योकि वही सब कुछ था। ऊपर से देखने पर लगता था कि सादगी है, लेकिन सादगी के पीछे बडी जटिलता छिपी थी।

कबीर साधु उसे कहते है, जो सच मे ही सीधा-सादा है।

ज्ञानी हो गये, निर्वाण को पा लिया परमसत्य की अनुभूति हो गई, तो भी कपडा बुनना जारी रखा। लोगो ने पूछा भी कबीर को। सैकडो उनके भक्त थे। उन्होने कहा भी कि अब यह शोभा नही देता, कि आप जैसा परम ज्ञानी, और कपडे बुने दिन भर और बाजार मे बेचने जाए, हमको भी लज्जा आती है।

कबीर ने कहा, जब परमात्मा इतना बडा ताना-बाना बुनता है ससार का और लज्जित नही होता, तो मै गरीब छोटा-सा ही काम करता हू, क्यो लज्जित होऊ? जब परमात्मा इतना बडा ससार बुनता है—जुलाहा ही है परमात्मा—मैं भी जुलाहा, मै थोडा छोटा जुलाहा, वह जरा बडा जुलाहा। और जब वह छोड के नही भाग गया, मै क्यो भागू? मैंने उस पर ही छोड दिया है, जो उसकी मरजी! अभी उसका आदेश नही मिला कि बद कर दो।

वे जीवन के अत तक, बूढे हो गये तो भी बाजार बेचने जाते रहे। लेकिन उनके

बेचने मे भी बडा भेद था, साधुता थी। कपडा बुनते थे, तो वे बुनते वक्त राम की धुन करते रहते। इधर से ताना, उधर से बाना डालते, तो राम की धुन करते रहते। और कबीर जैसे व्यक्ति जब कपडे के ताने-बाने मे राम की धुन करे, तो उस कपडे का स्वरूप ही बदल गया। उसमे जैसे उसने राम ही बुन दिया। इसलिए कबीर कहते है, झीनी झीनी बीनी रे चदरिया! और कहते हैं, बडी लगन से और बडे प्रेम मे बीनी है। और जब जाते बाजार मे, तो ग्राहकों मे वे कहते कि राम, तुम्हारे लिए ही बुनी है और बहुत सम्हाल के बुनी है। उन्होने कभी किसी ग्राहक को राम के सिवा और कोई दूसरा सबोधन नही किया। ये ग्राहक राम हैं। यह इसी राम के लिए बुनी है। ये ग्राहक ग्राहक नही है और कबीर कोई व्यवसायी नही है।

कबीर व्यवसाय करते रहे और सादे हो गये। उन्होने सादगी को अलग से नही साधा। अलग से साधोगे कि जटिल हो जायेगी। सादगी साधी नही जा सकती। समझ सादगी बन जाती है।

कबीर ने अपने को इतना मरजी पर छोड दिया परमात्मा की, सुबह लोग भजन के लिए इकट्ठे हो जाते, तो कबीर उनसे कहते कि ऐसे ही मत चले जाना, खाना ले के जाना। पत्नी बच्चे परेशान थे कहा से इतना इन्तजाम करो! उधारी बढती जाती। कर्ज मे दबते जाते। रोज रात को कबीर का लडका, कमाल उनसे कहता कि, अब बस हो गया अब कल किसी से मत कहना! कबीर कहते, जब तक वह कहलवाता है तब तक हम क्या करे? तुम्हारी सुने कि उसकी सुने? जिस दिन वह बद कर देगा, कहनेवाला कौन! हम अपनी तरफ से कुछ करते नही और तुम क्यो परेशान हो? जब वह इतना इन्तजाम करता है यह भी करेगा!

लेकिन आखिरी वक्त आ गया। एक दिन कमाल ने कहा कि अब बस बहुत हो गया क्या हम चोरी करने लगे? उसने गुस्से मे कहा था। कबीर ने कहा, अरे पागल, यह तुझे पहले क्यों नही सूझा? कमाल ने सोचा कि कबीर, समझे नही कि मतलब क्या है। तो दुबारा कहा कि क्या समझे? मै कह रहा हू, क्या हम चोरी करने लगे? कहा से लाए? कबीर ने कहा, 'सभी उसका है क्या चोरी, क्या अचोरी! जो उसकी मरजी! यह खयाल पहले क्यो न आया?'

कमाल भी अद्भुत लडका था। उसने कहा आज परीक्षा पूरी ही हो ले। उसने कहा, फिर मैं जाता हू चोरी पर, लेकिन साथ तुम्हे भी जाना पडेगा। कबीर उठ के खडे हो गये। समझना हमे कठिन हो जायेगा, क्योकि हम सीधे आदमी को जानते ही नही। हमारा साधु कहता है, चोरी, पाप है! अचोरी, पुण्य है, हमारा साधु कहता है कि नासमझ, तू खुद नर्क मे जा रहा है और मुझको भी ले जाना चाहता है! लेकिन कबीर उठ के खडे हो गये, यह सादगी बडी मधुर है! जैसे कुछ भेद न रहा —न चोरी मे न अचोरी मे, न शुभ मे, न अशुभ मे। क्योकि सब परमात्मा का है तो कैसा भेद। भेद तो चालाक बुद्धि का होता है। सादगी मे कैसा भेद? वे उठ के

खडे हो गये।

कबीर को भीतर से समझना बडा मुश्किल पडेगा तुम्हे, क्योकि तुम्हारे मन मे भी भेद है। तुम भी सोचोगे कि यह क्या मामला है। क्या कबीर चोरी के पक्ष मे है?

कमाल भी झिझका, जब कबीर उठ के खडे हो गये। उसने सोचा कि यह भी मजाक ही थी। लेकिन कमाल आखिर कबीर का ही लडका था, और अब बात को पूरा करना जरूरी था। गया एक मकान मे, सेंध लगाई। कबीर बाहर खडे है। सेंध लगा के, भीतर गया। एक बोरा गेहू का घसीट के लाया। किसी तरह बोरा तो बाहर निकल आया। जब वह खुद बाहर निकल रहा था तो घर के लोग जाग गये। जाग इसलिए गये कि कबीर ने जोर से उससे पूछा कि अरे पागल, घर के लोगो से पूछा कि नही? चोरी, सो तो ठीक, लेकिन घर के लोगो को बताया या नही? थोडा शोरगुल कर दे, ताकि लोग जग जाए, कि चोरी हो गई।

एक सीधा-सादा आदमी, जिसके लिए भेद गिर गए है। यह आवाज सुन के, बातचीत सुन के, घर के लोग जग गए। और जब कमाल निकल रहा था, दीवाल के छेद से, तो किसी ने उसके पैर पीछे से पकड लिये। तो कमाल ने कहा, 'अब क्या किया जाए? कम से कम इतना ही करो कि मेरी गर्दन काट के ले जाओ, ताकि कम-से-कम बदनामी तो न हो।' कबीर ने कहा, 'यह भी खूब रहा! बिल्कुल ठीक सुझाया है। वक्त पर तूने भी सूझ दी।'

और कहानी है कि कबीर गर्दन काटने के पहले कमाल से बोले, गर्दन तो काट ले जाता हू, लेकिन बात छुपाये छुपेगी नही, उसको सब पता है। परतु कहता है तो काट ले जाता हू।

हमे लगेगा यह आदमी चोर भी ह, लेकिन कबीर जानते है कि मरता तो कुछ भी नही है। अगर तुम्हारा कोट खीच के मैं अलग कर दू तो मैं हिसक नही हू, तो तुम्हारी गर्दन काट के अलग करने मे कैसे हिसक हो जाऊगा? अगर सच मे ही शरीर वस्त्र है, तो कबीर हिसक नही है। यही तो कृष्ण अर्जुन को समझा रहे है गीता मे कि तू फिकर मत कर। 'न हन्यते हन्यमाने शरीर!' वह मारने मे मरता नही, काटने मे कटता नही, जलाने मे जलता नही। कबीर तो वही कर रहे है। उन्होने काट लिया कमाल का सिर, लेकिन उससे कहा कि तू कहता है तो काटे लेता हू, बाकी बात छिपाये न छिपेगी, पता चल जायेगा। क्योकि उसको तो सब पता ही है। फिर भी ठीक, जैसी उसकी मरजी!

घर के लोगो को तो शक हुआ शरीर को देख कर कि यह लगता है कमाल का, लेकिन बिना गर्दन के है! बडी अद्भुत कहानी है। उन्होने दूसरे दिन सुबह जब कबीर निकलते थे, नदी की तरफ जाते थे, गीत गाते थे, भजन-कीर्तन करते स्नान करने—और उनके सौ दो सौ भक्त जाते थे, दरवाजे के सामने एक खम्भे पर कमाल का शरीर लटका दिया, कि शायद कबीर को भी अपने लडके को देख

के चेहरे पे कोई फर्क आ जाये। और भक्तो को तो पता ही होगा। उनमे से कोई न कोई कुछ न कुछ कह देगा। लेकिन यह बात कुछ और ही हो गई। जब कबीर का जुलूस वहा पहुचा तो कबीर रुक गये और उन्होने कहा, 'देखो कमाल लटका है खम्भे पर! रोज बेचारा सम्मिलित होता था, आज सम्मिलित न हो पायेगा। लेकिन हम कीर्तन तो उसके पास करें ही।' कहानी है कि जब उन्होंने कीर्तन किया तो कमाल के हाथ, मुर्दा हाथ ताली देने लगे!

कोई मरता नही। मृत्यु असभव है। मृत्यु तो तुम्हारी मान्यता है। तुमने माना है इसलिए तुम मरते हो। और तुमने जाना नही है इसलिए तुम मरते हो। जीवन-ऊर्जा सब तरफ व्याप्त है। और कबीर ने कहा, 'पागल! पहले ही कहा था कि बात छिपाये न छिपेगी। चोरी तो ठीक, लेकिन उसको सब पता है। अब उसने खोल दिया राज।'

इसलिए कबीर ने अपने भक्तो से कहा, सदा मैंने कहा, 'उसकी मरजी से चलो!'

जीवन का बडे से बडा सत्य है भेद का गिर जाना—बुरे और भले का, शैतान और सत का, रात और दिन का, जीवन और मृत्यु का, अधकार और प्रकाश का। सारा भेद जब गिर जाए शुभ और अशुभ का, तब कोई साधु है। हम तो उसे साधु कहते हैं जो अधेरे के विपरीत, प्रकाश के पक्ष मे है। हम उसे साधु कहते हैं जो अशुभ के विपरीत, शुभ के पक्ष मे है। हम उसे साधु कहते हैं, जो सत है और शैतान नही। लेकिन हमारा साधु हमारी ही बुद्धि का ही प्रक्षेपण है, कबीर का साधु नहीं है।

कबीर का साधु तो वही है, जिसके लिए सारे भेद विलीन हो गये, जो अभेद मे जीता है, जिसका द्वैत नष्ट हुआ, जो अद्वैत मे जीता है, जो एक को पा लिया है। उस एक मे कौन होगा सत, कौन होगा शैतान! उस एक मे कौन होगा सज्जन, कौन होगा दुर्जन! उस एक मे क्या होगा पाप, क्या होगा पुण्य! सब भेद माया है। भेद मात्र माया का आधार है। और जो भेद मे गिरा, वह जटिल हो जायेगा। जो अभेद मे रहा वह साधु, वह सादा, वह सीधा। वह कुछ चुनता नही अपनी ओर से। वह अपनी मरजी को बीच मे नही लाता। वह सिर्फ बहता है, जैसे नदी मे कोई तैरे नही, बहे। नदी जहा ले जाए वहा जाने को राजी रहे, और जहा पहुच जाये वही मजिल, नदी बीच मे डुबा दे तो वही किनारा।

कबीर बार-बार कहते है, 'सुनो भाई साधो'। वे उसको इगित कर रहे है, तुम्हारे भीतर, जो सीधा-सादा है। इस सीधे-सादे को कैसे पाओगे? क्या इसको पाने के लिए कोई जटिल साधना करनी पडेगी, योगासन करने पडेगे, शीर्षासन करना पडेगा, घण्टो मन्त्रोच्चारण करना पडेगा? अगर इस सीधे-सादे को पाने के लिए कुछ भी करना पडे, तो यह सीधा-सादा नही है—यह तो समझ की ही बात है, यह तो सिर्फ बोध ही है। यह तो समझ मे आ जाये कि एक ही है, तो सादगी प्रगट हो जाती है। इसलिए कबीर सहज समाधि पर जोर देते हैं। सहज का अर्थ है जो

साधनी न पडे। साधु का अर्थ है जो समझ से फलित हो जाए, जिसके लिए कोई भी प्रयत्न, कोई भी श्रम न करना पडे, जैसे तुम हो, जिसका द्वार वही खुल जाए, जहा तुम हो, वही उससे मिलन हो जाए, इचभर चलना न पडे। चले कि जटिलता हो जायेगी। जिसे प्रयत्न से पाया जायेगा, वह सहज नही हो सकता।

'सुनो भाई साधो'—और यहा भी मैं तुम्हारे भीतर छिपे साधु को ही सबोधन कर रहा हू। तुम्हारे भीतर बुद्धि असाधुता का तत्त्व है, और हृदय साधुता का। हृदय न भले को जानता है, न बुरे को। हृदय के पास कोई गणित नही। हृदय को काटने की कला आती ही नही। हृदय कोई कैंची नही है। हृदय को जोडने की कला आती है। हृदय सुई-धागे की भाति है।

फरीद को किसी ने एक सोने की कैंची भेट की। फरीद कबीर के जमाने मे था। और फरीद और कबीर की मुलाकात हुई थी और बडी मीठी मुलाकात हुई थी। क्योकि दो दिन दोनो साथ रहे, और चुप रहे! एक शब्द न यहा से बोला गया, और न वहा से बोला गया। दोनो गले मिले, दोनो हसे, दोनो साथ बैठे। स्वागत किया जा के गाव के बाहर कबीर ने फरीद का और विदा कर आये। लेकिन दो दिन मे एक शब्द का लेन-देन न हुआ! और जब शिष्यो ने पूछा दोनो के, कि यह क्या माजरा है, हम थक गये, ऊब गये, और हम बडी अपेक्षा रखते थे कि कुछ होगी बात, हम भी सुन लेगे, कुछ सार मिलेगा, सब दो दिन खराब हुए!

फरीद ने कहा, जो बोलता है, वह अज्ञानी है। अगर मैं बोलता तो मैं अज्ञानी, और कबीर बोलते, तो वे अज्ञानी। कबीर ने अपने शिष्यो से कहा, बोलने को कुछ था नही। क्योकि दोनो हम जानते है। और दोनो ने एक को ही जान लिया, कहना किससे, सुनना किसको? और पुनरुक्ति शोभादायक नही। अकारण मेहनत। जहा मैं हू वही फरीद है। न मैं हू, न फरीद है। तुम्हारे लिए हम दो थे। हमारे लिए हम एक हैं। तुम वार्तालाप चाहते थे। और हम वार्तालाप करते तो पागल मालूम पडते। क्योकि वह एकालाप होता। दूसरा था नही, बात किससे होती?

दो अज्ञानी मिले, बात हो सकती है, खूब होती है। एक ज्ञानी, और एक अज्ञानी मिले, तो भी बात हो सकती है, समझ मे बहुत आती है। लेकिन दो ज्ञानी मिले तो कैसी बात! बात बिलकुल नही होती, और सब समझ मे आता है। सुना एक शब्द नही जाता और सब समझ मे आता है। और दो अज्ञानी खूब चर्चा करते है, सुना बहुत जाता है, शोरगुल बहुत मचता है, समझ मे कुछ भी नही आता।

एक ज्ञानी और एक अज्ञानी की भी वार्ता होती है। अगर अज्ञानी राजी हो, तो उस वार्ता से कुछ फल मिल सकता है। अगर अज्ञानी थोडा खुला हो, अगर अज्ञानी मे थोडा हृदय हो, सिर्फ बुद्धि न हो, तो कोई बीज हृदय मे अकुरित हो सकते हैं।

फरीद को किसी ने एक सोने की कैंची भेट की। फरीद ने कहा, 'माफ करो, कैंची का हम क्या करेंगे? काटने का हम धधा करते ही नही। हमारा धधा जोडने का है।

अगर तुम कुछ देना ही चाहते हो, एक सुई-धागा ले आओ।'

सतो का धधा ही जोडने का है। हृदय का धधा जोडने का है। बुद्धि का धधा तोडने का है। पडित तोडते हैं, सत जोडते है। दुनिया इतनी टूटी है पडितो के कारण—तीन सौ धर्म हैं, पडितो के कारण। पडित भेद निकालता है, बारीक भेद निकालना है। सत अभेद को खोजते हैं। दो के बीच जो जोडनेवाला है, उसको खोजते है। पडित दो के बीच तोडनेवाला है, उसको खोजते हैं। इसलिए वास्तविक विरोध सत और असत के बीच नहीं है, सत और पडित के बीच है। सत और पापी के बीच वास्तविक विरोध नही है, सत और पडित के बीच वास्तविक विरोध है।

धर्मों का जन्म होता है सतो से, और विनाश होता है पडितो से। और जैसे ही जन्म होता है धर्म का, वैसे ही पडित हावी हो जाते है।

तुम्हारे भीतर साधुता का तत्त्व है हृदय, क्यो ? क्योकि हृदय तुम्हारे भीतर अप्रशिक्षित है। बुद्धि का तो प्रशिक्षण हुआ। बुद्धि को समाज ने तैयार किया है, हृदय को परमात्मा ने। हृदय को शिक्षित करने के कोई उपाय भी नही हैं, कोई विश्वविद्यालय भी नही, जहा तुम्हारे हृदय की शिक्षा हो सके। प्रेम के प्रशिक्षण का आज तक कोई मार्ग नही खोजा जा सका, और धन्यभागी हैं हम कि मार्ग नही खोजा जा सका। जिस दिन खोज लिया जायेगा, उससे बडा कोई दुर्भाग्य न होगा। उस दिन फिर तुम मशीन हो जाओगे। तुम्हारी बुद्धि तो यत्र हो ही गई है, तुम्हारा हृदय थोडा-सा यत्र नही है। तुम्हारी धडकन मे अभी भी प्रकृति धडकती है। परमात्मा थोडे स्वर देता है। तुम्हारी बुद्धि तो बिलकुल यान्त्रिक है और समाज द्वारा निर्मित है।

बुद्धि से तुम परमात्मा तक न जा सकोगे, इसीलिए तो शास्त्र से कोई कभी वहा नही पहुचता। हृदय से पहुचता है, प्रेम से, प्रार्थना से, आस्था से। जब साधु की बात कही जा रही है, तब तुम्हारे हृदय को निवेदन किया जा रहा है। सबोधित है तुम्हारा हृदय। तो जो यहा कहे, उसे तुम सोचना मत, सिर्फ समझना। हृदय समझता है, बुद्धि सोचती है, और दोनो मे कोई तालमेल नही है। बुद्धि बडा तर्क करती है, हृदय देखता है। हृदय के पास आख है, बुद्धि अधे का टटोलना है। बुद्धि अधे की लकडी है, जिससे वह टटोलता है कि रास्ता कहा है। हृदय देखता है, टटोलने की कोई जरूरत नही। तर्क व्यर्थ है, हृदय को दिखाई पडता है, वह निकल जाता है।

'सुनो भाई साधो' का अर्थ है—हृदय से सुनो, सादगी से सुनो। तर्क और विचार मे नही। भाव और प्रेम से सुनो। वही समझ पायेगा।

अब हम कबीर के वचन को ले

एक-एक शब्द को गौर से हृदय तक जाने देना।

'माया महाठगिनि हम जानी'।

माया का क्या अर्थ है? जिसके कारण एक दो की भाति दिखाई पडता है, उस सूत्र का नाम माया है।

तुमने नशा कर लिया, शराब पी ली, तब तुम्हे एक आदमी रास्ते पे आता हुआ दिखाई पडता है, और लगता है दो आ रहे हैं। एक मकान की जगह दो मकान दिखाई पडते है। एक दरवाजे की जगह दो दरवाजे दिखाई पडते हैं।

मुल्ला नसरुद्दीन अपने किसी मित्र को विदा कर रहा था। रात देर तक दोनो पीते रहे। और जब विदा करने लगा तो रात अधेरी थी, सुनसान मार्ग पर कोई भी नही। मित्र ने पूछा कि थोडा रास्ते के सबध मे समझा दो।

नसरुद्दीन ने कहा, रास्ते के सबध मे एक ही बात खयाल रखना जब यहां से तुम सौ कदम पहुच जाओ, तो वहा तुम्हे दो रास्ते मिलेगे, तुम बाए तरफ मुडना क्योकि दाये तरफ कोई रास्ता है ही नही, सिर्फ दिखाई पडता है। यह मैं अपने अनुभव से कहता हू, उस पे कई दफे मैं मुड गया हू और भटक गया हू। वहा रास्ता है ही नही।

मुल्ला नसरुद्दीन अपने बेटे को समझा रहा था, शराब-घर मे बैठा। उसने कहा कि देख बेटा, उस कोने मे देख, जहा चार आदमी बैठे है, जब ये आठ दिखाई पडने लगे, तब समझना कि बस, अब रुक जाना जरूरी है। बस फिर फौरन घर की तरफ चल पडना। उस बेटे ने कहा, पिता जी मुझे केवल दो आदमी दिखाई पड रहे हैं। वे नसरुद्दीन ज्यादा पहले ही पी चुके थे।

नशे मे जब तुम हो, तब तुम भीतर कपते हो, उस कपन के कारण बाहर भी सब चीजें कपती है। जब नशे मे तुम हो तब दो हिस्सो मे भीतर बट जाते हो, क्योकि एक तो तुम्हारे भीतर तत्व है, जो कभी भी नशे मे नही हो सकता। तुम्हारी चेतना कभी भी बेहोश नही हो सकती। नशा तुम्हारे शरीर मे जाता है, मन मे जाता है, आत्मा मे नही जा सकता। जैसे ही नशा तुम्हारे भीतर प्रवेश करता है, तुम दो हिस्सो मे बट जाते हो, तुम्हारी आत्मा अलग, तुम्हारा शरीर, मन अलग। और शरीर, मन तो एक ही हैं, उनमे बहुत भेद नही है, वे एक ही तत्व के सूक्ष्म और स्थूल रूप है। तुम भीतर बट जाते हो, और सब कपने लगता है। जब तुम भीतर कपने लगते हो, बाहर सब कपने लगता है।

माया एक नशा है।

कबीर कहते है, 'माया महाठगिनि हम जानी'। और हमने जाना कि माया बडी ठगिनी हैं। उसके कारण सब दो हो गया है।

'निरगुन फास लिए कर डोलै, बोलै मधुरी बानी'।

'केसव के कमला होई बैठी, सिव के भवन भवानी।'

इस विचार को थोडा समझें

राम के साथ सीता है, कृष्ण के साथ राधा है, शिव के साथ शिवानी है। विष्णु के साथ लक्ष्मी है। हिंदुओ ने बडे विचार के ये प्रतीक चुने हैं। यह तुम्हारे कारण क्योकि तुम दो मे बटे हो। परमात्मा तुम्हारे लिए एक नही हो सकता। यह तुम्हारे

भीतर जो नशा और कपन है, तुम्हारे भीतर जो माया है, जो भ्रम का सूत्र है, तुम्हारे कपन के कारण तुम्हे शिव और शिवानी दो दिखाई पडते है। जब तुम्हारा कपन खो जायेगा, तब तुम अचानक पाओगे कि शिव और शिवानी एक हो गये। वही अर्ध-नारीश्वर की प्रतिमा है। जैसे ही तुम्हारा कपन खो जायेगा, तुम पाओगे कि वहा भी दो विलीन हो गये लक्ष्मी विष्णु मे खो गई, विष्णु लक्ष्मी मे खो गये, एक बचा। तुम्हारे कारण दो हैं। क्योकि तुम कप रहे हो।

कौन तुम्हे कपा रहा है? शराब तुमने पी नही, लेकिन फिर भी तुम शराबी हो। और बहुत तरह की शराबे तुमने पी ली है, जिनका तुम्हे पता नही है। तुमने आसक्ति पी ली है, तुमने मोह पी लिया है, तुमने अहकार पी लिया है, ईर्ष्या पी ली है, महत्वाकाक्षा पी ली है। तुमने घृणा, क्रोध, लोभ, न मालूम कितनी शराबे पी ली हैं!

शराब का मतलब ही यह है कि जो बेहोश करे। शराब बोतलो मे ही बद नही बिकती, शराब तो जीवन के रोए-रोए मे मिल रही है। अगर तुम पकडने के उत्सुक हो, तो सब जगह उसका दरवाजा खुला है।

शराब का अर्थ है जिसमे तुम भीतर कप जाते हो। शराब का अर्थ है ऐसी बेहोशी, जिसमे तुम ठीक-ठीक नही देख पाते, आखे देखने की क्षमता खो देती है, या, तुम वह देखने लगते हो जो है नही, या तुम्हे वह दिखाई पडने लगता है जो कभी था नही। नशे मे तुम्हारी दृष्टि और दर्शन खो जाता है।

खयाल करो, जब तुम मोह से भर जाते हो, तब तुम्हे वही नही दिखाई पडता, जो है, तुम्हारा मोह तुम्हे जो दिखाता है, वही दिखाई पडता है। जब तुम क्रोध से भर जाते हो, तब तुम कुछ और देखने लगते हो।

एक स्त्री के मोह मे तुम पड गये, या एक पुरुष के, तो स्त्री बहुत सुदर दिखाई पडती है, ऐसा लगता है कि जगत मे वैसा कोई भी नही, वैसा सौदर्य कभी हुआ ही नही। वह स्त्री वैसी ही साधारण थी कल तक। रास्ते पे कई बार तुम गुजरे थे और उस स्त्री को देखा था, आज अचानक क्या हो गया? तुम्हारे भीतर कुछ मोह का उदय हुआ है। तुम्हारे भीतर कोई सम्मोहन जगा है। तुम्हारे भीतर कोई नशा छा गया है। स्त्री वही है, कल भी वही थी। अचानक आज स्त्री सुदर नही हो जायेगी। तुम्हारे भीतर कुछ फर्क हुआ है। तुम कुछ पागल हुए हो। आज स्त्री परम सौदर्यवान दिखाई पड रही है। आज जो तुम देख रहे हो, वास्तविक नही है। आज जो तुम देख रहे हो, वह अपने ही सपने का विस्तार है। आज स्त्री केवल परदा बन गई है, और तुम अपना ही सपना उस पर देख रहे हो। रहो कुछ दिन उस स्त्री के पास, कर लो विवाह—थोडे दिन मे सपना टूटने लगेगा। क्योकि सपने सदा नही चल सकते। सपनो का गुणधर्म यही है कि वे कभी होते है, कभी खो जाते है। चौबीस घटे कोई सपना नही देख सकता। और चौबीस घटे कोई नशे मे नही रह सकता। और सदा के लिए नशे मे रहने का कोई उपाय नही है।

सत्य ही सदा रह सकता है, सपना सदा नही रह सकता। दो चार दिन बीतते-बीतते ही स्त्री साधारण होने लगती है। यद्यपि तुम फिर भी कोशिश करते रहते हो सपने को खीचने की, लेकिन तुम जानते हो कि सपना टूटने के करीब आ गया। महीना दो महीना बहुत मुश्किल है कि सपना चल जाए। और जब सपना टूट जाता है, तब एक विरक्ति, एक उदासी, तब एक विषाद घेर लेता है। अब तुम विषाद और उदासी के माध्यम से उस स्त्री को देखने लगते हो। वह साधारण हो गई। कहा पर्वत पर थी, शिखर पर थी, अब कहा खाई मे, खड्ढ मे गिर गई। कल तक स्वर्ण-काया थी उसकी, अब उसके शरीर से गध आने लगी। कल तक उसके शरीर पे कभी पसीना नही दिखाई पडा था। तुम देख ही नही सकते थे पसीना। आज शरीर से बदबू आने लगी। कल तक सुगध थी, आज सब दुर्गंध हो गई। अब तुम क्रोध और घृणा से भी देखना शुरू करोगे। तब वह स्त्री बहुत कुरूप मालूम पडने लगेगी—और स्त्री वही है। पुरुष वही है। वहा कुछ भी भेद नही हुआ। सारा भेद तुम्हारे भीतर हो रहा है।

कबीर कहते है 'माया महाठगिनि हम जानी'।

माया तुम्हारे भीतर बेहोश होने की कला का नाम है। माया, तुम्हारे सो जाने की पद्धति है। माया तुम्हारे स्वप्न देखने की प्रक्रिया है।

कोई आदमी धन के पीछे दीवाना है, तो तुम कल्पना ही नही कर सकते, अगर तुम धन के दीवाने नही हो। उसे धन मे क्या दिखाई पडता है? वह रोज अपनी तिजोरी खोलता है, तब तुम उसकी आखे देखो, जैसा कोई प्रेमी अपनी प्रेयसी को देखता है। किसी कवि ने कवि-जगत के सौंदर्य को ऐसा भाव-विभोर होकर नही देखा, जैसा धन का दीवाना तिजोरी खोल कर देखता है। तब उसकी आखो मे देखो, कितने सपने तैरते है, आखो मे कैसी चमक आ जाती है। तुम्हे अगर कोहिनूर हीरा पडा हुआ मिल जाये रास्ते पर, और तुम धन के दीवाने हो, तो तुम अपना सारा होश खो दोगे। और कोहिनूर सिर्फ एक पत्थर है। लेकिन तुम्हारे भीतर सब बदल जायेगा। कोहिनूर एक परिस्थिति है, जिसमे तुम्हारे भीतर के सोये हुए सारे नशे जग जायेगे। और तब तुम्हे जो कोहिनूर मे दिखाई पडेगा, वह कोहिनूर मे नही है, वह तुमने ही डाला है।

तुम जो भी जगत मे देख रहे हो, वह जगत मे नही है, वह तुम्हारा डाला हुआ है। पद-लोलुप पद मे जो देखता है पागल होकर लोग दौडते रहते है!

मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन लौट रहा था रात। वर्षा के दिन थे, और धीमी-धीमी फुहार पड रही थी। रास्ते मे गाव का राजनीतिज्ञ नेता मिल गया। उसने कहा, नसरुद्दीन! बिना छाते के !

नसरुद्दीन कहना नही चाहता था कि छाता नही है, और अभी सुविधा भी नही है खरीदने की। नसरुद्दीन ने कहा कि यह एक आध्यात्मिक अभ्यास है। यह एक ध्यान

का प्रयोग है। इसमे बडा अनुभव होता है। परमात्मा वर्षा कर रहा है, और तुम मूरख छाता लगाये हो? यह कोई बात हुई? बद करो छाता, और जरा खडे होकर देखो, बडा इल्हाम होगा, बडा रिविलेशन होगा, बडा उद्घाटन होगा! परमात्मा बडे सत्य देता है!

राजनेता को भरोसा तो न आया। लेकिन उसने सोचा, हर्ज क्या है करके देखने मे। दूसरे दिन वह बडा क्रोधित लौटा। और उसने कहा, नसरुद्दीन, मजाक की एक सीमा होती है! रात भर बुखार चढा रहा। तुमने जैसा कहा था, वैसे ही मैने किया। जब सब लोग सो गये, तो मैं बाहर गया और खडा रहा पानी मे। कुछ हुआ नही। बस यह हुआ कि मेरी गर्दन से पानी उतर के कपडो के भीतर चला गया। ठड लगने लगी, शरीर कपने लगा, और मुझे ऐसा लगा कि मैं भी क्या मूरखपन कर रहा हू, यह कैसा मूढता का मैं काम कर रहा हू! क्या मैं मूर्ख हू या पागल हू?

नसरुद्दीन ने कहा, बस, यह क्या कोई कम इलहाम है? पहले ही अभ्यास मे इतनी बडी अनुभूति! यह क्या कोई कम उपलब्धि है? अभ्यास किये जाओ, और भी आगे अनुभव होगे!

आदमी जैसा भीतर है, उस भीतर की परिस्थिति को अगर न बदला जाए, अगर न तोडा जाए तो तुम परमात्मा को बाहर न पा सकोगे। क्योकि तुम जो भी पाओगे, वही ससार होगा। तुम जो भी देखोगे, वह तुम्हारी ही आखे देखेगी। तुम जो भी पाओगे, पानेवाले तुम ही रहोगे। असली सवाल परमात्मा को खोजने का नही है, असली सवाल भीतर मे बेहोशी तोडने का है। बेहोश आदमी जहा भी जायेगा, बेहोशी ही पायेगा।

भीतर मे माया टूट जाए, सुषुप्ति टूट जाए, स्वप्न टूट जाए, तो तुम जहा हो, वही तुम्हे परमात्मा उपलब्ध हो जायेगा। वही तुम्हे चारो ओर से घेरे खडा है। उसके अतिरिक्त और कोई भी नही है। तुम उससे कैसे वचित हुए, यही चमत्कार है। तुमने कैसे उसे खोया, यही चमत्कार है। जरूर तुम किसी गहरी मूर्च्छा मे हो।

महावीर से किसी ने पूछा, साधु कौन? महावीर ने कहा 'जो जागा है, वह साधु है। और असाधु—जो सोया है।'

तुम्हारे भीतर कुछ जागने की प्रक्रिया भी है, और कुछ सोने की प्रक्रिया भी है। तुम्हारे भीतर सपना देखने की क्षमता भी है, और सत्य मे जागने की क्षमता भी है। तुम जाग भी सकते हो और सो भी सकते हो। ये दोनो तुम्हारे भीतर क्षमताएं हैं। सोने की क्षमता का नाम माया है।

रात तुम सपना देखते हो। सपना देखने के लिए एक चीज जरूरी है कि तुम सो जाओ। जागे-जागे सपना देखना मुश्किल है। सपना देखने के लिए सोना जरूरी है। और जैसा तुम देख रहे हो, जगत को अभी—रुपये मे तुम्हे परमात्मा दिखाई पडता है, हड्डी, मास-मज्जा मे तुम्हे सौंदर्य दिखाई पडता है, भोजन मे तुम्हे जीवन का

सारा रस दिखाई पडता है, वस्त्रो मे तुम्हे जीवन की सारी कला दिखाई पडती है, व्यर्थ मे तुम्हे सार दिखाई पडता है, सार का तुम्हे कोई पता नही चलता—इसमे एक बात जाहिर है कि तुम सोये हुए हो और सपना देख रहे हो।

माया महाठगिनि हम जानी।

माया कोई दार्शनिक तत्व नही है। दार्शनिको के हाथ मे पड गया सिद्धात, तो उन्होने बडे सिद्धात खडे किये है। और बडे बिगूचन मे डाल दिया है। अगर तुम दार्शनिको को पढोगे तो तुम बडी मुश्किल मे पडोगे कि यह माया क्या है। क्योकि उन सबकी व्याख्याए अलग हैं। कोई कहेगा, यह परमात्मा की शक्ति है। कोई कहेगा, यह परमात्मा की छाया है। और उनको बडी कठिनाई है। शकराचार्य को बडी कठिनाई है कि यह माया कहा से आती है! क्योकि अगर सभी कुछ ब्रह्म है, तो माया कैसे पैदा होती! कोई उत्तर उनके पास नही है। कोई उत्तर हो भी नही सकता।

लेकिन अगर गौर से समझो तो माया मनोवैज्ञानिक तत्व है। माया कोई दार्शनिक तत्व नही है। माया का कोई सबध ब्रह्म से, अस्तित्व मे नही है। माया का सबध तुमसे है। माया तुम्हारी छाया है, ब्रह्म की नही। और माया तुम्हारे भीतर बेहोशी का नाम है। इसलिए जैसे-जैसे तुम भीतर जागरूक हो जाओगे, जैसे-जैसे सजग और साक्षी हो जाओगे, वैसे-वैसे माया तिरोहित हो जायेगी।

अगर माया ब्रह्म का तत्व है तो तुम उसे कैसे तिरोहित कर पाओगे? तब तो तुम जागोगे कैसे? अगर माया ब्रह्म का अग है तो तुम उसे कैसे मिटा पाओगे? नही, माया तुम्हारा ही अग है। तुम ब्रह्म की चर्चा मे मत पडो। तुम उसे जान भी न पाओगे, जब तक तुम्हारे भीतर की माया न टूट जाये।

माया शब्द बडा महत्वपूर्ण है। माया का ठीक वही अर्थ है जो अग्रेजी मे मैजिक का है। मूल शब्द का वही अर्थ है।

तुम्हारे भीतर सपनो को गढ लेने की एक चमत्कारी क्षमता है। रात तुम एक अधेरे रास्ते से गुजरते हो, भय तुम्हारे भीतर है—अधेरे का भय, अकेलेपन का भय, अजनबी रास्ते का भय—तुम कप रहे हो भय मे। भय एक माया का हिस्सा है। पत्ते हिलते है, तुम समझते हो कि कोई आ रहा है। पत्तो के हिलने की आवाज, तुम कैसे किसी के आने की पदचाप मे बदल लेते हो! तुम्हारे भय के कारण। दिन होता, उजाला होता, रास्ते पे लोग होते, तुम चिंता भी न करते कि पत्तो मे कोई आवाज हो रही है। सूखे पत्ते हवा मे हिल रहे है, तत्क्षण तुम चौंक के खडे हो जाते हो—लगता है कोई आ रहा है। आवश्यक नही है पत्तो का हिलना, अगर भय काफी हो, तो अपने ही पैर की आवाज—सुनसान रास्ते पे मालूम पडती है कि कोई पीछा कर रहा है! अपने ही पैर की आवाज—सुनसान रास्ते पर लगती है, कोई पीछा कर रहा है! अधेरे मे वृक्षो के रूप-रग—लगते है भूत-प्रेत खडे हैं!

मरघट पे जाके किसी दिन देखो! तुम्हें बहुत चीजें दिखाई पडेगी जो वहां हैं ही नही। और इतनी जोर से दिखाई पडेगी, कि तुम्हे अपना अस्तित्व क्षीण और उनका अस्तित्व ज्यादा प्रगाढ मालूम पडेगा। और अगर तुम भयभीत हो के भाग खडे हुए, तो जितना तुम्हारा भय बढता जायेगा, उतना ही

कभी तुम्हें पता है, मरघट से तुम गुजर जाओ, तुम्हे पता न हो कि यह मरघट है, तो कुछ न होगा। कोई भूत-प्रेत रास्ते मे न आयेंगे। कोई ढोल न बजेगा। कोई प्रकाश न जलेगा। कोई ज्योति इस कोने से उस कोने तक न जायेगी। तुम्हे पता न हो कि मरघट है, तुम मजे मे गुजर जाओगे। और तुम्हें पता हो कि मरघट है, और मरघट न भी हो, कि तुम मुसीबत मे पड जाओगे।

एक मेरे मित्र है। सदा डीग वे मारते हैं, निर्भय होने की। जो भी आदमी निर्भय होने की डीग मारता है, समझ लेना कि भयभीत है। नहीं तो डीग मारने की कोई जरूरत नही। डीग हम सदा विपरीत की मारते है। तो मेरे घर मेहमान थे। मैंने उनसे कहा, क्या भूत-प्रेत से भी नही डरते? उन्होने कहा, 'क्यो डरू, भूत-प्रेत है कहा? सब मन की कल्पना है। मैं किसी से नही डरता। तुम मेरे सामने भूत-प्रेत लाओ!'

मैंने कहा, 'ठहरो! तुम ठीक वक्त पे आ गये हो।' वे थोडे डरे। उन्होने कहा, क्या मतलब?'

सामने के मकान मे इस समय भूतो का अड्डा है। तो मैं वहा इन्तजाम तुम्हारे सोने का करवाये देता हू, वहा कोई है भी नही। बस तुम और भूत।

वे थोडे हसे, लेकिन उनकी हसी अब खोखली थी। उन्होने कहा, मै डरता नही क्या जरूरत वहा जाने की? मैने कहा, 'अगर नही डरते तो फिर जाने मे भय क्या?'

फस गये! कहने लगे, अच्छा! लेकिन उनका चित्त बडा उदास हो गया। सामने के मकान मे कभी किसी ने नही सुना था कि भूत है—थे भी नही लेकिन उस मकान को एक तेल का दुकानदार अपने खाली पीपे रखने के काम मे लाता था—एक गोदाम की तरह, इसलिए उसमे कोई था भी नही, मगर खाली पीपे गरमी के दिनो मे आवाज करते हैं। दिन मे फैल जाते है गरमी के कारण, रात मे सिकुडते है। और कोई हजार दो हजार पीपे थे मकान मे। तो आवाज एक पीपे से दूसरे पीपे मे जाती। और काफी सुन्दर भूत-प्रेतो की लीला उस घर मे चलती थी। उनका मैंने उस मकान मे जा के बिस्तर लगवा दिया ऊपर उनको बिठा के सुला आया दूसरी मजिल पर। रात को कोई दो बजे चीख-पुकार की एकदम आवाज मची। खडे छज्जे पे सामने, बिलकुल विक्षिप्त दशा मे चिल्ला रहे थे, कि बचाओ। तो मैने कहा कि घबडाना क्या! चाभी मैं तुम्हे दे दिया हू, तुम उतर के बाहर निकल आओ। उन्होने कहा, 'उसी कमरे मे से तो गुजरना पडेगा, जहा वह सब

भूतलीला, भूत-प्रेतलीला चल रही है।' तो बडी मुसीबत हो गई। तो उतारे कैसे। उन्होने कहा, सीढी लगाओ। सामने सीढी लगाई गई, वे इतने कप रहे थे, कि सीढी पर से गिर पडे। उनको मैंने लाख समझाया बाद मे कि वहा कुछ भी नही है। पर उन्होने कहा, 'मैं नही मान सकता। ऐसा हो ही नही सकता कि वहा कुछ न हो। क्योकि मैंने बराबर पीपो मे से भूतो को निकलते दूसरे पीपो मे जाते देखा है—आख से देखा है।'

अब वे डीग नही मारते। कम से कम मेरे सामने तो नही मारते। और तब से वे भूत-प्रेतो के बडे भक्त हो गये है। और मैंने भी उन्हे समझाया कि वहा कुछ नही है। सब बात समझा दी कि पीपे है, आवाज करते हैं। उन्होने कहा, 'छोडिए जब तक मुझे अनुभव नही था, एक बात थी। अपने अनुभव मे कहता हू।'

यह अनुभव माया है!

और बूढे आदमी जो भी अनुभव से कहते हैं इस ससार के सबध मे वह सब अनुभव ऐसा ही है। सिर्फ उस आदमी के अनुभव मे कुछ सार है, जो माया से जग गया हो, बाकी सब ऐसा ही है। इस अनुभव का कोई भी मूल्य नही, क्योकि तुम्हारी कल्पना, तुम्हारे भीतर की बेहोशी से प्रसूत है।

इसलिए कबीर कहते है, 'माया महाठगिनि हम जानी! निरगुन फास लिए कर डोलै।' वे कहते है, इससे बडा चमत्कार और क्या होगा कि जो निर्गुण है तुम निर्गुण हो, तुम ब्रह्म हो तुम परम ऊर्जा हो जगत को—निराकार, शुद्ध, इससे बडा चमत्कार क्या होगा! 'निरगुन फास लिए कर डोलै।' निर्गुण को फास लिया है माया ने, और हाथ मे हाथ डाल के डोल रही है।

माया महाठगिनि हम जानी!

बोलै मधुरी बानी! ' और बडे मधुर वचन है माया के। होंगे ही, अन्यथा इतने लोग फसते कैसे! बडे मधुर वचन है। बडे सुखद स्वप्न दिखाती है। एक रूप खडा कर देती है चारो तरफ। सपना इतना प्रगाढ हो जाता है, इतना इद्रधनुषी, कि तुम रुक नही सकते यात्रा पर जाना होता है। सपने खोजने पडते है।

सारे लोग दौड रहे है अपने-अपने सपने की तलाश मे। और उन सपनो को तुम कभी भी पाओगे नही, क्योकि वे कही है नही, उनका कोई अस्तित्व नही है। अखीर म तुम पाओगे कि विषाद, हाथ खाली है। अखीर मे तुम पाओगे सब पा लिया तो भी हाथ खाली है, कुछ न पाया तो भी हाथ खाली है। अखीर मे तुम पाओगे मृत्यु आती है, सब सपने टूट जाते है, और तुमने जीवन का इतना बहुमूल्य अवसर व्यर्थ गवा दिया। जहा सत्य जाना जा सकता था, वहा तुम सपनो के पीछे दौडते रहे। छोटे बच्चे तितलियो के पीछे दौडते है। अगर तुम गौर से देख सको तो बूढो को भी तुम तितलियो के पीछे ही दौडते पाओगे। तितलिया बदल गई होगी, क्योकि बूढे अनुभवी है—लेकिन दौड नही बदलती। और दौड तितलियो के पीछे ही बनी

रहती है। छोटे बच्चे को हम कहते है, कि क्या पागल हुआ है, तितली को पकड के भी क्या करेगा! लेकिन बूढे क्या पकडने के लिए दौड रहे हैं? तुम खुद क्या पकडने के लिए दौड रहे हो? तुम भी बच्चे थे, तितलिया पकडते रहे। तुम्हारे बच्चे भी कल बूढे हो जायेगे, और वे भी अपने बच्चो को समझायेगे, क्या तितलियो के पीछे दौड रहे हो! लेकिन बूढे भी तितलियो के पीछे दौडते रहते है।

और अगर चुनाव ही करना है, तो बच्चो की तितलिया ज्यादा ठीक मालूम पडती है, बजाय बूढो की। बूढे नोट के पीछे दौड रहे है, पद के पीछे दौड रहे हैं, दिल्ली उनका मोक्ष है, वे दिल्ली जा रहे है! धन उनकी आत्मा है, वे धन जोडे जा रहे है! बच्चे ककड-पत्थर बीन लेते हैं, और बूढे हीरे-जवाहरात—फर्क कितना है? ककड-पत्थर मे और हीरे-जवाहरात मे कोई भी तो फर्क नही है।

अगर आदमी इस जमीन पे न हो, तो एक साधारण पत्थर मे और कोहिनूर मे क्या फर्क होगा? कोहिनूर कुछ अकड के कह सकेगा कि मैं विशिष्ट हू। लेकिन बडे मे बडे सम्राट भी

कोहिनूर हीरा रणजीत सिह के पास था। रणजीत सिह की मृत्यु के बाद, महारानी विक्टोरिया की नजर कोहिनूर पे लगी रही कोई भी हालत मे कोहिनूर पाना जरूरी है।

विक्टोरिया के पास सब कुछ था। बडा विराट साम्राज्य था, जिसमे सूर्य का कभी अस्त नही होता था। मगर यह कोहिनूर उसके हृदय मे जख्म की तरह सताता रहा। और उसको सताने के लिए रणजीत सिह कोहिनूर अपने घोडे पे लटका के रखते थे। खुद नही लगाते थे उसको, घोडे पे लटका रखा था।

रणजीत सिह की मृत्यु के बाद, लडका नाबालिग था रणजीत सिह का, तो उसको विक्टोरिया ने इग्लैड बुला लिया। नाबालिग था, जब तक वह बालिग न हो जाए, तब तक राज्य का मालिक भी नही हो सकता था। तो तब तक उसकी शिक्षा-दीक्षा का भार ब्रिटिश राज्य ने ले लिया। वह लडका लोगो से कहता फिरता था कि मुझमे रस नही है, रस कोहिनूर मे है। और यह चोर है यह औरत। और कोहिनूर हीरा चुरा लिया गया। नाबालिग लडका है, कही खो न दे, इसलिए कोहिनूर ले लिया गया ब्रिटिश साम्राज्य मे। फिर वह वापिस नही लौटाया गया।

विक्टोरिया की नजर भी एक पत्थर पे लगी है—जिसके पास सब है! बूढे भी ककड-पत्थर बीनते रहते है। बच्चो की तितलिया कम से कम जीवित है, तुम्हारी तितलिया बिल्कुल मृत, मरी हुई है। लेकिन दौड जारी रहती है, क्योकि माया तो एक ही है। वह बच्चो के भीतर है, वह बूढे के भीतर है। जब तक तुम जाग न जाओ, जब तक तुम्हारा नया जन्म न हो जागने मे, तब तक तुम जो भी करोगे वह मूढतापूर्ण है। माया से निकला हुआ सभी मूढतापूर्ण होगा।

एक बात ठीक से समझ लेना जरूरी है।

मैं जब भी माया की बात कर रहा हू, तो मुझे माया और ब्रह्म के सिद्धांत से कोई प्रयोजन नही है—कबीर को भी नही है। माया तुम्हारे भीतर बेहोशी होने की प्रक्रिया का नाम है—तुम्हारी सोये होने की दशा। तुम नीद-नीद मे जी रहे हो। और सपने तुम्हारे चारो तरफ घिरे है। इसलिए ध्यान उपयोगी है। क्योकि ध्यान माया को तोडने का प्रयोग है कैसे तुम जाग जाओ और माया छिन्न-भिन्न हो जाए। और तुम जाग के अगर जगत को देखो, तो तुम जगत को पाओगे ही नही, वहा तुम ब्रह्म को पाओगे। माया जब तक भीतर है, तब तक तुम सत्य को न देख सकोगे।

'निरगुन फास लिए कर डोलै, बोलै मधुरी बानी।'

बडी मधुर बानी है, सभी को फास लेती है। जब रुपये की खनकार तुम्हे सुनाई पडती है, तब कैसी मधुर मालूम पडती है! जब एक सुन्दर चेहरा स्त्री का तुम्हे दिखाई पडता है, तो कैसा मधुर मालूम पडता है! जब एक पद तुम्हे पुकारता है, तो कैसा मधुर मालूम पडता है! पीछे सब कडवा हो जाता है। लेकिन शुरुआत बडी मधुर है। ऐसा लगता है, जैसे हम जहरीली दवाइया शक्कर का लेप चढा के देते है, जैसे जीवन का सब जहर हम पीने को राजी है—सिर्फ माया का थोडा-सा लेप चाहिए। पीछे सब जहर प्रगट होता है, लेकिन तब बहुत देर हो गई होती है।

इस बात को ध्यान मे रखना, कि जिस अनुभव मे पहले सुख हो और पीछे दुख आये, उसे समझना कि वह माया से पैदा हुआ है। इसके विपरीत जिस अनुभव मे दुख पहले मालूम पडे और सुख पीछे आए, समझना कि वह माया से पैदा नही हुआ है।

तप की परिभाषा इतनी ही है कि वहा दुख पहले है, और सुख बाद मे। और भोग की परिभाषा इतनी ही है कि वहा सुख पहले है और दुख बाद मे। सुख स्वागत करता मिलेगा सदा—वह माया का सेवक है—पीछे दुख छिपा है। तपश्चर्या मे साधना मे, जब तुम सत्य की खोज से भरोगे मुमुक्षा से, और जाओगे, तो पहले दुख मालूम पडेगा। और अगर तुम उस दुख मे बहुत डर गये तो माया से कभी जाग न सकोगे। अगर तुम उस दुख के लिए राजी हो गये, तो जल्दी ही दुख नष्ट हो जाता है, और महासुख के द्वार खुल जाते हैं।

दुख का सचेतन रूप से चुनना तपश्चर्या है।

सुख के पीछे दौडते रहना, तितलियो के पीछे दौडते रहना—और मजा यह है कि सुख के पीछे जो दौडता है उसे दुख मिलता है। और जो दुख के लिए राजी है वह महासुख का अधिकारी हो जाता है।

इस गणित का बहुत साफ समझ लेना जरूरी है। क्योकि इस गणित को समझे बिना माया को तोडा नही जा सकता उसकी मधुर वाणी से उठा नही जा सकता। बडा मीठा सपना है उसका!

'केसव के कमला होइ बैठी, सिव के भवन भवानी।

पंडा के मूरत होइ बैठी, तीरथ मे हू पानी ।।
जोगी के जोगिन होइ बैठी, राजा के घर रानी।
काहू के हीरा होइ बैठी, काहू के कौडी कानी ।।
भक्तन के भक्ति होइ बैठी, ब्रह्मा के ब्रह्मानी।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, यह सब अकथ कहानी ।।'

कबीर कह रहे है कि जो नही कहा जा सकता, जो अकथ है, वह कहानी तुमसे कहता हू। कहा तो नही जा सकता है, क्योकि कहना उन चीजो का सभव है, जो तर्कयुक्त हो। उन चीजो को कहना मुश्किल है, जो तर्क के विपरीत हो। भाषा तर्क की सरिणी है। उसमे जो तर्कयुक्त है, वह कहा जा सकता है। लेकिन यह बडी अतर्क्य कहानी है कि तुम अपने ही कारण दुख पा रहे हो। हम कहेगे यह बात तो हो नही सकती, क्योकि हम तो सुख चाहते हैं, तो हम अपने ही कारण कैसे दुख पायेगे! इसीलिए तो हम सदा कहते हैं कि दुख तो हम दूसरे के कारण पाते है। पति पत्नी के कारण पा रहे हैं, पत्नी पति के कारण, बेटा बाप के कारण, बाप बेटे के कारण। हम सदा सोचते है कि दुख हम दूसरे के कारण पा रहे हैं, वह तर्क-युक्त मालूम पडता है। क्योकि हम अपने कारण दुख क्यो पायेगे, हम तो सुख चाहते है।

कहानी बडी अकथ है! क्योकि तुम सुख चाहते हो, इसलिए तुम दुख पा रहे हो। यह बडो अतर्क्य बात है, लेकिन यही सत्य है। और जब तक तुम सुख चाहोगे, तब तक तुम दुख पाओगे, और जिस दिन तुम राजी हो जाओगे, दुख के लिए, उस दिन तुम दुख पाने के बाहर हो जाओगे। कहानी अकथ है।

अगर कोई तुमसे कहे कि तुम भटक रहे हो, क्योकि तुम खोज रहे हो, तो बडा विरोधाभास मालूम पडता है। अगर कोई तुमसे कहे, अगर तुम रुक जाओ तो तुम पा लोगे, तो बडा विरोधाभास मालूम पडता है। बडी अकथ बात है! पर यही सत्य है। जब तक तुम दौडोगे, तुम न पा सकोगे। क्योकि जिसको तुम खोजने चले हो, वह तुम्हारे भीतर छिपा है। जब तक तुम दौडते रहोगे, तब तक तुम भटकते रहोगे, क्योकि जिसे तुम खोजने चले हो, वह तुम ही हो। तुम दौड के जाओगे कहा? और जितना तुम दौडोगे उतनी ही उत्तेजना मे तुम अपने को भूल जाओगे। रुक जाओ!

अकथ कहानी है! जो रुक जाते है, वे पाते है। पेराडॉक्स है, विरोध है। तर्क मानने को राजी नही होता, तर्क क्या कहेगा? तर्क कहेगा, कि अगर तुम दौडते हो और नही पाते, तो जरा जोर से दौडो। साफ है, गणित सीधा है। दौड के नही पाते, इसका मतलब है, दौड पर्याप्त नही है—तेजी से दौडो! या दौड के नही मिल रहा है तो इसका मतलब है, दिशा गलत है। तो ठीक दिशा चुनो। तर्क कहेगा, दिशा बदलो, दौड की गति बढाओ, पहुच जाओ। लेकिन, अगर तुम्हारे भीतर ही छुपी है

मजिल, तो तुम किसी दिशा मे जाओ—किसी भी दिशा मे जाओ—गलत दिशा होगी। क्योकि इसका दिशा मे कोई सबध ही नही—तुम्हारे भीतर

भीतर की दिशा को हमने गिना ही नही है कभी। हम कहते हैं, दस दिशाए है। मैं कहता हू, ग्यारह। क्योकि दस तो बाहर है, आठ चारो तरफ, एक नीचे, एक ऊपर। तुम्हारे भीतर? लेकिन भूगोल उस दिशा को गिनता ही नही। उसको हमने बाहर ही रख छोडा है। और वही मिलेगा।

जिसे तुम खोज रहे हो, वह तुम्हारे भीतर छिपा है। तुम अपने को ही खोज रहे हो। तो तुम कोई भी दिशा चुनो, सभी दिशाए गलत होगी। तुम कोई भी मार्ग चुनो तुम भटकोगे। और धीरे और जोर मे दौडने का सवाल नही है। तुम कितने ही जोर से दौडो, जितने जोर से दौडोगे, उतने ही दूर निकल जाओगे।

रुको! सब दिशाए छोडो! दसो दिशाए छोडो! वही ठहर जाओ, जहा तुम हो! भीतर वही रुक जाओ जहा तुम हो। सब मार्ग छोडो। यही तो सहजता का अर्थ है। कोई माग नही, कोई प्रयत्न नही, कही जाना नही, दौडना नही, आसन, व्यायाम, *साधना नही—चुपचाप वहा रुक जाओ, जहा तुम हो। वहा वह सब छिपा है,* जिसकी तलाश है।

दौड है माया, रुक जाना है ब्रह्म। तुम रुके कि उसे पा लिया। दौडोगे तो विचार मे चलना ही पडेगा। मन की सहायता जरूरी है दौडने मे। क्योकि मन यत्र है। वह तुम्हे मार्ग सुझाता है। वह मार्ग की कठिनाइया दिखलाता है। वह, कैसे माग को पार करो इसकी विधि-विधान बनाता है। मन की तो जरूरत रहेगी अगर यात्रा करनी है। और जितनी ज्यादा यात्रा करनी है उतनी ही ज्यादा मन की जरूरत रहेगी। और मन को तो छोडना है, तभी तुम पाओगे।

मन माया है। जैसे ही मन रुक जाता है, न कोई यात्रा—तीर्थयात्रा भी नही है। जैसे ही तुम अपने भीतर शात और ठहर जाते हो, एक लहर भी नही उठती विचार की—तुम पहुच गये! आ गई मजिल! और तब तुम हसोगे कि इसे खोजने को मै कितना दौडा। तब तुम हसोगे कि दौडने के कारण ही तुम इसे नही पा रहे थे। तब तुम हसोगे कि मैं भी कैसा पागल था अपने ही कारण दुख पा रहा था और सोचता था दूसरो के कारण दुख मिलना है।

जब तक तुम देखते रहोगे दूसरो के कारण दुख मिलना है, तब तक तुम भटकोगे, क्योकि तुम्हे कोई भी दुख नही दे रहा है, सिवाय तुम्हारा अपना ही जीवन का ढग। तुम्हारे जीवन की पद्धति गलत है। वह माया मे लिप्त है।

सोचो, तुम्हारा धन खो जाता है। एक चोर धन चोरी कर ले गया। तुम सोचते हो चोर ने तुम्हे बहुत दुख दिया? चोर क्या दुख देगा? धन मे आसक्ति थी, इसमे दुख हुआ। अगर आसक्ति न होती और चोर चोरी करके ले जाता, तो दुख होता? तो शायद तुम प्रसन्न होते कि चलो निर्भार हुए, इससे भी छुटकारा हुआ। तुम

शायद धन्यवाद देते चोर को, कि तेरी बडी कृपा, तूने बोझ कम किया। लेकिन आसक्ति है धन से, इसलिए दुख होता है चोर से।

पत्नी मर जाती है, तुम छाती पीटते हो, रोते-चिल्लाते हो—मृत्यु ने दुख दिया? तुम कहते हो, 'हे परमात्मा! तू क्यो इतना कठोर है?' तुम कहते हो कि यह कैसा दुर्भाग्य का क्षण, यह मुझ पर ही क्यो घटा, दूसरो पर क्यो नही घटता? आखिर मुझे ही क्यो चुना? और मैं तेरी रोज प्रार्थना करता हू, मदिर भी जाता हू, गीता भी पढता हू, कुरान भी पढता हू, मस्जिद मे पाच नमाज भी पढता हू—और यह फल मिला!

परमात्मा तुम्हे दुख दे रहा है, विधि दुख दे रही है, या कि तुम्हारी आसक्ति दुख दे रही है? तुम बधे थे इस स्त्री से, और तुम सोचते थे इस स्त्री मे ही तुम्हारा सुख है। अब यह स्त्री न रही, अब सुख कैसे मिलेगा? इससे तुम पीडित हो रहे हो।

खयाल करो, जब भी तुम दुखी होते हो, तुम्ही कारण हो। और जैसे ही यह बोध सघन हो जायेगा कि मेरे दुख का कारण मै हू, वैसे ही तुम दुख की प्रक्रिया को तोडने लगोगे। फिर तुम दुख चाहो तो बात दूसरी। चलो उस रास्ते पर, लेकिन तब शिकायत मत करना। और तब किसी मे मत कहना कि किसी और के कारण मै दुख पा रहा हू। तब तुम्हारी मौज। तब दुख पाना ही तुम चुनते हो, ठीक। लेकिन तब शिकायत नही। लेकिन अगर तुम दुख नही पाना चाहते हो, तो दुख के मूल कारणो को समझने की कोशिश करो।

तुम क्रोधित होते हो, किसी ने गाली दी—और तुम कहते हो कि यह तो साफ है यह आदमी गाली न देता और मैं क्रोधित न होता, न दुखी होता। लेकिन गाली से कोई कभी क्रोधित नही होता। क्रोधित तुम इसलिये होते हो कि तुमने एक अहकार पाल रखा है, जो गाली से चोट खाता है। तुमने एक अस्मिता बना रखी है, कि मै एक बडा प्रतिष्ठित व्यक्ति हू और यह आदमी गाली दे रहा है। मेरी प्रतिष्ठा खराब कर रहा है। अहकार को चोट लगती है गाली मे, लेकिन अगर भीतर अहकार न हो, तो गाली ऐसे निकल जायेगी, जैसे हवा का झोका आया और निकल गया। तुम अछूते रह जाओगे, अस्पर्शित।

खयाल करो। कई बार ऐसा तुम्हे जीवन मे हुआ होगा। पैर मे चोट लग गई तो फिर दिन भर वही-वही चोट लगती है। सीढी से निकलते तो टकरा जाते हो। किसी आदमी का धक्का लग जाता है। कुरसी के पास से निकलते हो तो कुरसी चोट मार देती है। जूता पहनते हो तो जूता काटता है। स्नान करने जाते हो तो पानी कष्ट देता है। दिन भर कुछ न कुछ। और तुम्हे लगता है कि बडी हैरानी की बात है, रोज ऐसा नही होता था, और आज चोट क्या लगी है, सारा ससार वही चोट मारने को उत्सुक है! कोई ससार तुम्हे चोट मारने को उत्सुक नही है। रोज भी यही होता था लेकिन रोज चोट नही थी, इसलिए पता नही चलता था।

रोज कुरसी यही लगती थी, रोज जूता यही छूता था, रोज बच्चा घर आता था। पैर पे पैर रख के चढता था। लेकिन वहा चोट नही थी, इसलिए पता नही चलता था। आज पता चल रहा है।

गाली कोई देता है, लगती है चोट, क्योकि अहकार एक घाव की तरह तुम्हारे भीतर है। कोई प्रशसा करता है, तुम खिल जाते हो। कोई निंदा करता है, तुम मुरझा जाते हो। यह कैसी गुलामी? और इसमे दूसरे का कोई हाथ नही है, इसमे तुम ही जुम्मेवार हो। जैसे-जैसे तुम गौर से देखोगे अपने जीवन के दुखो को, तुम पाओगे कि कही भीतर मैं ही जिम्मेवार हू। वही माया है। और जिससे तुम्हे दुख मिल रहा है, उसको गिरा दो, उसे हटा दो। गाली किसी ने दी, उसको तो कहो कि तेरी बड़ी कृपा, और जहा चोट लगी, उस घाव को हटा दो।

कबीर ने कहा है, निंदक नियरे राखिए, आगन कुटी छवाय। वह तुम्हे जो गाली दे, उसको तो तुम घर ही ले आना, उसको तो कहना कि तू पास ही रह, भैया। तू दूर रहेगा, पता नही कभी दे न दे, मिलना हो न हो, यही रह, यही बगल मे तेरे लिए भी एक घर बना देते है। 'आगन कुटी छवाय'। उसको बढिया सुदर व्यवस्था कर दो रहने की, ताकि वह सतत मौजूद रहे और तुम अपने अहकार को अनुभव कर सको।

और असली सवाल अहकार छोडने का है। असली सवाल भीतर कुछ बदलने का है। लेकिन बदलोगे कैसे? अगर जिम्मेवारी दूसरे पर छोडते हो, तो तुम भीतर देखोगे ही नही।

इस भीतर के अधेपन का नाम माया है। और यह माया अनेक रूप ले लेती है। इसके रूप का कोई अत नही है। तुम जैसा चाहो, वैसा रूप ले लेती है, क्योकि माया सपना है। वहा कोई पदार्थ तो नही है कि रूप देने मे कोई कठिनाई हो।

तो कबीर कहते है, भक्त के लिए मूर्ति ही माया हो जाए, वह उसी को सम्हाल-सम्हाल के फिरता है।

एक घर मे मै पजाब मे मेहमान हुआ। सुबह स्नान करने के लिए निकला तो जिस कमरे से गुजरा, वहा देखा कि गुरुग्रथ साहब रखा है, नानक की वाणी रखी है, और एक लोटा रखा पास मे और एक दतवन रखी है! मै जरा हैरान हुआ कि दतवन और लोटा यहा किसलिए रखा है! तो उन्होने कहा कि गुरुग्रथ साहब के लिए। सुबह दतवन करने के लिए किताब रखी है वहा, मूर्ति भी नही है। गुरुग्रथ साहब के लिए दतवन रखी है! मूर्ति भी हो तो भी थोडा समझ मे आता है। ऐसे तो वह भी मूढतापूर्ण है, क्योकि तुम्हारी ही बनाई मूर्ति और तुम भलीभाति जानते हो बाजार से खरीद लाए हो, और अब दतवन और लोटा रखा हुआ है। लेकिन किताब के सामने तो हद हो गई। लेकिन हो गई है हद इसलिए कि किताब का नाम है 'गुरुग्रथ साहब'। और किताब मे एक व्यक्तित्व डाल दिया--'साहब'। तो भोजन

भी दिया जायेगा, गुरुग्रथ साहब को, सुलाया भी जायेगा, उठाया भी जायेगा।

कबीर कहते हैं, 'भक्तन के भक्ति होइ बैठी, जोगी के जोगन होइ बैठी, राजा के घर रानी। पडा के मूरत होइ बैठी, तीरथ हू मे पानी।

सारे ससार मे उसने बहुत रूप लिये हैं। प्रश्न यह है कि जहा भी तुम्हारी आसक्ति हो, जहा भी तुम्हारा मोह हो, जहा भी तुम्हारा अधापन लग जाए, राग जुड जाए, वही माया खडी हो जायेगी। अब किताब से राग लग गया तो किताब ही माया हो गयी। मुझसे राग लग जाये, वही माया हो गई। तो फिर मेरे कारण तुम परेशान होने लगे। और जहा माया होगी, वही परेशानी शुरू हो जायेगी।

जागो!

'माया महाठगिनि हम जानी!'

जागो! और देखो भीतर कैसे-कैसे तुमने कितने-कितने रूप खडे कर रखे है! और अपने ही हाथ!

समझ काफी है, तोडने की कोई जरूरत भी नही है। समझ आई तो तुम खुद ही हसोगे—इस लोटा और दतवन को देख के गुरुग्रथ साहब के सामने रखा। समझ आई कि तुम खुद ही हसोगे कि तुम मदिर की मूर्ति के सामने हाथ जोडे, घुटने टेके खडे हो, तुम उससे बाते कर रहे हो। तुम पागल हो। किससे बातचीत चल रही है?

लोग मूर्ति से भी नाराज, नाखुश, खुश होते है। बडा मजेदार है। और तुमने मागा कि इस लडके की नौकरी लग जाए। सयोग की बात लग गई तो तुम बडे प्रसन्न होते हो, मूर्ति से चर्चा करते हो, कि बडी कृपा है तेरी, तेरे बिना कुछ भी न होता लडके की नौकरी लग गई! न लगे नौकरी, नाराज हो जाते हो, मूर्ति को फेकने को उतारू हो जाते हो।

ऐसे लोगो को मैं जानता हू, जो गुस्से मे मूर्ति फेक आए कुए मे। क्योकि हो गये इतने दिन प्रार्थना करते-करते, पूजा करते-करते, और न कोई सुननेवाला है, न कोई पूरा करनेवाला है।

एक आदमी को मै जानता हू जो नास्तिक था, फिर आस्तिक हो गया। मैने उससे पूछा, 'क्या हुआ? तुम तो बडे नास्तिक थे!' उसने कहा कि अब मानना ही पडा। लडके की नौकरी नही लगती थी, सब उपाय कर लिए, सब की खुशामद कर ली, रिश्वत दे के देख ली, कुछ हल न हुआ। आखिरी, कोई रास्ता न रहा तो मदिर गया—और वहा मैंने कहा, कि अगर लग गई लडके की नौकरी पद्रह दिन के भीतर, तो सदा के लिए भक्त हो जाऊगा। अब हनुमान जी का भक्त हो गया हू।

हनुमान जी बेचारे इसके लडके की नौकरी लगवाने के लिए कैसे जिम्मेवार है! कोई भी सबध नही है। कोई हनुमान जी ने कोई एम्प्लायमेट एक्सचेज नही खोला हुआ है। और अगर वे खोलेगे भी तो बदरो को नौकरी लगवाएगे, आदमियो को नही। सबके अपने रिश्तेदार, नाते-रिश्तेदार है।

मैंने इस आदमी से कहा कि तुम बदर जैसे तो लगते भी नही। उसने कहा, क्या मतलब आपका? मैंने कहा, 'हनुमान जी तुम्हारी फिक्र करेंगे! तुम अकारण अपने को इतना महत्वपूर्ण मान रहे हो।' और इस कारण यह आदमी आस्तिक हो गया है। अब यह आता है रोज, हर मगलवार निश्चित रूप से प्रसाद लेने। मगर यह भरोसे का नही है। क्योकि नौकरी छूट जाये तो नाराज हो जाएगा। पत्नी मर जाए और हनुमान जी न बचाए—और कहा-कहा इसका साथ देगे? हजार उपद्रव यह लायेगा। और जहा भी इसने पाया कि नही हुआ काम पूरा यह आदमी कोई भरोसे का नही है। इसकी भक्ति माया का हिस्सा है। इसकी पूजा-प्रार्थना झूठी है। क्योकि जहा माग है, वहा कैसी पूजा, कैसी प्रार्थना!

जहा आकाक्षा है, वहा वासना है। वासना का प्रार्थना से कभी कोई सबध नही जुडना। और जब वासना खो जाती है, तब प्रार्थना करने को क्या बचता है? क्या करोगे प्रार्थना, तब तुम्हारा पूरा जीवन ही एक प्रार्थना होना है। अलग से करने को क्या बचता है? तुम ऐसे जीते हो—प्रार्थनापूर्ण हृदय से, अनुगृहीत भाव से सारा ससार तुम्हे इतना दे रहा है, जरूरत से ज्यादा दे रहा है। परमात्मा ने तुम्हे जो दिया है वह तुम्हारी योग्यता से अनतगुना ज्यादा है। क्या है तुम्हारी योग्यता? तुम्हे जीवन दिया है इतना काफी नही है? नौकरी चाहिए, तब तुम पूजा करोगे? तुम्हे इतनी बडी क्षमता दी है जागने की, होश की, कि तुम बुद्ध हो सको—वह काफी नही है? नौकरी चाहिए, तब तुम अनुग्रह भाव प्रगट करोगे?

जो दिया है, वह जरूरत से ज्यादा है—यह भक्त का भाव है। और जो मेरे पास है, वह कम है, और मुझे मिले—यह अभक्त की प्रार्थना है। अगर इस हिसाब से सोचोगे, तो तुम्हे मदिरो मे अभक्त मिलेगे, भक्त नही। भक्त क्या मदिर मे जायेगा? क्योकि भक्त के लिए तो यह सारा अस्तित्व ही मदिर है। वह जहा है, वहा मदिर है। और वह जो कर रहा है, वही उसकी प्रार्थना है।

कबीर ने कहा है, जो कुछ करू सो पूजा! कबीर को किसी ने कभी मदिर मे जाते नही देखा। इसलिए काशी के पडित, पुजारी कबीर को कभी मान्यता नही दिये। और मरते वक्त कबीर ने कहा कि मुझे मगहर ले चलो।

कहानी है कि मगहर मे जो मरता है, वह गधा होता है, और काशी मे जो मरता है, वह मुक्त हो जाता है। जिन्दगी भर काशी रहे, मरने के पहले कबीर ने अपने शिष्यो को कहा, मुझे मगहर ले चलो! काशी मे मै न मरूगा। क्योकि अगर काशी मे मरे और स्वर्ग गये तो इसमे अपनी क्या खूबी! मगहर मर के स्वर्ग जाना है।

एक मजाक कबीर का! हिम्मत के आदमी थे। भरोसे के आदमी थे। क्योकि अगर भगवान पे भरोसा है, तो तुम मगहर मे मरो कि काशी मे, क्या फर्क पडता है?

लोग मरने के लिए काशी जाते है! जीते है मगहर मे गधो की तरह, मरते है काशी मे, इस आशा मे कि मोक्ष चले जायेंगे। कबीर जिये काशी मे सतो की भाति,

मरने गये मगहर! लोग सोचते हैं, जियो कैसे ही, मरो काशी मे! जियो कैसे ही! मरते वक्त राम का नाम ले लेना, गंगा-जल पिला देना, काम खत्म हो गया।

तुम बडे होशियार हो, चालाक हो! तुम्हारा धर्म भी तुम्हारी चालाकी का विस्तार है। जियो जैसे तुम्हे जीना है—माया के साथ—मर लेना राम का नाम ले के!

ध्यान रखना, तुमसे राम का नाम भी न निकलेगा मरते वक्त। क्योकि मृत्यु मे तो वही निकलेगा, जो जीवन मे जिया गया है। जो पूरे जीवन का समग्रीभूत सार है, वही तो मृत्यु मे तुम्हारे साथ जायेगा।

तो पण्डे-पुजारी है, आदमी मर रहा है, वे उसके कान मे 'राम' दोहरा रहे है। वह खुद भी नही दोहरा सकता। वह अपने मन मे माया को इकट्ठा कर रहा है। जीवन भर मे जो पाया, उसका हिसाब लगा रहा है, जो नही पाया उसकी शिकायते कर रहा है। वह अपने भीतर तैयारी कर रहा है नये ससार मे प्रवेश करने की, नये गर्भ मे प्रवेश करने की—जहा जो-जो अधूरा रह गया, वह पूरा हो सके, जो तिजोरी खाली रह गई, वह भरी जा सके, जो स्त्री नही मिली, मिलनी थी, वह मिल सके, जो पद पाना था, नही पाया जा सका, वह पा सके। वह अपने भीतर माया के सब बीज इकट्ठे कर रहा है। इसके पहले कि शरीर छोडे, उसकी आत्मा सारे बीजो को, माया के, इकट्ठे कर लेगी, ताकि नये गर्भ मे प्रविष्ट हो के फिर यात्रा शुरू हो जाए। और किराये का आदमी! किराये का आदमी, क्योकि वह भी 'राम' उसके कान मे दोहरा रहा है और सोच रहा है कि पाच रुपये मिलनेवाले है। यह बडा मजेदार मामला है। वह आदमी भीतर माया इकट्ठी कर रहा है। जो आदमी उसके कान मे राम-राम कह रहा है, वह माया का हिसाब लगा रहा है, और इन दोनो के बीच मे राम फसे है!

ठीक कहते है कबीर, 'निरगुन फास लिए कर डोले, बोलै मधुरी बानी।'

सब फसे मालूम पडते है। पुजारी फसे है, पण्डे फसे है, भक्त फसे है। माया के रूप बदल जाते है, फसावट नही बदलती। तुम जहा भी अपने को फसा हुआ पाओ, खोज-बीन करना भीतर, माया होगी। और जहा-जहा तुम फसा हुआ पाओ, धीरे-धीरे वहा-वहा समझपूर्वक काटना। समझपूर्वक कहता हू, क्योकि गैर-समझपूर्वक काट लेते है, तब अधूरी रह जाती है बात। तब नया सिलसिला शुरू हो जाता है। इस पत्नी को छोड के भाग जाओगे, दूसरी पत्नी कही-न-कही मिल जायेगी। घर छोडोगे, आश्रम मे पहुच जाओगे। घर मे मोह था, आश्रम मे मोह हो जायेगा। कच्चा कुछ भी मत तोडना, कच्चा तोडा नही जा सकता। इसलिए कहता हू, समझपूर्वक। समझपूर्वक का अर्थ है, पक के। समझने की कोशिश करना। जितनी गहरी से गहरी समझने की कोशिश कर सको, करना कि क्यो फसा हू, क्या फसावट है? क्यो बधा हू? कहा से यह बधन मेरे भीतर पैदा हो रहा है? प्रवेश करना भीतर, कारण खोजना, और सब भाति कारण को समझना। जैसे ही समझ पूरी होगी, कारण

विलुप्त हो जाएगा। तुम्हे तोडने की जरूरत भी न पड़ेगी। पक जाता है पत्ता,सूख जाता है, फिर हवा का छोटा-सा झोका भी न हो, तो भी सूखा पत्ता गिरेगा ही। कोई कुल्हाडी ले के काटना नही पडेगा। अक्सर लोग कुल्हाडी ले के काट लेत है। तुम्हारे तथाकथित साधु-सन्यासी ऐसे ही लोग हैं, जिन्होने कुल्हाडी से काट दिया, घाव रह गया। अब वह नई जगह उस घाव को भर रहे है। वही दौड है जो पीछे थी। कोई फर्क नही पडता। नाम बदल जाते है, रूप बदल जाते है, माया फिर जगह बना लेती है।

पकाना! प्रौढता! होश! समझ! जल्दी मत करना। परमात्मा को कोई जल्दी नही है। तुम्हे भी जल्दी की कोई जरूरत नही है। धैर्यपूर्वक समझ को गहरा करना। जैसे-जैसे समझ साफ होगी, जैसे-जैसे तुम्हे दिखाई पडेगा, गाली मे कष्ट नही है, मेरे अहकार मे है, तब अपने अहकार को समझने की कोशिश करना। जिस दिन समझ पूरी हो जायेगी, उसी दिन तुम पाओगे कि भीतर एक सूखा पत्ता लटका था, वह गिर गया। उसके गिरते ही तुम मुक्त हो।

'माया महाठगिनि हम जानी।

कहे कबीर सुनो भाई साधो, यह सब अकथ कहानी।'

इस सूत्र मे हम शुरू करते है। पूरी कहानी अकथ है, कही नही जा सकती, फिर भी कबीर ने कही है, और बडी मधुरता से, और बडी सफाई से कही है। बहुत स्पष्ट कही है। तर्क का जाल नही है। सीधे-साफ, एक अपढ आदमी के शब्द है। तुम भी तर्क का जाल खडा मत करना। कबीर को सीधा-सीधा समझने की कोशिश करना। कबीर का भाव अगर तुम्हारे भीतर प्रविष्ट हो जाए, तो तुम्हे समाधि के लिए कुछ भी करना न होगा।

समझ काफी है। समझ क्राति है, समझ रूपान्तरण है।

कुछ करना पडता है, इसीलिए कि समझ काफी नही है। इसलिए ध्यान करो, साधना करो, क्योकि समझ काफी नही है। समझ काफी हो, तो कुछ करने को नही बचता। 'अनकिये सब होय'—कबीर का वचन है। 'अनकिये सब होय।' कुछ करना नही पडता। लेकिन तुम यह मत समझ लेना कि तुम्हे कुछ नही करना है। तुम्हे तो बहुत कुछ करना पडेगा। उस सबको करने मे तुम्हारी समझ की क्षमता बढेगी।

यहा जो ध्यान के प्रयोग चलेगे समाधि शिविर मे, उन्हे सपूर्ण भाव से करना, उनके करने मे कुछ क्षणो के लिए झलक मिलनी शुरू होगी—उस परम अवस्था की, जिसकी तरफ कबीर इंगित करेगे। लेकिन अगर तुमने अपने को थोडा भी बचाया तो चूकोगे। तुम पूरे के पूरे ही ध्यान मे डूबने की कोशिश करना। अपनी तरफ से सब पूरा कर देना और शेष परमात्मा पर छोड देना। फिर भी न हो तो तुम्हारा कोई दायित्व नही। अपनी तरफ से पूरी कोशिश कर लेना, फिर परमात्मा

पे छोड देना। लेकिन अपनी तरफ से आधी कोशिश करके परमात्मा पे नहीं छोडना। क्योकि उसका हाथ तुम्हारे पास तभी आता है, जब तुम अपनी पूरी कोशिश कर चुके होते हो, उसके पहले उसकी कोई जरूरत भी नही है।

एक नाव मे कुछ यात्री यात्रा कर रहे थे और एक फकीर भी था। तूफान उठा। भयकर तूफान था और नाव डूबने के करीब आने लगी। सारे लोग घुटने टेक के प्रार्थना करने लगे, चीख-पुकार मच गई परमात्मा, बचाओ-बचाओ! सब हैरान हुए, फकीर चुपचाप बैठा था। तूफान चला गया। तब लोगो ने फकीर को घेर लिया और कहा, हम कुछ और अपेक्षा रखते थे। तुम फकीर हो, सन्यासी हो, तुम्हे तो प्रार्थना करनी चाहिए थी। हम सब प्रार्थना कर रहे थे, तुम खाली बैठे रहे। क्या मामला है?

उस फकीर ने कहा, जब तक जो हम कर सकते हैं, वह पूरा न कर लिया जाए, तब तक हम प्रार्थना के हकदार नही और परमात्मा का हाथ तभी आता है, जब हम अपने हाथो का पूरा उपयोग कर चुके। जब तक तुम्हारे पास कुछ करने को बचा है, तब तक तुम्हे परमात्मा की जरूरत भी नही है।

ध्यान के प्रयोग मे तुम अपने को पूरा डुबा देना। अगर तुमने कुछ भी न बचाया तुम अचानक उसका हाथ अपने सिर पर पाओगे। अचानक तुम पाओगे तुम उठा लिये गये। अचानक तुम पाओगे कोई तुम्हे ले चला। कोई नाव तुम्हे दूसरे किनारे की तरफ ले चली। फिर 'अनकिये सब होय'। उसके पहले नही। अपनी तरफ से पूरा कर लेना, फिर उसकी तरफ से शुरू हो जाता है।

आज इतना ही।

दिनाक १२ नवम्बर, १९७८,
श्री रजनीश आश्रम, पूना

मन माया तो एक है, माया मनहिं समाय ।
तीन लोक संशय पड़ा, काहिं कहू समुझाय ।।
बेढ़ा दीन्हो खेत को, बेढा खेतहि खाय ।
तीन लोक संशय पड़ा, काहि कहूं समुझाय ।।
मन जानै सब बात, जानत ही औगुन करै ।
काहे की कुसलात, कर दीपक कुवै पड़ै ।।
मन सागर मनसा लहरि, बूड़े बहुत अचेत ।
कहहि कबीर ते बांचि है, जिनके हृदय विवेक ।।
मन दीया मन पाइये, मन बिन मन नहिं होइ ।
मन उनमन उस अंड ज्यू, अनल अकासां जोइ ।।
मन गोरख मन गोविन्दौ, मन ही औघड़ होइ ।
जे मन राखै जतन करि, तो आपै करता सोइ ।।
तन के जोगी सब करै, मन को करै न कोई ।
सब विधि सहजे पाइये, जो मन जोगी होई ।।
मन ऐसो निरमल भया, जैसो गगा नीर ।
पाछे-पाछे हरि फिरै, कहत कबीर-कबीर ।।

२

मन गोरख मन गोविन्दौ

मन माया तो एक है, माया मनहिं समाय।
तीन लोक सशय पडा, काहि कहू समुझाय।।

जैसा मैंने कल कहा, माया कोई ब्रह्म के साथ जुडा हुआ दार्शनिक सिद्धात नही है, वरन् प्रत्येक मनुष्य के मन के साथ जुडी प्रक्रिया है। माया कोई अण्टॉलॉजिकल कोई सत्तात्मक बात नही है, सायकोलॉजिकल, मनोवैज्ञानिक बात है। इसलिए जो माया के सिद्धात के सबध मे शास्त्रो की खोज करते रहेगे, सिद्धात को जमाते रहेगे तर्क और विचार करते रहेगे, वे माया को जानने मे चूक जायेगे। और जो माया को ही न जान पाया, वह ब्रह्म को कैसे जान पायेगा? जो भ्रम को ही न समझा, वह सत्य को कैसे समझेगा? जिसने ठीक से अधेरे को न पहचाना उसके आलोक को पहचानने का भरोसा नही। भूल को ठीक से जान कर ही व्यक्ति सत्य के निकट पहुचता है। जैसे-जैसे असत्य की पहचान बढती है, वैसे-वैसे सत्य करीब आता है। और कोई रास्ता नही है। असत्य को भलीभाति पहचान लेना कि असत्य है—और सत्य के द्वार खुल जाते है।

सबसे पहली बात पहचानने की है भूल क्या है सशय क्या है भ्राति कहा हुई है, भटके कहा है?

मजिल की फिक्र छोडो, भटकन को ठीक से समझ लो, मजिल सामने आ जाती है। मत चिंता करो कि सत्य क्या है। तुम जान भी न सकोगे सत्य अभी। कोई उपाय नही है सत्य को जानने का, जब तक असत्य के साथ तुम जुडे हो। जब तक तुम असत्य हो, सत्य को कैसे जान पाओगे? और स्वय के भीतर सत्य को पाने की क्या विधि है? असत्य को पहले पहचानना पडेगा।

तुम जाते हो एक चिकित्सक के पास। वह इसकी फिक्र नही करता कि स्वास्थ्य क्या है, वह इसकी चिंता करता है कि बीमारी क्या है। वह इस बात की फिक्र करता है कि बीमारी कहा है। वह बीमारी का निदान करता है। स्वास्थ्य की चिंता करना व्यर्थ है, बीमारी का निदान ठीक हो जाए, बीमारी पकड मे आ जाए, तो बीमारी को नष्ट किया जा सकता है। और जब बीमारी नही रह जाती, तो जो

शेष बचता है वही स्वास्थ्य है। स्वास्थ्य को सीधे पकडने का कोई उपाय नही है। इसलिए तुम सारे शास्त्र देख डालो दुनिया मे चिकित्सा के, स्वास्थ्य की कोई परिभाषा न पाओगे। स्वास्थ्य की कोई परिभाषा हो भी नही सकती। शब्दो मे बाधने का उसे कोई उपाय भी नही हैं।

'स्वास्थ्य' शब्द बडा महत्वपूर्ण है। उसका अर्थ है स्वय मे जो स्थित हो गया। आत्मस्थिति का नाम स्वास्थ्य है अपने से जो भटक गया, उसका नाम अस्वास्थ्य है। जो खुद के केद्र से च्युत हो गया वह बीमार है, और जो खुद के केद्र पर वापस लौट आया, वह स्वस्थ है। स्वस्थ यानि स्व-स्थिति। लेकिन स्व-स्थित होना हो तो पहचाननी पडती है बीमारी। निदान स्वास्थ्य का नही होता है, रोग का होता है। इलाज स्वास्थ्य का नही होता, रोग का होता है। और जब रोग नही होता, जब रोग शून्य हो जाता है, तब तुम नीरोग हो जाते हो, तब तुम स्वस्थ हो जाते हो।

ब्रह्म को पाने का कोई उपाय नही। ब्रह्म तो परम स्वास्थ्य है। माया को समझने का उपाय है, वह बीमारी है। और जैसे-जैसे निदान साफ होता जाए, जैसे-जैसे तुम्हारी आखे माया को पहचानने लगे, वैसे-वैसे माया तिरोहित होने लगेगी।

एक बात और समझ लेना। चिकित्सक को तो निदान भी करना पडता है, फिर इलाज करना पडता है। लेकिन आत्मा की चिकित्सा मे निदान ही इलाज है, निदान ही उपचार है। ठीक मे पहचान लिया, मुक्त हुए, और कोई अलग से औषधि की जरूरत नही है। क्योकि यह बीमारी केवल भ्राति की है। यह ऐसे ही है, जैसे दूर रास्ते पर तुम आते हो अधेरे मे, राह के किनारे लगा हुआ एक वृक्ष का ठूठ तुम्हे लगता है कोई आदमी खडा है, चोर-डाकू खडा है। तुम जैसे-जैसे करीब आते हो वैसे-वैसे भ्रान्ति मिटने लगती है। और अगर तुम्हारे हाथ मे दीया हो, तो तुम जान लोगे कि ठूठ है। फिर क्या तुम यह पूछोगे कि वह जो मेरी भ्राति थी, कि आदमी खडा है, अब उससे कैसे छुटकारा पाऊ ? नही, ठूठ को पहचान लेने से ही, वह जो आदमी होने की भ्राति होती थी, उससे छुटकारा हो गया।

असत्य को ठीक से जान लेना, सत्य को पा लेने का मार्ग है। मार्ग भी नही, सत्य को पा ही लिया, जिसने असत्य को पहचान लिया। इसलिए कबीर पहले माया की बात कर रहे है कि माया क्या है।

पहला सूत्र 'मन माया तो एक है, माया मनहि समाय। तीन लोक सशय पडा, काहि कहू समझाय ॥'

और माया के सबध मे इतने सिद्धात गढे गये कि भारत का पूरा अतीत इतिहास माया के सबध मे सिद्धातो से भरा है।

इसलिए कबीर कहते है, 'तीन लोक सशय पडा, काहि कहू समझाय।'

किसको समझाए ? लोग बडी-बडी चर्चा कर रहे है। बडे तत्त्व विचार कर रहे है, माया के बडे सिद्धात गढ रहे है। तुम्हारा सिद्धात गलत और मेरा ठीक, इसके लिए

बड़े तर्क जुटा रहे हैं, शास्त्रो का उल्लेख कर रहे हैं। किसको समझाऊ तीन लोक सशय पडा।

और बात बडी सीधी और सरल है। माया को कही और खोजने जाने की जरूरत नही। 'मन माया तो एक है।' मन का ही विस्तार माया है।

'माया मनहिं समाय।'

और माया को नष्ट नही करना पडता। जैसे ही तुमने पहचाना कि माया मन मे ही समा जाती है।

माया मन की विकृती है, मन की अप्राकृत दशा है।

क्या है बीमारी?

बीमारी के लिए भी एक चीज जरूरी है कि तुम जिंदा रहो। मरे हुए आदमी को कोई बीमारी नही होती। मरे बडे लाभ मे है, उन्हे कोई बीमारी नही होती, बीमारी का भय भी नही होता, चिकित्सक के द्वार पे उन्हे दस्तक भी नही देनी पडती, इलाज की परेशानी से भी नही गुजरना पडता। मरो को लाभ बडा है। अब दुबारा वे मर भी नही सकते, इसलिए मरने का कोई भय भी नही होता।

बीमारी के लिए एक बात जरूरी है कि स्वास्थ्य ही जीवन है। बीमारी बिना जीवन के नही घट सकती। इसका यह अर्थ हुआ कि बीमारी जीवन की ही एक विकृति है। जीवन ही कही उलझ गया, जीवन ही कही भटक गया। जीवन की धारा ही सागर की तरफ न जा के, मरुस्थल की तरफ मुड गई—पर है धारा जीवन की ही—चाहे मरुस्थल चले जाओ, चाहे सागर चले जाओ। मरुस्थल मे भटकाव हो जायेगा, मरुस्थल सोख लेगा जीवन की उर्जा को, तुम्हे निर्वीर्य कर देगा, अशक्त कर देगा। कोई उपलब्धि न होगी, तुम सिर्फ भटकोगे और भ्रष्ट और नष्ट होओगे। सागर मे उपलब्धि है।

सोचना जरूरी है। मरुस्थल मे भी नदी खो जाती है, सागर नही मिलता। सागर मे भी नदी खोती है, लेकिन सागर को पा लेती है। खोना दोनो तरफ होता है। दोनो हालत मे मिटना पडता है। लेकिन एक मिटने मे कोई उपलब्धि नही है, दूसरे मिटने मे सभी कुछ उपलब्ध हो जाता है।

ससार मे भी आदमी खो जाता है, परमात्मा मे भी खोना पडता है। लेकिन ससार मे खो जाना ऐसे है, जैसे नदी मरुस्थल मे खो गई। सूखती है, सडती है, चीखती है, पुकारती है, मुक्त होना चाहती है, लेकिन कोई मार्ग नही मिलता, हजार धाराओं मे बट जाती है। मरुस्थल सोख लेता है। न कोई मंजिल आती आती है, न कोई उपलब्धि, न वह नृत्य घटित होता, जो सागर से मिलने के समय घटित होता है। वह परम समाधिस्थ अवस्था नही घटती, ऐसे ही खो जाती है, मुफ्त खो जाती है, बेचैनी मे खो जाती है, विषाद मे खो जाती है।

सागर मे भी खोती है नदी। खोना तो एक जैसा है, लेकिन उस खोने का मजा

और है! उस खोने मे आनद ही और है! उस खोने मे दुख और पीडा नही है, क्योकि यहा नदी खोती है, वहा नदी बडी होती है। वस्तुत खोना नही है वह, पाना है। क्योकि नदी मिट जायेगी नदी की तरह, एक क्षुद्र सकीर्ण धारा की तरह, किनारे खो जायेंगे, पुराना रूप, नाम खो जायेगा—विराट हो जायेगा लेकिन उसकी जगह! नदी सागर हो जायेगी। तब तक क्षुद्र थी, अब विराट हो जायेगी। तब तक बधी थी, अब अनबधी हो जायेगी। तब तक सीमा मे थी, अब असीम हो जायेगी।

मनुष्य भी दो तरह खोता है, जीवन की नदी भी दो तरह खोती है। एक तो माया। माया का अर्थ है मरुस्थल—जहा तुम करते तो बहुत हो, पाते कुछ भी नही, दौडते तो बहुत हो, पहुचते कही भी नही, शोरगुल तो बहुत मचाते हो, लेकिन जीवन मे कोई सगीत पैदा नही होता, सघर्ष बहुत करते हो, विजय हाथ नही आती, हार ही हार हाथ लगती है।

पराजय ससार की कथा है! वहा जो भी जाता है, हारा हुआ लौटता है। वहा मिटता तो है, लेकिन वह मिटना सडने जैसा है।

एक बीज को पत्थर पे रख दो, वहा भी वह मिटेगा—बिना अकुर हुए। उसी बीज को भूमि मे दबा दो, वहा भी मिटेगा—लेकिन यहा मिटेगा और वहा नया अकुर आ जाएगा। अकुर की भाति जियेगा, बीज की भाति मिटेगा—विराट वृक्ष हो जायेगा। तुम बीज को सडा भी सकते हो, वही माया है। तुम बीज को वृक्ष भी बना सकते हो, वही ब्रह्म है। दोनो तुममे छिपे है।

माया तुम्हारा ही भटकाव है। और ब्रह्म तुम्हारा ही मार्ग पर आ जाना है। बीमारी भी तुम्हारी है, स्वास्थ्य भी तुम्हारा है। बीमारी का निदान कर लेना जरूरी है ताकि तुम भटक न सको।

'मन माया तो एक है, माया मनहि समाय।'

और जब तुम जान लेते हो, तो क्या होता है माया का? कहा खो जाती है माया? वह जो तुम्हारी शक्ति भटक रही थी, वह भटकती नही, मार्ग पर आ जाती है, सागर की तरफ बहने लगती है। सारी माया मन मे ही समा जाती है।

तुम क्रोध करते हो, क्रोध माया है। क्योकि उससे तुम मिटोगे तो, पाओगे कि कुछ भी नही। इसे तुम माया की परख की कसौटी बना लो कि जिससे तुम्हारे भीतर कुछ मिटता हो, बनता कुछ भी न हो, जिससे तुम्हारे भीतर विध्वस तो होता हो, सृजन बिलकुल न होता हो, जिससे तुम्हारे भीतर बीज सड जाता हो, लेकिन अकुर न निकलता हो, नदी नष्ट हो जाती हो, सागर न बनती हो। इसे तुम कसौटी बना लो।

विध्वसात्मक वृत्ति बीमारी है। स्वास्थ्य सृजनात्मक है। तुम क्रोध करते हो, क्रोध मे शक्ति जाती है, लेकिन मिलता क्या है? सिवाय विषाद के कुछ भी नही मिलता है। तुम रोते हो, चीखते-चिल्लाते हो, उदास होते हो, उदासी मे शक्ति

खोती है मरुस्थल मे—पाते क्या हो? उदासी से कही कोई फूल खिलते है! उदासी से कही जीवन मे कोई नृत्य आता है! तुम घृणा करते हो, तब तुम शक्ति तो व्यय कर रहे हो, मिलेगा क्या? निष्पत्ति क्या है?

हमेशा इसे कसौटी की तरह भीतर जाचो कि जो मैं करने जा रहा हू, वह मरुस्थल मे जायेगा, या सागर मे? और अगर मरुस्थल मे जाता हो, तो सजग हो जाओ। वह यात्रा-पथ नही है, वह भटकाव है। क्या होगा अगर तुम क्रोध न करोगे? तो जो क्रोध की शक्ति बचेगी, वह कहा जायेगी? वह मन मे ही समा जायेगी। और जब तुम क्रोध से बच जाते हो, और क्रोध मे नष्ट होने वाली शक्ति उन्मुक्त हो जाती है, और मन मे वापस समा जाती—उस लौटती हुई शक्ति का नाम ही करुणा है। जो शक्ति खो रही थी मरुस्थल मे, वह क्रोध थी। जो शक्ति मरुस्थल मे खोने से रुक गई और स्वय मे लीन हो गई, सागर मे डूब गई, वही करुणा है।

क्रोध और करुणा एक ही शक्ति के दो नाम है। क्रोध उसी शक्ति की रोग की अवस्था है। करुणा उसी शक्ति की स्वास्थ्य की अवस्था है। घृणा और प्रेम एक ही शक्ति के दो ढग है। जब घृणा की शक्ति वापस तुममे लीन हो जाती है, तो अपार प्रेम का उदय होना है। बुद्धो से बडे प्रेमी खोजना कठिन है। क्राइस्ट और कृष्ण से बडे प्रेमी खोजना कठिन है। घृणा लीन हो गई, मरुस्थल म नही खोई, सागर पा लिया। बीज को भूमि मिल गई।

इसको कसौटी की तरह सदा साथ रखो जब भी तुम कुछ करने जाओ, क्योकि माया तुमसे लिप्त है, तुम्हारे प्रत्येक कृत्य मे लिप्त है। तुम्हारे रोए-रोए मे बीमारी है और जगह-जगह मे जागना पडेगा, और रोए-रोए से माया से मुक्त होना होगा।

'मन माया तो एक है, माया मनहि समाय।
तीन लोक सशय पडा, काहि कहू समझाय।।'

और कबीर कहते हैं कि लोग बडे विवाद कर रहे है, और लोग बडे शास्त्रार्थ मे लगे हैं, और लोग यह सिद्ध करते है, और वह असिद्ध करते है। और 'मन माया तो एक है'। और वे देखते ही नही कि यह तुम्हारा ही होने का ढग है। निश्चित ही गलत ढग है—पर तुम्हारा ही होने का ढग है। माया तुम्हारे गलत होने का ढग है ब्रह्म तुम्हारे ठीक होने का ढग है। और ध्यान रहे, ब्रह्म होने की चेष्टा मत करो, क्योकि उसे सीधा खोजने का कोई उपाय नही। तुम सिर्फ माया से बच जाओ, और ब्रह्म मिल जायेगा। इसलिए समस्त साधना निषेध है—माया का, रोग का, विकृति का जब विकृति नही होती, तो शक्ति अपने-आप सुकृत हो जाती है।

'बेढा दीन्हो खेतको, बेढा खेतहि खाय। तीन लोक सशय पडा काहि कहू समझाय।।'

खेत के चारो तरफ बाड लगाते है—खेत की रक्षा के लिए। मन भी बाड है तुम्हारी रक्षा के लिए। लेकिन तुम ऐसी बाड भी लगा सकते हो कि वह पूरे खेत पे छा जाए। तो बचाए तो नही, उलटा नष्ट कर दे। बाड थी खेत को बचाने को,

लेकिन तुम ऐसी बाड भी लगा सकते हो कि बाड का जगल हो जाए, खेत मे जगह न बचे कुछ और फसल बोने को।

मन बाड है। उपयोगी है—बाड की तरह। लेकिन अगर तुम्हें खा जाये, अगर तुम मन हो मन हो जाओ, तो बाड का क्या प्रयोजन, खेत ही न बचे!

ऐसा अक्सर हो जाता है। और यह माया का दूसरा सूत्र है।

जीवन मे बाड खेत को खा जाती है और लोगों को पता नही चलता। समझो! जीवन को चलाना है तो रोटी की जरूरत है, छाया की भी जरूरत है। एक तरह की सुरखा भी चाहिए, सुविधा भी चाहिए, बिल्कुल आवश्यक है। लेकिन फिर एक आदमी जीवन भर मकान ही बनाने मे लगा रहता है, मकान को ही बडा करने मे लगा रहता है। वह वक्त ही नही आता, जब वह रहता। मकान मे निवास करता, वह समय ही नही आ पाता। रोटी चाहिए, कपडे चाहिए, तो थोडा धन तो चाहिए ही होगा। लेकिन फिर एक आदमी धन की राशि लगाने मे जुड जाता है। फिर वह यह भूल ही जाता है कि धन एक बाढ थी—धन खेत हो गई, बाढ खेत को खा गई!

धन की एक जरूरत है। जरूरत की एक सीमा है। कोई आवश्यकता असीम नही है। वासना असीम है। आवश्यकताए तो बडी छोटी हैं—रोटी चाहिए, पानी चाहिए, कपडा चाहिए। अगर दुनिया मे सिर्फ आवश्यकताए हो तो एक भी आदमी भूखा न हो, एक भी आदमी दीन न हो, दरिद्र न हो। क्योंकि आवश्यकताए तो सीमित है। पशु-पक्षियो की पूरी हो जाती है कैसा आश्चर्य कि आदमी की पूरी नही होती! वृक्ष अपनी आवश्यकता पूरी कर लेते है, जिनके पास पैर भी नही है कही जाने को। एक ही जगह खडे रहते है और आवश्यकताए पूरी हो जाती है। पशु-पक्षी जिनके, पास बडी बुद्धि, विश्वविद्यालय का शिक्षण नही, वे भी पूरी कर लेते है अपनी आवश्यकताओ को। आदमी आवश्यकताओ को क्यो पूरी नही कर पाता? लगता है कही कुछ भूल हो गई।

आवश्यकताए तो ठीक है, वासना खतरनाक है। फर्क क्या है? आवश्यकता तो बाड है, वासना, पूरा खेत हो गई। तुम्हारी जरूरते तो पूरी हो सकती है, लेकिन तुम्हारी कामनाए पूरी नही हो सकती।

जरूरत पर रुक जाना समझदारी है। कामना मे बढते जाना पागलपन है। फिर उसका कोई अत नही। देखो लोगो की तरफ!

मैं एक आदमी को जानता हू, जिसके सात मकान है। और कई हजार रुपये महीने का किराया आता है। लेकिन उस आदमी ने एक छोटी-सी खोली ले ली है किराये की, उसमे रहता है! एक साइकिल है उस आदमी के पास और वह है। साइकिल का उपयोग वह किराये की वसूली के लिए करता है। खोली मे रहता है, खाना होटल मे खा लेता है। उस आदमी के एक बगले मे मुझे रहने का मौका

मिला। तो हर महीने एक तारीख को वह आ के अपना किराया ले जाता। जो मित्र उसके बगले मे रहते थे, जिनका मैं मेहमान था, उनसे मैंने पूछा कि यह आदमी कौन है! वे हसने लगे, उन्होने कहा, यह मकान-मालिक है, उसके कपडो मे छेद है। साइकिल भी न मालूम पहला सस्करण है। वह दूर से आता है तो पता चलता है, खडबड-खडबड चला आ रहा है। उसको देख के कोई भी नही कह सकता कि इस आदमी के पास सात मकान है। सात मकानो की अदाजन कीमत कोई बीस लाख रुपया है। हजारो रुपये महीने वह किराया वसूल करता है, लेकिन अपने लिए वह एक खोली मे रहता है, पाच रुपये महीने किराये की! इस आदमी के जीवन को बाड खा गई।

एक बार ऐसा हुआ कि मेरे सामने एक डॉक्टर रहते थे। मिलिटरी के रिटायर्ड डॉक्टर थे। उन्होंने कभी शादी नही की। मिलिटरी मे चोट लग जाने की वजह से वे समय के पहले रिटायर हुए। तो उनको कोई मिलिटरी से पेन्शन मिलती थी, काफी अच्छी। कोई लाख रुपये का बगला था, और कोई दो लाख रुपया उनके बैंक मे जमा था, लेकिन उनका कुल भोजन चाय और पापड! बस वे उसी पर जीते थे। बीमार पडे, हार्टअटैक हुआ, और उनकी बोली बद हो गई। तो उनका तो कोई भी नही था। आधे मकान को उन्होंने किराए पे दे रखा था। तो किरायेदार ने मुझे आ के कहा——मैं सामने ही रहता था कि डॉक्टर साहब का मुह बद हो गया है, वे बोल नही पा रहे हैं। और लगता है बहुत सकट की अवस्था मे है। तो मैं गया। तो मैंने उनसे कहा कि डॉक्टर को बुलाऊ? तो उन्होने इशारा किया कि रुपये कौन देगा! तो मैंने कहा, उसकी आप चिंता न करे। डॉक्टर को बुलाया। डॉक्टर ने कहा, यह तो ज्यादा सकट की अवस्था है, और इन्हे इसी वक्त अस्पताल ले जाना पडेगा। तो एम्बुलैन्स बुलवाई। एम्बुलेन्स मे चढने के पहले उन्होने मुझसे कहा कि ताला लगा के चाबी मुझे दे दे। तो सामने उनके उन्होने ताला लगाया—बोलती बद है, और घटे भर बाद वे मर गये! लेकिन उन्होंने चाबी सामने ले के रखवा ली। और जब वे मर गये तो उनकी जेब मे पाच हजार रुपये थे! और मुझसे उन्होने कहा कि डॉक्टर की फीस कौन देगा! बोल भी नही सकते थे!

बाड खेत बन जाती है।

मन उपयोगी है, अगर समझ हो तो मन बडा उपयोगी है। मन राडार-यत्र है। वो हवाई जहाज मे यात्रा करो, तो राडार लगा होता है, वह दो सौ मील दूरी तक की खबर देता रहता है। चित्र आ जाते हैं, क्योंकि हवाई जहाज तो इतना तीव्र यान है कि अगर दो सौ मील पहले पता न चले, तो टक्कर हो ही जाए। तो राडार दो सौ मील तक, बादल है, कोई यान है, कोई पक्षी है—परदे पर फोटो आते रहते है। सौ मील पहले ही तुम्हे बचाव करना पडेगा, क्योंकि कोई भी खतरा है, तीव्र गति इतनी है कि तुम अगर दो सौ मील पहले नही बचे, तो खतरे मे पहुच

जाओगे।

मन एक राडार यंत्र है, जिससे तुमको सब तरफ की झलक मिलती रहती है। बडा उपयोगी है—समझदार के हाथो मे, नासमझ के हाथ मे बडा खतरा है। नासमझ मन का उपयोग ही नही कर पाता, मन ही उसका उपयोग कर लेता है। गुलाम मालिक हो जाता है, मालिक गुलाम हो जाता है। यही तुम्हारी दशा है। गृहस्थ की यही मेरी परिभाषा है, कि जिसकी बाड खेत को खा गई। और सन्यासी की मेरी यही परिभाषा है—खेत खेत है, बाड बाड है। न तो खेत बाड को खायेगा, न बाड खेत को खायेगी, क्योंकि दोनो की जरूरत है। बाड चाहिए, सुरक्षा चाहिए खेत को।

बाड की तरह मन बडा उपयोगी है। उसकी जीवन मे बडी जरूरत है। लेकिन रुक जाने की समझ होनी चाहिए, कहा रुक जाए!

धन आवश्यक है, लेकिन धन को ही इकट्ठे करते रहना पागलपन है। मकान जरूरी है, लेकिन जीवन भर मकान बनाते रहना, और मकान मे रहने की सुविधा ही न मिल पाए, समय ही न मिल पाए और जीवन गवा देना, पागलपन है। कपडे चाहिए, लेकिन एक आदमी कपडे ही इकट्ठा करता रहे, कपडो मे ही खो जाए।

अगर ठीक-ठीक आदमी विवेकपूर्ण ढग मे जिए, तो मन से ज्यादा कुशल कोई यंत्र नही है। अभी तक कोई यंत्र वैज्ञानिक नही बना पाए, जो मन के मुकाबले हो। दूर देख सकता है, पास देख सकता है, परिस्थिति के गणित पूरा समझ सकता है, सुरक्षा के उपाय खोज सकता है, जीवन को बचाने की हजार विधिया बना सकता है। सब आवश्यक है। लेकिन, यही जीवन नही है। द्वार पर आप एक द्वार-पाल को खडा कर देते है। जरूरी है। लेकिन आप खुद ही द्वारपाल की तरह खडे रहे, तो आप पागल है। फिर किसकी रक्षा कर रहे है?

लोग अक्सर जीवन की व्यवस्था जुटाने मे ही जीवन को गवा देते है। जीने का तो मौका ही नही आ पाता। तुम रोज टालते जाते हो कि जिएगे कल, इन्तजाम पहले कर ले। इन्तजाम कभी पूरा नही होगा। जियोगे कैसे?

ध्यान रहे, जिसे जीना है, उसे अधूरे इन्तजाम मे जीने की कला खोजनी पडती है। इन्तजाम तो कभी पूरा नही होगा, क्योंकि मन बताये जायेगा यह त्रुटि है, यह त्रुटि है, यह और कर लो, यह और कर लो। मन सूचना दिये चला जायेगा कि अभी रहने का वक्त नही आया, जब तक ताजमहल न बन जाये, तब तक रहोगे कैसे! अगर मन की ही मान के चलते रहे, तो तुम्हे जीवन का अवसर न मिलेगा।

जीवन छोटा है। मन की कामनाओ का कोई अन्त नही है। आवश्यकताए सीमित है, वे सबकी पूरी हो सकती हैं।

अब यहा एक बडी मजेदार घटना घटती है। या तो आदमी आवश्यकताओ को

वासना बना लेता है, तब उनका कोई अन्त नही है, और जब इससे परेशान हो जाता है, तो आवश्यकताओ को भी काटने मे लग जाता है, उसका भी कोई अन्त नही है।

दो तरह के लोग है दुनिया मे। दो तरह के पागलो से बनी है यह पृथ्वी। एक पागल है, जिन्होने आवश्यकताओ मे ही सब कुछ गवा दिया है, फिर जब ये पागल थोडे परेशान हो जाते है अपनी इस दौड से तो दूसरा पागल पैदा होता है—वह इन्ही का शीर्षासन करता हुआ रूप है—वे आवश्यकताए काटने मे लग जाते हैं। वह बराबर भोजन न करेगा, उपवास करेगा। या तो तुम भोजन ही भोजन करोगे, और या तुम उपवास करोगे। क्या बीच मे तुम्हारे रुकने का कोई भी उपाय नही? क्या सतुलन असभव है?

मुल्ला नसरुद्दीन बीमार था—खासी, अस्थमा! गया डॉक्टर के पास, तो डॉक्टर ने कहा, 'इसमे बीमारी कुछ नही है, तुम्हारे कपडो से, मुह से धूम्रपान, सिगरेट की बास आती है। कितनी सिगरेट पीते हो?'

उसने कहा, 'ज्यादा नही यही कोई दस-बारह।'

डॉक्टर ने कहा, बीमारी कुछ भी नही है। तुम्हारे फेफडो मे निकोटीन इकट्ठा होता जा रहा है, सिगरेट का, इसको कम करना पडेगा। इलाज की कोई जरूरत नही है, धीरे-धीरे सिगरेट कम कर दो। तो ऐसा करो कि भोजन के बाद एक पी लिया करो। फिर बाद मे, एक महीने बाद मुझे बताना, फिर धीरे-धीरे सोचेगे।'

महीने भर बाद नसरुद्दीन आया तो डॉक्टर पहचान ही न पाया, जैसे सारे शरीर पर सूजन चढ गई हो। वह भी थोडा घबडाया। उसने कहा, 'क्या सिगरेट कम करने से ऐसी अवस्था हो गई? और तुम पहचान मे ही नही आते।'

नसरुद्दीन ने कहा, 'हुआ तो सिगरेट की वजह से ही सब उपद्रव है।'

पूछा डॉक्टर ने, 'क्या तुमने मैने जैसा कहा था वैसा अनुसरण किया?' उसने कहा, 'उसी अनुसरण मे तो फसा हू। अब दिन मे दस-बारह बार भोजन करना पडता है।'

या तो तुम भोजन के पीछे पागल रहोगे—और अगर कभी इस पागलपन से तुम बचे तो दूसरा पागलपन खडा है।

पागल के भी अपने तर्क होते है। पागल भी बडा सगत होता है अपने तर्कों मे। और एक बार तुमने मन के तर्क को मानना शुरू कर दिया, तो पागलपन बदलेगे। एक पागलपन से दूसरा पागलपन! लेकिन तर्क वही रहगा।

क्या है तर्क मन का?

मन का तर्क यह है कि जब एक बार भोजन करने मे ऐसा मजा आता है, तो बीस बार करने मे बीस गुना आयेगा। गणित साफ है। लेकिन जिंदगी अगर गणित होती तो सब ठीक होता, जिंदगी गणित नही है। एक बार भोजन करने मे फायदा

होता है, बीस बार भोजन करने से बीस गुना फायदा नही होता। फिर अगर तुमने बीस गुना भोजन किया, तो तुम आज नही कल परेशान हो जाओगे, रुग्ण हो जाओगे, बीमार हो जाओगे, सारा शरीर इनकार करेगा, भोजन को फेंकना चाहेगा। जब तुम ऊब जाओगे, तब तुम कहोगे कि भोजन से इतनी दिक्कत होती है, उपवास ठीक है, भोजन बद ही कर दो। अब भी गणित साफ है कि जब भोजन से इतना नुकसान हो रहा है और परेशानी हो रही है, तो भोजन ही मूल जड है दुख की। इसलिए सारी दुनिया मे उपवास के पथ है बद करो भोजन। अब तुम दूसरी अति पर जा रहे हो, वहा भी दुख पाओगे।

मध्य मे रुक जाना, मन से मुक्त होने की प्रक्रिया है।

मन जीता है अतियो मे, एक्स्ट्रीम मे—घडी के पैण्डुलम की भाति है, एक कोने से दूसरे कोने पे जाता है, बीच मे नही रुकता। बीच मे रुका कि घडी रुकी। जिस दिन तुम बीच मे रुकोगे, उस दिन मन की घडी भी रुक जायेगी। उसी दिन माया रुकती है। और माया की सारी तडपन तुम मे ही समा जाती है। और उस तडपन से बडे विराट सौदर्य का जन्म होता है। बुद्धत्व का जन्म होता है। उससे कबीर पैदा होता है, कृष्ण, क्राइस्ट पैदा होते है।

'बेढा दीन्हो खेत को, बेढा खेतहि खाय। तीन लोक सशय पडा, काहि कहू समझाय।।

मन बडा उपयोगी है—उपयोग करो तो, मालिक बना लो तो बडा खतरनाक है। मन की मत सुनो। मन की सलाह मान के मत चलो। सुनो जरूर, गुनो खुद। मन कहे—सुनो, लेकिन गुनो खुद। निर्णय उसको मत लेने दो, निर्णय खुद लो। और अगर निर्णय की क्षमता जमा लो भीतर, तो मन तुम्हे नुकसान न पहुचा पायेगा। तब तुम न तो अति भोजन करोगे और न अति उपवास करोगे, तुम सम्यक् भोजन पर ठहर जाओगे। और सम्यक् भोजन बडी ही अनूठी बात है न शरीर भूखा, न ज्यादा भरा। और तब जीवन मे सब तरफ सम्यक्त्व का उदय होगा।

जहा-जहा समता आयेगी, जहा-जहा तुम सम्यक् होओगे, बीच मे रुकोगे, वही-वही सम्यक्त्व का उदय होगा। या तो तुम दिन-रात बोलते रहते हो या फिर कहते हो, हम मौन मे रहेगे। क्या सम्यक् होना असम्भव है? या तो तुम ससार मे रहोगे या हिमालय जाओगे! क्या ससार मे ऐसे नही रहा जा सकता कि जैसे ससार बाहर हो और भीतर न हो? तब सम्यक्त्व उदय होता है। गुजरना पडेगा ससार से, लेकिन ऐसे गुजरो कि ससार की एक रेखा भी न पडे।

कबीर ने कहा है, बहुत जतन करके मैंने चदरिया ओढी ससार की। 'खूब जतन से ओढी चदरिया, ज्यो की त्यो धरि दीन्ही।' जैसी पायी थी, वैसी ही वापिस लौटा दी, न इधर गया, न उधर, न गन्दी की, और न सफाई की—'ज्यो की त्यो धरि दीन्ही चदरिया, खूब जतन कर ओढी।'

जतन की ही सारी बात है। जतन का मतलब होता है होश, समझ, सम्यक्त्व,

बोध।

कहते हैं कबीर, किसको समझाऊ, कोई सुनने को नही है।

मेरी भी ऐसी प्रतीति है। अगर आपको अति की बात कही जाए तो आप समझने को तैयार हैं। अगर तुमसे मैं कहू उपवास करो—तुम्हारी समझ मे आ जाता है। तुमसे मैं कहू, सम्यक् भोजन करो—तुम्हारी समझ मे नही आता है। तुमसे अगर मैं कहू, छोड दो घर, यह ससार दुख है—समझ मे आता है, क्योकि इसके पहले तुम एक अति का पालन कर रहे हो कि भोग लो ससार, यही है आनद। अब वह अति चुक गई। अब तुमने काफी दुख उस अति से पा लिया। अब तुम करीब-करीब तैयार हो। कोई तुम्हे कह दे कि छोड दो सब, भागो, यह तो सब व्यर्थ है, असार है, तो तुम भाग खडे होओ। इसलिए तो दुनिया मे भगोडो की इतनी जमाते है। वे भगोडो की जमाते तुम्हारे कारण है। एक अति जब थक जाती है तो तुम दूसरी अति पर जाना चाहते हो, इसीलिए भगोडो की जमाते है।

तुम्हारे तथाकथित साधु-सन्यासी सिर्फ पलायनवादी है। वे तुम्हारे ही रूप है। तुम घडी के बाए पेण्डुलम हो, तो वे दाए है। तुम स्त्रियो के पीछे भाग रहे हो, वे स्त्रियो से भाग रहे है! तुम धन इकट्ठा कर रहे हो, वे धन छूने से डरते है!

न तो धन प्रेम के योग्य है, और न भय के योग्य, न तो धन को इकट्ठा करने मे कोई समझ है, और न धन से भयभीत हो जाने मे कोई समझ है—धन का उपयोग करने की बात है। और धन का सम्यक् उपयोग जो करना जानना है, वह न तो धन को इकट्ठा करेगा, और न धन को छोड के भाग खडा होगा। क्योकि धन तो साधन है। साधन का सम्यक् उपयोग हो सकता है।

मेरा भी अनुभव यही है, क्योकि मेरी सारी चेष्टा है तुम्हे बीच मे रोक लेने की। तो तुम्हे मेरी बात समझ मे नही आती। तुम्हे अति चाहिए। तुम भोग चुके हो एक अति, अब तुम दूसरी पे जाने के लिए तैयार हो। और मै कहता हू, बीच मे रुक जाओ! रुकना तुम्हे आता ही नही, दौडना ही आता है। दिशा कोई भी हो, दौडने के लिए तुम तैयार हो। और मैं कहता हू, तुम बैठ जाओ, दौडो मत।

इसलिए कबीर कहते है, 'तीन लोक सशय पडा, काहि कहू समझाय।'

कबीर एकदम मध्यमार्गी है। कबीर सम्यक्ति है। उनका सम्यक्त्व समझने जैसा है। रोज बाजार जाते हैं, रोज कपडा बुनते है, रोज बाजार मे बेचते हैं, लेकिन साझ जो भी बचता है, उसे बाट देते है। ससार छोडा नही, लेकिन फिर भी ससार को पकडा नही है। यही कला है। ससार छोडा नही, क्योकि कपडा बुनते है, दुकान पे जाते है, कपडा बेचते है, धन कमाते है, धन लाते है, घर की जरूरते पूरी हो जाती है, साझ को जो बचता है, बाट देते हैं। रात सन्यासी हैं, दिन गृहस्थ हैं।

तुम्हारे सन्यासी दिन मे सन्यासी, रात गृहस्थ, ऊपर-ऊपर सन्यासी, भीतर-भीतर गृहस्थ। कबीर ऊपर-ऊपर गृहस्थ, भीतर-भीतर सन्यासी।

और जिन्दगी हर चीज में अति है। और मन अति का बडा लोलुप है। सम्यक्त्व मन की मृत्यु है—सतुलन।

'मन जानै सब बात, जानत ही औगुन करै।
काहे की कुसलात, कर दीपक कुबै पडे ।।'

यह वचन बडा मधुर है, बडा बहुमूल्य। इसे कठस्थ ही नही, हृदयस्थ कर लेना।

'मन जानै सब बात, जानत ही औगुन करे।'

ज्ञान से कुछ भी नही होता, क्योकि मन तो सब जानता ही है। फिर जान के भी करता तो उलटा ही है।

तुम्हे बिलकुल पता है कि क्रोध बुरा है, पर करते तो तुम क्रोध ही हो। तुम्हे भलीभाति पता है कि घृणा पाप है, करते तो तुम घृणा ही हो। तुम्हे भलीभाति पता है कि लोभ मे आदमी फसता है, बधता है, कारागृह बन जाता है, फिर भी करते तो तुम लोभ ही हो।

'मन जानै सब बात, जानत ही औगुन करे। काहे कीं कुसलात'

फिर यह मन की कुशलता कैसी!

'कर दीपक कुबै पडे'

हाथ मे दीया था और कुए मे पडे हो! दीया झूठ होगा। कुआ असली है, झूठे दीये काम न पडेगे। इसलिए कबीर कहते हैं, 'काहे की कुसलात'।

पडितो को देखो! जीवन तो उनका वैसा ही है, जैसे अज्ञानियो का—रत्ती भर भी तो भेद नही है। इतना शायद भेद हो कि अज्ञानी छिपाने मे इतने कुशल नही, जितने पडित छिपाने मे कुशल है। पर जीवन मे भेद नही है। वही क्रोध है, वही माया है, वही मोह है, वही लोभ—कोई अतर नही। यह ज्ञान बासा और उधार है, अन्यथा ज्ञान अग्नि की भाति है। जैसे सोने को डाल दो आग मे, निखर के निकल आता है, शुद्ध हो जाता है—ऐसे ही ज्ञान की अग्नि है, जो भी उसमे अपने मन को डाल देगा, मन शुद्ध होगा, निखर आयेगा। लेकिन ज्ञान बासा भी हो सकता है, उधार भी हो सकता है। तब ज्ञान अग्नि नही है, तब ज्ञान राख है। कभी अग्नि वहा थी, अब सिर्फ राख है।

अभी मैं तुमसे जो कह रहा हू, यह आग है, मेरे मरने के बाद यह राख होगी। और अभी तुम सुनोगे नही, मरने के बाद तुम बडा विचार करोगे। तब यह राख होगी। फिर तुम राख को लपेट के, अवधूत बन के बैठ जाना। लेकिन इससे तुम्हारी जिंदगी न बदलेगी।

राख को लपेटे साधु तुमने देखे हैं? आग बदलती है, राख नही। राख तो उस जगह है, जहा कभी आग थी। लेकिन अतीत से थोडे ही क्रातिया घटित होती हैं, क्रातिया वर्तमान मे घटित होती हैं। अब तुम महावीर की राख मे कितना ही लपेटो अपने को, तुम्हारा मन जलेगा नही, बदलेगा नही। अब तुम बुद्ध की राख

को कितना ही ढोओ—अस्थि-कलश है, प्यारे है, लेकिन उनसे कोई क्रांतिया नही होती। जीवित गुरु खोजना जरूरी है, तो ही, तो ही जीवित अग्नि है।

अग्नि भीतर हो, तो ज्ञान के विपरीत जाना असभव है। तब तुम जानते हो, वही तुम्हारा जीवन है। तब ज्ञान ही आचरण है। अगर तुम्हे पता चल गया कि क्रोध व्यर्थ है, तुम कैसे क्रोध कर सकोगे? लेकिन यह तुम्हे पता नही चला, यह दूसरे कहते है। बुद्ध, महावीर, कृष्ण कहते है कि क्रोध बुरा है। यह तुमने सुना है। यह तुम्हारी आख का अनुभव नही है, यह तुम्हारे कान का सग्रह है। और, ज्ञान और ज्ञान मे इतना ही अतर है। एक ज्ञान है, जो कान से आता है— श्रवण से, और एक ज्ञान है, जो दर्शन से आता है— आख से। माया और ब्रह्म मे चार अगुल का फासला है—कान और आख का। कान से जो आए, वह थोथा, अपने अनुभव से आए, वही वास्तविक। जानते तो तुम सब हो। कबीर कहते है, 'मन जानै सब बात'। बताने को कुछ है भी नही मन को। मन कहता है, 'सब मुझे पता है—क्या मुझे समझाओगे? क्या समझने की जरूरत है? सब मैने पढा है।

'जानत ही औगुन करे।'

लेकिन आचरण, ज वन का व्यवहार तो ठीक वैसा ही है, जैसा अज्ञानी का हो। जीवन से सुगध तो ज्ञान की नही आती। जीवन से गध तो अज्ञान की ही आ रही है। लेकिन मन मे ज्ञान भरा हुआ है। पडित और ज्ञानी का यही भेद है। पडित मे तुम दुर्गध पाओगे, शब्दो के अतिरिक्त वहा कुछ भी नही है। ज्ञानी मे एक सुगध है। क्योकि जो भी वह कह रहा है, वह उसका अपना जाना हुआ है।

ध्यान रहे, सत्य अपना ही हो सकता है, उधार नही। किसी और से लेके सत्य को ढोने का कोई उपाय नही है। न उसकी चोरी की जा सकती है, न बाजार मे से खरीदा जा सकता है, न किसी से भीख मे लिया जा सकता है। सत्य को स्वय ही पाना होता है। जो स्वय मिल जाए, वही तुम्हारे जीवन को बदलेगा।

'मन जानै सब बात, जानत ही औगुन करे। काहे की कुसलात ।'

पाडित्य, ज्ञान मन की समझ का, क्या मूल्य है, जब अवगुण जारी ही रहते हैं? इस कुशलता का क्या करोगे? यह कुशलता दीपक नही बनती। यह कैसा दीपक, यह कैसी कुशलता?

'कर दीपक कुबँ पडे!' हाथ मे दीया लिये थे। और गिर गये कुए मे!

रामकृष्ण कहते थे, चील आकाश मे बडे ऊपर उडती है। लेकिन इससे भ्राति मे मत पडना, उसकी नजर तो घूरे पर पडे मरे हुए चूहे पे लगी रहती है। उडती बडा ऊचा है, इससे यह मत समझ लेना कि चील बडी ऊची है। ऊचाई पर उडने का सवाल नहीं है—आख कहा लगी है! आख लगी है नीचे कचरे के ढेर पर पडे हुए मरे चूहे पर—और प्रतीक्षा कर रही है, चक्कर मार रही है आकाश मे। लेकिन प्रतीक्षा कर रही है कि नीचे मौका मिले, अवसर मिले, रास्ता बद हो, लोग न चल

रहे हो—एक झपट्टा मारे और मरे चूहे को उठा ले।

पडित उडता तो आकाश में है, मन मरे हुए चूहे पर, जमीन पर लगा रहता है। ज्ञानी आकाश में उडता है—आकाश मे ही होता है। यही फर्क है। तुम्हारा जानना, तुम्हारा 'होना' होना चाहिए। तुम्हारे जानने और तुम्हारे होने मे अगर फर्क है—तुम कितने ही बडे पडित हो जाओ—कबीर कहते है, 'काहे की कुसलात, कर दीपक कुबै पडै।'

'मन सागर, मनसा लहरी बूडे बहुत अचेत।'

मन ही-सागर है, जब स्वस्थ हो जाये। मन ही लहर है, जब अस्वस्थ हो जाए। जब उत्तेजित होते हो तुम तो मन लहरो से भर जाता है, जब शात होते हो तो मन सागर हो जाता है—शात, मौन!

क्रोध, घृणा, मोह, लोभ ज्ञानियो ने पाप कहे है—किस कारण? इस कारण कि जब तुम क्रोध मे हो, तो मन लहरो से भर जायेगा, तुम अस्वस्थ हो जाओगे, तुम उत्तेजित हो जाओगे। जो भी उत्तेजित करे, वही पाप है। और जो भी तुम्हे शात करे, वही पुण्य है। इस परिभाषा को खयाल मे रखना।

पाप और पुण्य का दूसरे से कुछ लेना-देना नही है।

आमतौर से लोग सोचते है कि क्रोध इसलिए पाप है, दूसरे को चोट पहुचती है। नही, यह जरूरी नही है कि दूसरे को चोट पहुचे, क्योकि दूसरा अगर बुद्ध हो तो तुम कितना ही क्रोध करो, उसको चोट न पहुचेगी। फिर भी क्रोध तो पाप रहेगा ही—चाहे बुद्ध का चोट पहुचे या न पहुचे। नही, क्रोध पाप है, क्योकि उसमे तुम्हे चोट पहुचती है। दूसरे को चोट तो अनुषागिक है, पहुच सकती है, मगर वह महत्त्वपूर्ण नही है। महत्त्वपूर्ण यही है कि तुम्हे चोट पहुचती है, तुम भीतर अस्त-व्यस्त हो जाते हो, आदोलित हो जाते हो। तुम भीतर की शाति खो देते हो, भीतर का दर्पण धुधला हो जाता है। और अगर सतत तुम क्रोध, लोभ और मोह मे पडे हो, तो तुम्हारे भीतर की झील को शात होने का अवसर ही नही मिलता, वह हमेशा तूफान मे ही बनी रहती है। तब तुम धीरे-धीरे भूल ही जाते हो कि इन लहरो के नीचे, सागर छिपा है, क्योकि उसको देखने का मौका ही नही आ पाता। जब सब लहरे सो जाए, जब एक भी लहर न हो, तब तुम्हारा सागर तुम्हे प्रतीत होगा।

तो ब्रह्म और माया मे इतना ही फर्क है। ब्रह्म जब उत्तेजित होता है, तो माया, और जब ब्रह्म शात हो जाता है, तो ब्रह्म। या माया जब शात हो जाती है तो ब्रह्म। माया ब्रह्म की उत्तेजित दशा है, रुग्ण दशा है, अस्वस्थ दशा है, विकृति है।

'मन सागर मनसा लहरि, बूडे बहुत अचेत।'

और मन की इन लहरो मे न मालूम कितने लोग डूब गये हैं। लहरे छोटी नही हैं, और जो भी अचेत है, वह डूब जायेगा। बूडे बहुत अचेत—जो भी मूर्च्छित जी रहा है, सोया-सोया जी रहा है, होशपूर्वक नही जी रहा है, वह डूबेगा। होश की

नाव ही डूबने से बचा सकती है।

'बूडे बहुत अचेत कहहिं कबीर ते बाचि हैं, जिनके हृदय विवेक।'

इस वचन के दो-तीन अर्थ हो सकते हैं। और तीनो ही अर्थ उपयोगी हैं, इसलिए तीनो ही समझ लेने जरूरी हैं।

'मन सागर मनसा लहरि, बूडे बहुत अचेत।
कहहिं कबीर ते बाचि हैं, जिनके हृदय विवेक॥'

इस बात को कबीर कहते हैं, वे ही समझ सकेगे, जिनके हृदय मे विवेक है, अन्यथा न समझ सकेगे। हृदय मे विवेक! बुद्धि की कुशलता काम मे न आयेगी। कितने ही तर्कनिष्ठ हो, कितने ही शास्त्रो के जानकार हो, कितने ही सिद्धान्तो की समझ हो—नही, वह काम न आयेगी। जिनके हृदय मे विवेक है, वे ही केवल इस बात को समझ पायेंगे।

हृदय मे विवेक का क्या अर्थ होता है?

आमतौर से हम समझते हैं कि विवेक होता है बुद्धि मे, और प्रेम होता है हृदय मे। यह हमारी आम धारणा है। और कवियो ने इस धारणा को काफी प्रचलित कर दिया है कि विवेक मस्तिष्क मे, प्रेम हृदय मे। यह धारणा भ्रान्त है। एक विवेक है जो हृदय मे भी होता है। और जिसको तुम प्रेम कहते हो, वह तुम्हारे अधेपन का नाम है। और जब तक हृदय का विवेक न जग जाए, तब तक वह प्रेम जन्मेगा नही, जो कृष्ण और क्राइस्ट के जीवन मे फलता है।

कौन-सा विवेक है जो हृदय का है? और कैसे तुम उसे खोजोगे?

ध्यान रहे, बुद्धि मे कोई विवेक नही होता, विचार होते हैं। मन विचार कर सकता है, विवेक नही। मन सोच सकता है, यह ठीक है, यह गलत है। मन पक्ष और विपक्ष मे तर्क इकट्ठे कर सकता है। और तब देख सकता है कि जिस तरफ तर्क इकट्ठे हो, वह ठीक है। यह विवेक नही है, यह सिर्फ गणित है।

जीवन मे एक समस्या आती है, तुम सोचते हो कि क्या करे। तो मन बहुत से विकल्प देता है। फिर मन हर विकल्प के पक्ष और विपक्ष मे तर्क देता है। फिर तुम सारे तर्कों को देखते हो, सोचते हो, फिर जो तर्क सबसे ज्यादा वजनी, बलशाली, लाभपूर्ण मालूम पडते है, तुम उनका अनुगमन करते हो। यह विचार है, विवेक नही।

विवेक क्या है?

विवेक जागृति की ऐसी दशा है, जहा तुम्हे सोचना नही पडता, जहा दिखाई पडता है, जहा तुम्हारी आख खुली होती है, और जहा तुम्हारे सामने विकल्प नही होते कि यह करू या यह करू। तुम्हारी आख इतनी प्रगाढ रूप से खुली होती है कि जो ठीक है, वह दिखाई पडता है, सोचना नही पडता।

जैसे एक अधा आदमी यहा हो, उसे बाहर जाना है, तो पूछेगा, रास्ता कहा है—बाये कि दाये, सीढिया कहा हैं? फिर टटोलेगा अपनी लकडी से, फिर खोजेगा,

फिर जायेगा। लेकिन जिसके पास आख है, वह पूछता नही कि दरवाजा कहा है, उसे बाहर जाना है, वह दरवाजे की सोचता ही नही, उठता है और बाहर निकल जाता है। दरवाजे का खयाल भी नही आता। आख है तो दरवाजे को सोचने का सवाल कहा है? उठे और बाहर गये। दरवाजा बीच मे जैसे पडता ही नही। आख नही है तो सोचना पडता है कि दरवाजा कहा है—बाये कि दाये, टटोलना पडता है, तब निकलना पडता है।

विचार विवेक की कमी है। विचार, विवेक का परिपूरक है।

जैसे अधे का पूछना और टटोलना आख का परिपूरक है। जिसके पास विवेक है, उसे दिखाई पडता है। और जो उसे दिखाई पडता है, वह उसके अनुसार चल पडता है, वह सोचता नही कि जाऊ या न जाऊ। विवेक मे द्वन्द्व नही है, विचार मे द्वन्द्व है। विचार मे आल्टरनेटिवज हैं, विकल्प हैं। विवेक मे कोई विकल्प नही है। विवेक निर्विकल्प है। दिखता है, और आदमी चलता है।

इसलिए बडी हैरानी की बात है, समझ लेनी चाहिए कि तुम कुछ भी मान के करो विचार मे, हमेशा पछताओगे। क्योकि जब भी मन तुम्हे कुछ कहता है करने को, तब दूसरा विकल्प भी मौजूद होता है।

समझो कि दो स्त्रियो मे तुम्हे शादी करनी है, दो स्त्रियो से लगाव है। तुम तय नही कर पाते, किसमे शादी करनी है। एक धनी है, लेकिन सुदर नही है, धन मे भी तुम्हारा रस है। एक गरीब है, लेकिन सुदर है, सौदर्य मे भी तुम्हारा रस है। अब क्या करे!

मुल्ला नसरुद्दीन से कोई पूछ रहा था कि 'क्या करू? दो स्त्रिया है, अमीर है और कुरूप है, गरीब है, बडी सुदर है—क्या करू?' नसरुद्दीन ने कहा, ऐसा करो, शादी अमीर से करो, प्रेम गरीब की तरफ रखो।

तो या तो मन दोनो के बीच कोई समझौता खोजेगा, जो कि खतरनाक है, और या मन निर्णय लेगा, कि एक से कर लो, एक से कर लेगा तो पछतायेगा। अगर अमीर मे कर ले तो रोज सुबह उठ के उसका चेहरा तो देखना ही पडेगा। कितना ही भागो पत्नी से, भाग के कहा जाओगे? घर लौटकर आना ही पडेगा। और जब भी चेहरा देखेगा, तभी मन मे पछतावा होगा कि सुदर स्त्री से शादी कर ली होती। लेकिन यह मत सोचो कि सुदर स्त्री से करके कुछ हल होने वाला है। सुदर से कर ली होती, तो सौदर्य दो-चार दिन मे समाप्त हो जाता है। तुम आदी हो जाते हो एक शक्ल देखने के—आखिर शक्ल को क्या करोगे? लेकिन रोज पैसे की कमी है। छप्पर चूता है, और खप्पड नही खरीद सकते, पेट भूखा है और रोटी नही—रोज चुभेगा। और मन होगा कि बेहतर हुआ होता, अमीर से शादी कर ली होती।

मन कुछ भी चुने, सदा पछतायेगा। पछतावा मन की निष्पत्ति है, क्योकि विकल्प

सदा मौजूद था। विवेक जो भी करेगा, कभी नही पछतायेगा, क्योकि विकल्प था ही नही, पछताना किसके लिए है। इसलिए विवेकपूर्ण व्यक्ति कभी नहीं पछताता। जो भी हुआ है अतीत का उसके लिए कोई पछतावा नही होता। वह कभी लौट के पीछे देखता भी नही, क्योकि दूसरा तो कोई विकल्प था ही नही। जो भी होना था, वही हुआ है। और जो होना है, वही होगा।

इसलिए विवेकपूर्ण व्यक्ति सदा शात होगा, विचारपूर्ण व्यक्ति सदा अशात होगा। बुद्धि विचार करती है, हृदय विवेक देता है।

तो कैसे जगाये इस हृदय के विवेक को ?

ध्यान हृदय के विवेक को जगाने की प्रक्रिया है। विश्वविद्यालय बुद्धि के विचार को जगाने का प्रशिक्षण-क्षेत्र है। बीस-पच्चीस वर्ष एक युवक को लगते हैं, तब कही बुद्धि प्रशिक्षित हो पाती है।

और लोग मेरे पास आते हैं। वे कहते है कि पाच-सात दिन हो गये ध्यान करते, अभी तक कुछ हुआ नही!

बुद्धि परिधि है, हृदय केद्र है। बुद्धि पे तुम व्यय करते हो पच्चीस वर्ष, तब भी हो सकता है कि थर्ड क्लास सर्टिफिकेट ले के युनिवर्सिटी से बाहर निकलो। लेकिन हृदय के लिए तुम तीन दिन भी देने को तैयार नही हो! और हृदय के लिए पच्चीस जन्म भी दो तो कम है, क्योकि हृदय केद्र है।

सारी ध्यान की प्रक्रियाए हृदय के केन्द्र को जगाने की प्रक्रियाए है। सिर्फ भारत मे ऐसे विश्वविद्यालय अतीत मे थे, जहा हमने दोनो प्रयोग किये थे। लेकिन वे प्रयोग खो गये। नालन्दा और तक्षशिला जैसे विश्वविद्यालय थे, सारी दुनिया मे फिर वैसा प्रयोग नही हो सका, जहा हमने बुद्धि को भी प्रशिक्षित करने की कोशिश की, और हृदय का विवेक भी जगाने की कोशिश की। वह सफल नही हो सका। अनेक बाधाए पड गई। सबसे बडी बाधा तो यह पडती है कि हृदय के विवेक के जग जाने पर व्यक्ति सासारिक नही हो पाता। तो ससार उसके विपरीत है। बाप भी डरता है बेटे को ऐसी जगह भेजने मे, जहा उसका विवेक जग जाए, क्योकि विवेक मोह के विपरीत है। मोह टूटेगा तो बाप से भी टूट जायेगा। पत्नी भी डरती है पति को ऐसी जगह भेजने मे, जहा विवेक जग जाए, क्योकि विवेक वासना से मुक्ति है। विवेक जगेगा तो वासना खो जायेगी। सभी भयभीत है विवेक के जगने से। इसलिए प्रयोग किया गया, लेकिन असफल गया। महानतम प्रयोग था मनुष्य की चेतना के जगत मे।

नालन्दा मे हम फिक्र करते थे कि जिस यात्रा मे ज्ञान बढे, उसी मात्रा मे ध्यान बढे, और सतुलन कभी न खोए। लेकिन तब नालन्दा से जो आदमी निकलता था वह सन्यस्त होके निकलता था। यह प्रयोग कैसे चल सकता है! यह कितनी देर ससार चलने देगा! नालन्दा हमने उखाड के फेक दिया। और बौद्ध जो उस महान

प्रयोग को कर रहे थे, उनको खदेड के मुल्क के बाहर कर दिया।

बौद्ध धर्म का विनाश हो गया इस मुल्क से, क्योकि बौद्धो ने इतने विवेक को जगाने की कोशिश की, कि जिन-जिनका भी विवेक जगा, वे इस जगत के बहुत काम के न रह गये। एक विराट जगत के काम के हुए, लेकिन हमारी क्षुद्र वासनाओ के जगत के काम के न रह गये।

अगर बेटे का विवेक जग जाए, तो बाप उसे धन कमाने मे नही जोत सकता। बेटा कहेगा, 'ठीक है, जितना जरूरी है कर देते हैं।' लेकिन गैर-जरूरी असली पकड है। क्योकि जरूरी से क्या होगा! जब इतना धन हो जाए कि वह गैर-जरूरी हो, तभी तो आदमी धनी होता है। जरूरी से तो आदमी गरीब ही बना रहता है। जितनी जरूरत है, उतना ही कमा लिया तो तुम गरीब हो। विलास तो तब पैदा होगा कि गैर-जरूरी पैदा हो जाए। विवेकपूर्ण व्यक्ति, ध्यानपूर्ण व्यक्ति गैर-जरूरी से बचेगा। बहुत कठिनाई खडी हो गई।

कबीर कहते हैं, 'कहहि कबीर ते बाचि है, जिनके हृदय विवेक।'

यह जो मैं कह रहा हू, वे ही समझ सकेगे, जिनके हृदय विवेक है, जिन्होने ध्यान किया है। क्यो? क्योंकि ध्यान करने वाले को तत्क्षण दिखाई पडता है मन ही लहर है, और मन ही सागर है। क्योंकि ध्यान करने वाले को कई क्षण ऐसे आ जाते है, जब लहरे रुक जाती हैं, सिर्फ सागर रह जाता है। वही प्रतीति कबीर के वचन को समझने मे सार्थक होगी। उस प्रतीति के बिना तुम कबीर को न समझ पाओगे।

मेरे पास लोग आते है, जिन्होने कबीर पर डॉक्टरेट लिखी है। विश्वविद्यालयो ने उन्हे सम्मानित किया है, डिग्रिया दी हैं। लेकिन मैं नही देखता कि वे कबीर को समझते है, क्योंकि हृदय का विवेक तो उनके पास है ही नही।

इस वचन का एक दूसरा अर्थ भी है। वह वचन का अर्थ है—'कहहि कबीर ते बाचि है, जिनके हृदय विवेक'—कबीर कहते है, वे ही पढे-लिखे है, जिनके हृदय विवेक।

'मन जाने सब बात, जानत ही औगुन करे, काहे की कुसलात, कर दीपक कुबं पडे।'

जिनके हृदय विवेक है वे ही केवल पढे-लिखे लोग है, बाकी सब अपढ है। वे ही जिनके हृदय विवेक है, ऐसे है, जिन्होने बाचा है, जिन्होने पढा है। किताब के पढने का सवाल नही है, हृदय को पढने का सवाल है। अपने को पढने का सवाल है।

'कहहि कबीर ते बाचि है'—वे ही केवल बाचे हुए, पढे-लिखे लोग है, जिनके हृदय विवेक है।

'मन दीया मन पाइये, मन बिन मन नहिं होइ।
मन उन्मन उस अड ज्यू, अनल अकासा जोइ॥'

'मन दीया मन पाइये'—मन से खोया है, मन से ही मिलेगा। मन से ही भटके हैं, मन से ही पहुचेगे। मन से ही भिखारी हुए, मन से ही सम्राट बनेगे। यह मन ही रुग्ण हुआ है, स्वस्थ हो जाए तो जो खोया है, वह मिल जायेगा।

'मन दीया मन पाइये, मन बिन मन नहि होइ।'

सारा खेल मन का है। तुम्हारे भीतर जो शक्ति विचार बन रही, सारा खेल उस शक्ति का है। वह शक्ति दो रूपो मे हो सकती है—या तो विचार बन जाए, तब लहर बन जाती है, या ध्यान बन जाये, तब सागर बन जाती है।

इसलिए 'निर्विचार' समस्त धर्मों का सार है, क्योकि जैसे ही तुम निर्विचार हुए, तो जो शक्ति मन के द्वारा विचार बन के खो रही थी अनत मे, वह खोना रुक जायेगा। मरुस्थल मे नदी नही खोयेगी। तब सारी शक्ति वापिस तुम्ही मे गिरने लगी। तब तुम कुछ भी नही खो रहे हो। तब तुम्हारे छिद्र बद हो गये।

अभी तो तुम एक ऐसी बाल्टी हो, जिसमे हजार छेद है। कुए मे डालते है, शोर-गुल बहुत मचता है। पानी मे डूबी रहती है तो ऐसा भी लगता है, भर गई। और जैसे ही पानी से ऊपर उठाते है कि खाली होना शुरू हो जाती है। खीचते-खीचते थक जाते हो, और जब बाल्टी हाथ मे आती है तो खाली होती है। यही तो हजारो-करोडो लोगो का अनुभव है। जिदगी भर खीचते है, कई बार बाल्टी भरी लगती है, जब कुए मे ऊपर उठने लगती है, तब इतना शोरगुल मचता है कि लगता है भरी हुई आ रही है, लेकिन हाथ आते-आते खाली! मौत के वक्त खाली बाल्टी हाथ लगती है। इतने छिद्र है!

हर विचार छेद है। उससे तुम्हारी ऊर्जा खो रही है। जैसे ही तुम निर्विचार हुए, ऊर्जा को खोने का मार्ग बद हुआ। तब तुम्हारी ऊर्जा वापिस तुम्ही मे गिर जाती है। तुम सागर हो, तुम ब्रह्म हो, तुम परम हो। इस जगत की जो भगवत् सत्ता है वह तुम हो। लेकिन तुम्हारे रध्र, तुम्हारे छिद्र तुम्हे चुकाये डालते है।

'मन दीया मन पाइये, मन बिन मन नहि होइ।
मन उन्मन उस अड ज्यू, अनल आकासा जोइ।।'

जैसे आकाश हर चीज मे छिपा है, चाहे दिखे और चाहे न दिखे आकाश दिखता कहा है? हवा के कण-कण मे आकाश है। अग्नि के कण-कण मे आकाश है। न तो अग्नि आकाश को जला सकती है, न हवा आकाश को उडा सकती है। पानी के कण-कण मे आकाश है, न पानी आकाश को बहा सकता है। जैसे आकाश सब मे छिपा है, ऐसे ही वह परम भगवत् सत्ता सब मे छिपी है। वह तुममे भी छिपी है। उस परम भगवत् सत्ता को कबीर ने जो नाम दिया है, वह बडा कीमती है—वह वही नाम है, जो झेन फकीर जापान मे देते हैं। झेन फकीर उस अवस्था को नो-माइड कहते है। कबीर ने उस अवस्था को 'उन्मन' कहा है।

एक ऐसी अवस्था है चेतना कि जहा मन है ही नही।

क्या अर्थ हुआ इसका—मन के न होने का? इतना ही अर्थ हुआ, जहां विचार सब खो गये, लहरें सब शांत हो गईं। मन उन्मन हुआ। कबीर का एक वचन है—'मन उन्मन हुआ, गगन गरजे, बरसे अमी।' मन, न-मन हो गया।

सारा आकाश गरज रहा है, और अमृत बरस रहा है! और जब तक मन मे उसकी तरगे, उसकी विकृतिया भरी हैं, तब भी आकाश गरजता है, लेकिन जहर बरसता है।

आकाश तो तुम्हारे चारो तरफ भी खूब गरज रहा है, लेकिन जहर बरसता है।

'मन उन्मन हुआ, गरजे गगन, बरसे अमी।'

उन्मन का अर्थ है जहा निर्विचार हो गया मन।

'मन उन्मन, उस अड ज्यू अनल आकासा जोई।'

और उन्मन मन में वह ऐसा ही छिपा है, जैसे हर अंड मे ब्रह्म छिपा है, ब्रह्माड छिपा है, जैसे हर कण मे आकाश छिपा है।

'मन गोरख मन गोविंदौ, मन ही औघड होइ।
जे मन राखै जतन करि, तो आपै करता सोइ॥'

'मन गोरख मन गोविन्दौ'

गोरख एक बहुत अनूठे सिद्ध पुरुष हुए। उनका नाम तो धीरे-धीरे खो गया। अक्सर ऐसा होता है कि बहुत अनूठे लोगो का नाम खो जाता है, क्योकि वे हमारी समझ के बाहर पड जाते हैं। अब गोरख को हम एक ही शब्द मे याद करते है, वह है गोरख-धन्धा!

शब्दो की बडी कहानिया है। यह गोरख-धधा गोरख से पैदा हुआ। गोरख ने पैदा नही किया, जिन्होने उनको देखा, उन्होने पैदा कर लिया। क्योकि गोरख ने बडी महत्वपूर्ण विधिया खोजी ध्यान की। गोरख ने ध्यान की बडी महत्त्वपूर्ण विधिया खोजी, लेकिन आम आदमी को वे विधिया ऐसी लगी कि यह सब उपद्रव क्या है, जैसा मेरे पास लोगो को लगता है। यह मेरा भी गोरख-धधा है। लोग समझते है कि क्या पागल हो गये हो, क्या होश खो दिया, यह क्या कर रहे हो! तो गोरख ने इतनी विधिया खोजी कि उनके शिष्य न मालूम किन-किन तरह की अनूठी विधियो मे लीन रहे, कि लोक मे व्याप्ति हो गई कि यह सब गोरख-धधा है। इसलिए शब्द सिर्फ अब उतना ही बचा है हमारे पास। जब भी कोई आदमी कुछ उलटा-सीधा करता है तो हम कहते है, क्या गोरख-धधा कर रहे हो! लेकिन उस शब्द के पीछे बडे अनूठे आदमी का नाम है।

भारत मे जितनी विधिया गोरख ने ध्यान की खोजी, उतनी किसी दूसरे आदमी ने नही खोजी। बुद्ध, महावीर, कोई भी गोरख का मुकाबला नही करते— विधियो का जहा तक सम्बन्ध है। मन को तोड देने के जितने उपाय गोरख ने खोजे, किसी आदमी ने नही खोजे। गोरख बडा अनूठा आविष्कारक व्यक्ति है।

और कबीर उनकी याद करते हैं 'मन गोरख मन गोविन्दौ।'

मन ही गोरख है, मन ही गोविन्द है। विधिया भी वही खोजता है, पहुचना भी उसी तक है। गोरख और गोविन्द का इसलिए उपयोग किया कबीर ने—गोरख यानी विधि, गोविन्द यानी मजिल। गोरख यानी मार्ग, गोविन्द अत। गोरख साधन, गोविन्द साध्य। इसलिए उपयोग किया है।

'मन गोरख, मन गोविंदौ।' मन ही का सब खेल है, विधि भी उसी की है, पहुचना भी उसी मे है। मार्ग भी वही है, मजिल भी वही है। पाना भी उसी को है, पाना भी उसी से है।

'मन गोरख मन गोविंदौ मन ही औघड होई।
जे मन राखै जतन करि, तो आपै करता सोई॥'

और जो मन के जतन को समझ ले, वह स्वय ब्रह्म हो गया। तो आपै करता सोइ वही जगत का कर्ता हो गया।

जे मन राखै जतन करि यह 'जतन' शब्द याद रख लेने जैसा है। क्या होता है 'जतन' का मतलब?

तुम्हे एक हीरा मिल जाये रास्ते पर, तुम कैसे उसे रखोगे? जतन करि। तुम उसे जल्दी से छिपा लोगे। वहा तो देखोगे भी नही, क्योकि और किसी को पता न चल जाए। तुम जल्दी से उसे कपडो मे छिपा लोगे, वहा तुम पूरी तरह से देखोगे भी नही, क्योकि सडक है, बाजार है, लोग चल रहे है, लेकिन घर अभी दूर है। घर जा के तुम द्वार बद करके, प्रकाश को जला के फिर हीरे को देखोग। लेकिन घर पहुचने के पहले भी तुम कई बार जेब मे छू-छू कर देख लोगे, है न! जतन का यही मतलब है। कई बार तुम टटोल के देख लोगे।

जेबकट भलीभाति जानते है कि किसकी जैब मे पैसा है—उसके जतन की वजह से। वह बार-बार देख लेता है। नही तो जेबकट को पता कैसे चले? जेबकट टेलीपैथी थोडी जानता है कि तुम खीसे मे नोट लिये हो, लेकिन तुम छू-छू के देखते हो, तुम्हे पता भी नही होता है कि तुम छू-छू के देख रहे हो। वही उसे खबर देता है कि है कुछ।

जतन का अर्थ है बडी होशपूर्वक, सम्हाल कर। जैसे कबीर किसी वचन मे कहे है कि लौटती है स्त्रिया पनघट से तो गपशप करती, बात करती, गीत गाती—घडे को सिर पर रखे हाथ से पकडती भी नही! फिर कैसे पकडती होगी, किससे पकडती होगी? जतन से! स्त्रिया लौटती है पनघट से। अब तो स्त्रिया नही मिलती, क्योकि पनघट नही है—नलघट है, और वहा उपद्रव है।

कबीर के वक्त पनघट थे और वहा से लौटती स्त्रिया थी। एक मीठा काव्य था, उस लौटने मे पनघट से। और बात करती चीत करती, और घडे को सिर पर रखे, न हाथ से सम्हालती! फिर किससे सम्हालती?

भीतर एक होशपूर्वक सम्हाल है—बारीक है, जतन से—गिरता नही है घट, टूटता नहीं घट। चर्चा चलती रहती है, जतन जारी रहता है।

तो कबीर कहते हैं कि रहो इस ससार मे ऐसे, जैसे पनघट से आती स्त्री घडे को रखती है जतन से। जाओ दुकान पर, लेकिन सम्हालो चेतना को। घूमो बाजार मे, खो मत जाओ, सम्हालो अपने को। धन हो, स्त्री हो—सम्हालो अपने को!

जतन का अर्थ है एक भीतरी सुरति।

गुरजिएफ ने एक शब्द उपयोग किया है सेल्फ-रिमेम्बरिंग, आत्म-स्मरण। कुछ भी करो, खुद का होश बनाए रखो—वही जतन है।

बुद्ध का शब्द है सम्यक् स्मृति, राइट माइडफुलनेस।

कुछ भी करो, लेकिन स्मरण बना रहे कि मैं हू।

बुद्ध का शब्द स्मृति ही बिगड-बिगड के सुरति हो गया। कबीर और नानक जिसको सुरति कहते है, वह बुद्ध का स्मृति शब्द है। वह लोकभाषा मे चलते-चलते सुरति हो गया। पर सुरति ज्यादा मधुर है। और स्मृति से तो मेमोरी का सबध जुड जाता है—सुरति अलग ही हो गया। सुरति का तो मतलब ही हो गया—एक आत्मभाव, एक बोध।

जतन शब्द भी यत्न से बना है—लेकिन वह मतलब नही है, जो यत्न का है। मतलब है एक भीतरी सतत होश, कोई चीज भीतर खो न जाए! जैसे हीरा मिले तो उसको आदमी गाठ मे बाध लेता है, ऐसे भीतर एक होश बना रहे, एक स्मृति बनी रहे। तुम जो भी करो, करते समय यह ख्याल रहे कि अपने को सम्हालना है।

क्या है सम्हालने का प्रयोजन?

सम्हालने का प्रयोजन है, ताकि मन मे लहरे न उठे। तुमने नही सम्हाला, लहरे उठेगी, सागर खो जाएगा, दर्पण मिट जाएगा। तुमने सम्हाला, लहरे कम उठेगी, खूब सम्हाला, लहरे बिलकुल नही उठेगी। पूरा सम्हाला, लहरे बिल्कुल शात हो जायेगी। और मन पे एक भी लहर नही होती तो मन दर्पण हो जाता है। उस दर्पण मे दिखाई पडता है जो, वही सत्य है।

'मन गोरख, मन गोविंदौ, मन ही औघड होई।
जे मन राखै जतन करि, तो आपै करता सोई॥
'तन को जोगी सब करै, मन को करे न कोई।
सब विधि सहजे पाइये, जो मन जोगी होई॥'

सवाल शरीर से कुछ करने का नही है। सभी सवाल होश के जगत मे कुछ करने का है। तो कितना ही तुम बाधो शीर्षासन, सिद्धासन, सर्वांगासन करो, कितने ही बध साधो, कितने ही शरीर को इरछा-तिरछा करो—वह बात बहुत महत्वपूर्ण नही है। महत्वपूर्ण है भीतर चैतन्य का बढना—चैतन्य की बढती ज्योति।

'तन को जोगी सब करै, मन को करै न कोई।'

इसलिए तुम पाओगे ऐसे जोगी, जिन्होने शरीर की बडी कीमती उपलब्धिया पा ली हैं। लेकिन अगर तुम उनमे झाक के देखोगे, तो पाओगे कि तुमसे गये-बीते है।

योगी तीस दिन जमीन मे दबा पडा रह सकता है। उसने बडा कुछ साधा है, क्योकि तीस दिन, बिना ऑक्सीजन के, गड्ढे मे दबा पडा रहना! तीस क्षण मुश्किल है। तीस दिन के बाद तुम उसे निकालो, वह जीवित है! तुम चमत्कृत होओगे। लेकिन उस आदमी की आखो मे देखना, और तुम उसमे वह ज्योति न पाओगे, जो कबीर, बुद्ध या गोरख की आखो मे होती है। उस ज्योति की जगह तुम उसकी आखो मे एक उदासी पाओगे, एक सोयाहुआपन पाओगे। और तुम उसके जीवन मे कोई चमक न पाओगे—जो होनी चाहिए। क्योकि जिसके भीतर ब्रह्म जगा हो, उसके बाहर सब तरफ एक सुगन्ध और एक चमक और एक प्रकाश का विस्तार होगा—वह तुम बिलकुल न पाओगे। मजे की बात तो यह है कि तीस दिन यह जमीन मे पडा रहा, क्योकि पाच सौ रुपये उसे इनाम मिलने है। तुम किसी बुद्ध को राजी कर सकोगे कि पाच सौ रुपये के लिए तीस दिन जमीन मे पडा रहे? तन को तो साध लिया उसने, पर मन की साधना का उसे कुछ भी पता नही है।

ऐसे योगी हैं कि सकल्प से केवल हाथ की नाडी की गति बद कर देंगे, हृदय की चाल बद कर देंगे, लेकिन वे सब कर रहे है पैसा पाने के लिए। उनकी जगह सर्कस मे है, सत्य मे नही है। वे सर्कस के लिए काम के है, सत्य का उनसे क्या लेना-देना! तुम दुकान कर रहे हो, वे भी दुकान कर रहे है। तुम्हारी दुकान तुमसे जरा बाहर है, उनकी दुकान शरीर से जुडी है। लेकिन उनकी सारी साधना एक प्रदर्शन बन गई है।

ऐसे योगी है, जो आख को खीच के बाहर लटका लेते है। डॉक्टर पालब्रन्टन ने जब पहली दफा एक योगी को यह करते देखा, तो वह हैरान हो गया, क्योकि वह तो खुद डॉक्टर था। यह अविश्वास की बात थी, यह हो ही नही सकता कि दोनो आखे खीच के उसने लटका ली, चार इच आखे नीचे लटक गई! और अब भी वह उन आखो से देख रहा है—सारी माश-पेशिया बाहर आ गई हैं, खून झरने लगा, फिर वापस उसने आखें अपने गड्ढो मे जमा ली! तब उसने कहा कि दो रुपये मेरी फीस! इतना बडा चमत्कार, लेकिन माग तो लोभ की!

इसलिए कबीर कहते हैं, 'तन को जोगी सब करै, मन को करे न कोई। सब विधि सहजे पाइये, जो मन जोगी होई॥'

और जब मन योगी हो जाता है क्या है मन के योग का अर्थ?

योग शब्द का अर्थ है जोड, सगम, मिलन, सभोग।

योग का अर्थ है दो का एक हो जाना।

मन के योग का क्या अर्थ होगा?—जहा मन की लहरे, और मन का सागर एक हो जाए, जहा मन की दौड और मन का ठहरा होना एक हो जाए, जहा मन, मन

मे लीन हो जाए। परम सभोग का क्षण है जब मन मन मे ही लीन हो जाता है, डूब जाता है। वही समाधि है।

'सब विधि सहजे पाइये, जो मन जोगी होई।'

और जिसने मन के मिलन की यह कीमिया पा ली, उसके लिए सब सरल हो जाता है।

'सब विधि सहजे पाइये'—वह सभी कुछ सहज पा लेता है। उसे पाने के लिए कुछ और करना नही पडता।

'मन ऐसो निरमल भया'

और इस समाधि से, इस मन के मन मे डूब जाने से मन ऐसा निर्मल हो जाता है।

ये वचन गूजते रहे तुम्हारे मन मे—उपयोगी होगे।

'मन ऐसो निरमल भया, जैसे गगा नीर।
पीछै-पीछै हरि फिरै, कहत कबीर कबीर॥'

एक तो वक्त है कि साधक खोजता है परमात्मा को, चिल्लाता है—राम, रहीम—पुकारता है। और एक ऐसा वक्त भी आता है, जब परमात्मा तुम्हारे पीछे-पीछे घूमता है—'कहत कबीर-कबीर'!

वह वक्त कब आता है, जब परमात्मा तुम्हारे पीछे खोजने लगता है, बुलाता है?

एक वक्त था, तुम बुलाते थे, कोई आवाज उत्तर मे न आती थी। वह वक्त वही था, जब तुम्हारा मन तरगो से भरा था। तब तुम्हारी आवाज इस योग्य न थी कि सुनी जाए—इस योग्य तो बिलकुल ही न थी कि उसका उत्तर दिया जाए।

तो चिल्लाते रहो तुम मदिरो मे, मस्जिदो मे। कबीर कहते है कि क्या तुम्हारा खुदा बहरा हो गया है कि तुम सुबह से उठ कर अजान कर रहे हो, इतने जोर से नमाज पढ रहे हो? क्या बहरा हुआ खुदाय? क्यो इतने जोर से चिल्ला रहे हो?

चिल्लाते रहो—मदिरो मे, मस्जिदो मे, गुरुद्वारो मे—कुछ भी न होगा। तुम्हारे चिल्लाने से कुछ भी न होगा। क्योकि तुम्हारा चिल्लाना भी तुम्हारे मन का शोर-गुल है। चुप हो जाओ।

प्रार्थना बोलना नही है, चुप हो जाना है।

प्रार्थना परमात्मा से कुछ कहना नही है। प्रार्थना वस्तुत परमात्मा से कहना नही है, परमात्मा को सुनने की विधि है। चुप हो जाओ—सुनो!

और जब मन मन मे लीन हो के चुप हो जाता है, एक भी तरग नही होती विचार की—'मन ऐसा निरमल भया'—तब निर्मलता, तब सब शुद्ध हो जाता है, सब विकृति खो जाती है, तब सब रोग मिट जाते हैं। तब मन एक निर्मल दर्पण हो जाता है।

'मन ऐसो निरमल भया, जैसो गगा नीर।' जैसे गगा का जल!

'पीछै-पीछै हरि फिरै, कहत कबीर कबीर।'

अब उलटी हो गई सब बात। अब खुद परमात्मा साधक के पीछे घूमता है, खोजता है। जब तुम योग्य हो, तब वह स्वय तुम्हारे द्वार पर दस्तक देता है। और जब तक तुम अयोग्य हो, तुम कितने ही मदिरो, गिरजो, गुरुद्वारो मे दस्तक दो, वह दस्तक उसके द्वार पर नही पहुचेगी।

इसलिए असली सवाल तुम्हारे निर्मल हो जाने का है। और निर्मलता का कबीर का अर्थ मन के मन मे लीन हो जाने का है—मन, मन मे खो जाए।

ध्यान अर्थात् मन मे मन खो आए, कुछ बचे न तरगे—सागर बचे, लहर न बचे। पर बडा मुश्किल है।

'तीन लोक सशय मडा, काहि कहू समझाय।'

किसको समझाओ—सब पहले से समझे बैठे है! पहले से समझदार बन गये है! उधार समझ ने सभी को समझदार बना दिया है। और इसलिए उनके अज्ञान के मिटने की कोई विधि नही है।

पहला ज्ञान—समझना कि मैं अज्ञानी हू, तब तुम्हे मैं समझा के कह सकूगा।

आज इतना ही।

दिनाक १३ नवम्बर, १९७४,
श्री रजनीश आश्रम, पूना

अपन पौ आपु ही बिसरो।
जैसे श्वान कांच मंदिर मह, भरमते भुकि मरो ॥
जौ केहरि बपु निरखि कूपजल, प्रतिमा देखि परो।
वैसे ही गज फटिक सिला पर, दसनन्हि आनि अरो ॥
मरकट मूठि स्वाद नहि बिहुरै, घर घर रटत फिरो।
कहहिं कबीर ललनि के सुगना, तोहि कवने पकड़ो ॥

३

अपन पौ आपु ही बिसरो

सूत्र मे प्रवेश के पहले कुछ आधारभूत बाते समझ लेनी जरूरी हैं।

एक सूफी फकीर हुआ, बायजीद। बैठा था अपने द्वार पर झोपडे के, एक जिज्ञासु ने पूछा, 'धर्म क्या है? साधना क्या है? मार्ग क्या है?' तो बायजीद ने कहा, 'क्या करोगे जान कर?' उस युवक ने कहा, 'मुक्त होना है बधन से।' बायजीद हसा—जोर से हसा, जैसे पागल है। और उसने कहा, 'पहले ठीक से पता लगा कर आओ—बाधा किसने है जो बधन से मुक्त होना चाहता है? जब तक इसका पक्का पता लगा कर न आओगे, तब तक मैं जवाब देनेवाला नही।'

कहते है युवक गया, वर्षो के बाद वापिस लौटा—वही पागलो जैसी हसी अब उसके पास भी थी। बायजीद ने पूछा, 'लगा लिया पता?' उस युवक ने कहा, 'अब कुछ पूछना नही, सिर्फ हसी का जबाव देने आया हू। खुद ही बाधा था, और बधन से मुक्त होने की तलाश भी चालाकी थी। वो भी उस मूल सत्य से बचने का ही ढग था। पूछता था, कैसे मुक्त हो जाऊ? मार्ग की तलाश भी स्थगन, पोस्टपोन करने की विधि थी, कि जब मिलेगा मार्ग तब पहुचेगे, मिलेगी विधि तब बधन कटेगा, जब मार्ग ही पता नही, विधि का पता नही, तो कैसे बधन के बाहर निकलेगे? ठीक किया तुमने कि जबाव न दिया और पागल की हसी हसे। वो हसी चोट कर गई। वो मन मे गहरा घाव कर गई। बहुत खोजा। जैसे-जैसे खोजने लगा, वैसे-वैसे साफ होने लगा कि बधा तो मैं ही हू, बाधा किसी ने भी नही। और जब मै ही बधा हू तो मुक्त होने की जरूरत क्या है? मत बधो और मुक्त हो गये।'

यह पहली बात समझ लेनी जरूरी है।

मोक्ष की खोज भी तरकीब है। वो भी उपाय है बचने का। अन्यथा तुम अमुक्त हुए कब? बाधा किसने? बीमार ही नही हो और औषधि की तलाश करते हो! औषधि मिलती नही, तो तुम सोचते हो, कर भी क्या सकते है हम! गुरु को खोजते हो, परमात्मा को खोजते हो—और उसे कभी खोया नही, वो तुम्हारे भीतर छिपा है। जब तुम खोज रहे हो, तब भी वो मौजूद है। और इसकी हल्की झलक तुम्हे भी है। ऐसा भी नही है कि इस बात को तुम बिलकुल भूल गय हो कि बाधा किसी

ने नही। हलकी झलक तुम्हे भी है। क्योकि यह इतना बडा सत्य है, इसे पूरा का पूरा भुलाया भी नही जा सकता। ये जजीरे तुमने अपने ही हाथ से पहन रखी हैं। हालाकि तुमने जजीरो की तरह इन्हे नही पहना है, तुमने आभूषण समझ के पहना है। तुमने जजीरो पर हीरे-जवाहरात जड लिए हैं। तुमने जजीरे लोहे की नही, सोने की बना ली हैं। तुमने जजीरो मे बडा रस भर लिया है। अब तुम उन्हे छोडने मे भी डरते हो। क्योंकि वे जजीरे तुम्हे जजीरे दिखाई ही नही पडतीं। कारागृह को तुमने खूब सजा लिया है। और कारागृह को तुमने घर बना लिया है। अब तुम पूछते जरूर हो कि कारागृह से कैसे मुक्त हो जाऊ, लेकिन तुम भलीभाति जानते हो कि तुम मुक्त होना नही चाहते। अन्यथा कौन तुम्हे रोकता है?

घर मे आग लगी हो, तो तुम छलाग लगा के बाहर निकल जाते हो। तब तुम पूछते नही हो कि गुरु कहा है, जिससे पूछू मार्ग? तब पूछते नही कि विधि क्या है बाहर निकलने की? तब तुम शास्त्रो का अध्ययन-मनन नही करते। तब आग लगी है, इतना जानना हो गया, कि मार्ग तुम खुद ही खोज लेते हो। लेकिन ससार के बाहर निकलने के लिए, तुम पूछते हो, मार्ग कहा है? तुम निकलना नही चाहते, और आग तुम्हे शत्रु मालूम नही पडती, मित्र मालूम पडती है। फिर तुम पूछते ही क्यो हो? अगर यही सच है कि तुम्हे निकलना नही, अगर यही सच है कि कारागृह को ही घर बनाने मे तुम्हे रस आता है, तो बनाओ, फिर मार्ग क्यो पूछते हो?

मन बहुत चालाक है! मार्ग पूछ के तुम दोहरी बात अपने को समझा लेते हो कि 'मै कोई साधारण, सासारिक आदमी नही हू, मैं आध्यात्मिक हू! बधन मे पडा हू, लेकिन निकलना चाहता हू, क्रोध करता हू, लेकिन आकाक्षा अक्रोध की है, कामवासना मे पडा हू, लेकिन ध्यान तो ब्रह्मचर्य का है।' ऐसे तुम अपनी गदगी को भी आदर्शों मे छिपा लेते हो, ऐसे तुम घाव के ऊपर फूल रख लेते हो। घाव को तुम मिटाना भी नही चाहते, घाव को तुम देखना भी नही चाहते, इसलिए तुम पूछते फिरते हो मार्ग कहा, विधि कहा, गुरु कौन, कैसे मुक्त हो! तुम्हारी इस बेईमानी से कौन तुम्हे बाहर निकाल सकेगा?

यह बेईमानी तुम्हे पूरी खुली आख से देखनी होगी। कष्टपूर्ण है। दूसरे की बेईमानी देखनी तो बहुत आनदपूर्ण होती है, खुद की बेईमानी देखनी बहुत कष्टपूर्ण होती है। क्योकि उसमे तुम्हारी अपनी ही आखो मे तुम्हारी प्रतिमा गिर जाती है। और तुमने बडी भव्य प्रतिमाए बना रखी हैं!

बुरे से बुरा आदमी भी यही मानता है कि आदमी तो मै भला हू, कभी-कभी बुराई कर लेता हू, यह बात दूसरी है। बुराई कृत्य है, आदमी तो मैं भला हू, सयोग से, परिस्थिति से, मजबूरी से, भाग्यवशात् बुराई कर लेता हू, करना नही चाहता हू। और जिस दिन सुविधा होगी, उस दिन भूल के भी नही करूगा। मजबूरी है, पत्नी है, बच्चे है, घर-द्वार है, थोडी चोरी, थोडी बेईमानी, थोडा असत्य कर लेता

हू, लेकिन आदमी मैं बुरा नही हू।

बुरे से बुरा आदमी भी अपनी एक सुदर प्रतिमा बना के रखता है। वो सुदर प्रतिमा बुरा होने मे सहयोगी है, क्योंकि उस प्रतिमा के कारण ही तुम बुराई के घाव को नही देख पाते। उस प्रतिमा के कारण ही बुराई तुम्हे किस बुरी तरह बाधे हुए है, और किस भाति जहर तुम्हारे रोए-रोए मे समा गया है, उसकी तुम्हे प्रतीति नही हो पाती। वह उस प्रतीति से बचने का उपाय है। इसलिए तुम विधि पूछते हो, मार्ग पूछते हो।

यह तो पहली बात समझ लेनी जरूरी है, कि तुम बधे हो, क्योकि तुम बधना चाहते हो। यह कितना ही कष्टपूर्ण हो, लेकिन इसे तुम भलीभाति समझ लेना कि जजीरे तुम्हारे हाथ मे हैं, किसी और ने तुम्हे पहनवाई नही, तुमने ही पहनी हैं।

दोष दूसरे पर डालना हमेशा सुगम है। पति सोचता है पत्नी ने बधन डाला हुआ है। कैसी मूढता है! पत्नी सोचती है पति ने बधन डाला हुआ है। कैसा पागलपन है! कोई दूसरा बधन डाल कैसे सकेगा? अगर तुम बधन न चाहो कोई तुम्हे रोक सकता? पत्नी रोक सकती, पति रोक सकता? बच्चे रोक सकते है? कौन रोक सकता है? दुनिया की कोई भी शक्ति तुम्हे बधन मे नही डाल सकती। तुम्हारी मुक्ति अपराजेय है, उसे पराजित नही किया जा सकता। अगर घुटने टेक के तुम रुके हो, तो तुम ही जिम्मेवार हो। कोई किसी को बाध नही रहा है। कोई किसी को बाध ही कैसे सकता है? कम-से-कम एक चीज तो ऐसी है जिस पे किसी का कोई वश नही है—वो तुम्हारी आन्तरिक परम स्वतत्रता है।

दोस्तोवस्की रूस का एक बहुत बडा लेखक, बडा मनस्विद्, बडा तत्वचिंतक, कारागृह मे डाल दिया गया था। कारागृह से उसने अपने एक पत्र मे लिखा है कि कारागृह आ के मुझे पता चला कि दुनिया केवल मेरे शरीर को ही बधन मे डाल सकती है, मुझे नही। कारागृह मे मैं उतना ही मुक्त हू, जितना मैं कारागृह के बाहर था, मेरी मुक्ति मे कोई बाधा नही पडी।

तुम्हारे भीतर के आकाश को कौन अवरुद्ध कर सकता है? लेकिन तुम सोचते हो पत्नी ने बाध रखा है!

ऐसा हुआ कि शेख फरीद एक गाव से गुजरता था। दो-चार शिष्य उसके साथ थे। अचानक बीच बाजार मे फरीद रुक गया और उसने कहा कि देखो! एक बडा सवाल उठाया! बडा तत्त्व का सवाल है और सोच के जवाब देना। एक आदमी गाय को ले जा रहा है बाध के। फरीद ने कहा कि मै पूछता हू, यह गाय आदमी से बधी है कि यह आदमी गाय से बधा है? शिष्यो ने कहा, इसमे कौन-सी बडी बात है? यह कौन से तत्त्व का सवाल है? और आप जैसे आदमी को मजाक करना शोभा नही देता। साफ है कि गाय आदमी से बधी है, क्योकि बधन आदमी के हाथ मे हे, और गाय के गले मे है। तो फरीद ने कहा, दूसरा सवाल है अगर हम

यह बधन बीच से तोड दें, तो गाय आदमी के पीछे जायेगी कि आदमी गाय के पीछे जायेगा ?

तब जरा अनुयायी चिन्तित हुए। उन्होने कहा, बात तो सोचने जैसी है, मजाक नही। क्योकि बधन तोड दो, तो गाय भाग खडी होगी और आदमी गाय के पीछे भागेगा।

तो फरीद ने कहा, मै तुमसे कहता हू कि आदमी के हाथ मे बधन नही है, आदमी के गले मे है। ऊपर से दिखायी पडता है कि गाय आदमी से बधी है, भीतर अगर देखोगे तो पता चलेगा, आदमी गाय से बधा है।

नही, कोई पत्नी पति को कैसे बाधेगी ? कोई पति कैसे किसी पत्नी को बाधेगा ? तुम बधना चाहते हो, लेकिन बधन की जुम्मेवारी भी अपने पे नही लेना चाहते हो, वह तुम दूसरे पे डाल देते हो। इससे बधना सुगम हो जाता है 'हम कर भी क्या सकते है ? चारो तरफ लोग बाधे हुए है, हम जाये तो जाये कहा ? करे तो क्या करे? मुक्ति मिले कैसे ? सारा ससार विराट है और बाधे हुए है।

दुकानदार सोचता है कि ग्राहक उसे बाधे हुए है। लोभी सोचता है कि धन उसे बाधे हुए है। कामी सोचता है कि कामिनी उसे बाधे हुए है। सासारिक सोचता है कि ससार उसे बाधे हुए है। नही, कोई तुम्हे बाधे हुए नही है। तुम चालाक हो। और तुम्हारी चालाकी गहरी है। तुम अपने को धोखा दे रहे हो। मगर धोखा कुशलता का है। दूसरा बाधे हुए है, इसलिए मैं क्या कर सकता हू—इससे बधे रहने मे सुगमता हो जाती है।

हम सदा दूसरे पर दोष देते है। किसी ने गाली दी, तुम कहते हो, इस आदमी ने मुझे क्रोधित कर दिया। कोई तुम्हे कैसे क्रोधित कर सकेगा ? तुम असभव की बात कर रहे हो। यह कभी हुआ ही नही। तुम क्रोधित होना चाहते हो, तो गाली सार्थक हो जाती है। तुम क्रोधित नही होना चाहते, गाली व्यर्थ हो जाती है। एक सुदर स्त्री निकलती है, तुम मोहित हो जाते हो। सुदर स्त्री तुम्हे मोहित कर रही है ? तुम मोहित होना चाहते हो। राह पर हीरा दिखाई पडता है, तुम झपट के उठा लेते हो। हीरे ने तुम्हे निमत्रण दिया, या तुम वासना ले के चलते थे, वह वासना झपट पडी ? दूसरे को दोष देना बद करो, अन्यथा तुम कभी मुक्त न हो सकोगे ? क्योकि अगर दूसरे ने तुम्हे बाधा है तो तुम कैसे मुक्त हो सकोगे, जब तक दूसरा तुम्हे मुक्त न करे ? और दूसरे अनत है। तब मुक्ति हो नही सकती। और यही सच है, जो तुम कहते हो कि दूसरे ने हमे बाधा है, तो फिर मोक्ष जैसी कोई सभावना नही है। फिर तुम कभी मुक्त न हो सकोगे। फिर बधन अनत है, क्योकि दूसरे अनत है। और तुम्हे यह छोड देगी पत्नी, तो और स्त्रिया है, कोई और बाध लेगी। तुम करोगे क्या ? तुम निरबस हो। तुम बिलकुल असहाय हो। तुम जहा जाओगे, कोई न कोई तुम्हे बाध लेगा, किसी न किसी का पट्टा तुम्हारे गले मे

होगा। अगर दूसरे ने बाधा है तो मोक्ष असभव है।

इसलिए कबीर, नानक, फरीद, सभी ज्ञानी इस सत्य को पहली सीढी बनाते हैं, कि इसे तो तुम बिलकुल साफ कर लो, अन्यथा यात्रा ही नही होगी, कि तुम ही बधे हो। तब मुक्ति की सम्भावना है। क्योकि तब तुम ही तोड सकते हो। तुम ही बधे हो, तुम ही मुक्त हो सकते हो। न कोई तुम्हे बाधता है, न कोई तुम्हे बाध सकता है।

तब एक और बात समझ लेनी जरूरी है, जो बडी गहरी है। महावीर ने कहा है, कोई तुम्हे मुक्त भी नही कर सकता। तुम कितनी ही पूजा करो, कितना ही पाठ करो—कोई तुम्हे मुक्त नही कर सकता। क्योकि अगर कोई तुम्हे मुक्त कर सकता है, तो कोई तुम्हे बाध सकता है। अगर दूसरे ने तुम्हे बाधा ही नही, तो दूसरा तुम्हे मुक्त भी न कर सकेगा।

इसलिए महावीर कहते हैं, तुम इस भ्राति मे भी मत पडना कि कोई दूसरा तुम्हे मुक्त कर देगा। महानतम गुरु भी तुम्हे मुक्त नही कर सकता। क्योकि दूसरे के द्वारा मुक्त होने की सभावना तभी है जब तुम दूसरे के द्वारा बाधे गये हो।

इसलिए बुद्ध कहते हैं, बुद्ध केवल इशारा करते है कि बधन कहा है, बुद्ध मुक्त नही कर सकते। बधे तुम हो, मुक्त भी तुम्ही होओगे। महावीर बता सकते है कि बधन कैसे कटता है, बधन क्या है, लेकिन महावीर तुम्हारा बधन नही काट सकते। और यह शुभ है कि कोई दूसरा तुम्हारा बधन नही काट सकता। नही तो इधर महावीर काटेंगे, कोई दूसरा बाध देगा। जब काटा जा सकता है ता बाधा जा सकता है। जब बाधा नही जा सकता, तो काटा भी नही जा सकता।

इसलिए गुरु तुम्हे मार्ग दे सकते है, लेकिन चलना तुम्हे है। गुरु तुम्हे विधि दे सकते है, लेकिन विधि का उपयोग करना तुम्हे है। गुरु इशारा कर सकते है, लेकिन इशारे को जीवन बनाना तुम्हे है। गुरु केटेलिटिक एजेण्ट हो सकते है, उनकी मौजूदगी मे तुम जाग सकते हो, लेकिन जागना तुम्हे है। और बडी कठिनाई यह है कि कबीर ने कही कहा है, कि सोए हुए को जगाना आसान है, लेकिन जो जागा हुआ पडा हो उसको जगाना असभव ! तुम उसी हालत मे हो—दूसरे तुम बिलकुल सोए भी होते तो हिला के तुम्हे जगाया जा सकता था। तुम बन के सो रहे हो। तुमने चादर ओढ रखी है, आख बद किये पडे हो। तुम सभी भाति दिखला रहे हो कि तुम बिलकुल गहरी नीद मे हो, और तुम जागे हुए हो। तुम्हे कैसे जगाया जाये? नीद हो टूट सकती है, झूठी नीद को कैसे तोडियेगा? तुम धोखा दे रहे हो। आत्मवचना तुम्हारा करीब-करीब स्वभाव बन गया है।

इन बातो को ख्याल मे रख के कबीर के सूत्र को समझने की कोशिश करे।

कबीर तो गाव के गवार हैं। उनके पास कोई बहुत बडे दार्शनिक शब्द नही है, लेकिन एक ग्रामीण का गहरा अनुभव है, और ग्रामीण के अनुभव की ताजगी

है। वे जो प्रतीक भी चुनते है, वे गाव के सहज प्रतीक है, लेकिन उनकी चोट बडी गहरी है। जितना सुसस्कृत शब्द हो जाता है, उतना ही मृत हो जाता है। भाषा जितनी साफ-सुथरी परिष्कृत हो जाती है, जितना उस पे रग-रोगन हो जाता है, उतनी ही जीवन से शून्य हो जाती है।

गाव का ग्रामीण जो भाषा बोलता है, वह उतनी ही जीवत होती है जितना गाव का ग्रामीण होता है। कबीर की भाषा बडी जीवत है, और उनके प्रतीक सीधे-साधे हैं। हिंदुस्तान मे, जीसस के मुकाबले सिर्फ कबीर हैं।

महावीर, बुद्ध, कृष्ण, राम—सब बहुत परिष्कृत दुनिया के लोग है। बडी शुद्ध सुसस्कृत, कुलीन परपरा के लोग है। कबीर ठेठ ग्रामीण हैं—ठीक जीसस जैसे। जीसस बढई के लडके है, कबीर जुलाहे है। जीसस भी गाव की भाषा का उपयोग करते है। और यह जान के तुम्हे हैरानी होगी कि जीसस का जो प्रभाव है इतना विराट सारे जगत पर—आधी दुनिया जीसस के साथ है—उसका कारण उनकी भाषा की ताजगी है।

महावीर और बुद्ध की भाषा कागजी फूल मालूम पडती है। बडे शुद्ध सिद्धातो की चर्चा है। लेकिन हृदय को चोट नही करती, बुद्धि को छूती है और बिखर जाती है। कबीर और जीसस की भाषा सीधी-सादी है, अनुभव की है, शास्त्र की नही है। ये सारे प्रतीक अनुभव के है।

कबीर ने कहा—'अपन पौ आप ही बिसरो।' खुद ही भूल गये हो खुद को, दूसरो को दोष दे रहे हो। खुद ही बध गये हो, दूसरो को जुम्मेवार ठहरा रहे।

'अपन पौ आप ही बिसरो।
जैसे श्वान काच मदिर मह, भरमते भूकि मरो॥'

कथा है कि एक सम्राट ने एक मदिर बनाया काच का। विराट मदिर था, उसमे हजारो दर्पण लगे थे। एक कुत्ता भूल से वहा प्रवेश कर गया। द्वार, द्वारपाल रात बद कर गया, कुत्ता भीतर रह गया मदिर मे। बडी मुश्किल मे पड गया। देखा तो चारो तरफ लाखो कुत्ते थे। क्योकि हर दर्पण से कुत्ता दिखाई पड रहा था। इस तरह दुश्मनो के बीच मे कभी कुत्ते ने अपने को पाया नही था। एक ही हो, लड ले, जीत ले। लाखो थे, जहा देखता था वही थे, नीचे थे, ऊपर थे, चारो तरफ थे। कुत्ता घबडाया। भौक के उसने डराना चाहा।

ध्यान रहे, तुम जब भी दूसरे को डराना चाहते हो—डर के कारण ही। तुम पहले डर गये होते हो, नही तो तुम दूसरे को क्यो डराना चाहोगे? भयभीत आदमी दूसरे को भयभीत करना चाहता है। अगर दूसरा भयभीत हो जाए, तो उसके भय को थोडी राहत मिले।

तो ध्यान रखना, जो आदमी वस्तुत अभय है, वह किसी को भयभीत नही करता। जो आदमी खुद भयभीत है, वो दूसरे को भी भयभीत करता है। भयभीत करने के

ढग बड़े सूक्ष्म हो सकते हैं। कोई तुम्हारी छाती पे तलवार रखके तुम्हे डरा सकता है। कोई तुम्हे नरक की पूरी व्यवस्था समझा के डरा सकता है, कि वहा आग जलेगी, लपटें होगी, तेल होगा, तेल के कढाये होगे, उसमे तुम डाले जाओगे! सैनिक तुम्हे डराता है तलवार से, तुम्हारे साधु तुम्हे डराते है नरक से। सूक्ष्म उपाय हैं, लेकिन तुम्हारा साधु भी डरा है, तुम्हारा सैनिक भी डरा हुआ है। जो डरा हुआ नही है, वो दूसरे को डरायेगा क्यो!

दूसरे को हम भयभीत करते है आत्मरक्षा के लिए। उस कुत्ते ने भी सीधा-सीधा उपाय किया, जैसा आदमी करते है। भौका, चाहा कि डरा दे। लेकिन बडी मुश्किल मे पड गया। क्योकि जब भौका तो उसने पाया कि वो लाखो कुत्ते भी भौके। और खुद की ही आवाज, सुनसान मदिर मे गूजकर वापिस लौटी। रोआ-रोआ कप गया होगा। बचने का कोई उपाय नही। भागने की कोई जगह नही। भागके जाओगे कहा, चारो तरफ से घिरे हुए हो—नीचे-ऊपर से घिरे हुए हो। उस कुत्ते की पीडा तुम नही समझ पाओगे। लेकिन अगर तुम अपने जीवन को देखोगे, तो वही पीडा है, और समझ मे आयेगी।

'जैसे श्वान काच मदिर मह, भरमते भूकि मरो!' सुबह जब द्वार खोला गया तो कुत्ता मरा हुआ पाया गया। किसी ने उसे मारा नही। कोई वहा था ही नही जो मारता। मदिर खाली था। लेकिन कुत्ते के पूरे शरीर पर घाव थे। लहूलुहान था। सारे मदिर मे खून फैला था। हुआ क्या? भौका, झपटा, दीवालो से टकराया—अपने ही हाथ मर गया।

'अपन पौ आप ही बिसरो!' और यही जीवन की कथा है—तुम्हारी भी!

किससे तुम नाराज हो रहे हो? किससे तुम मोह से भरे हो? किस पर तुम्हारी घृणा है। कभी तुमने गौर किया कि तुम्हारे सभी सबध दर्पणो की भाति है? सभी सबध दर्पण है। क्योकि तुम अपनी ही तस्वीर देखोगे, तुम अपने चारो तरफ जितने सबध बनाते हो, वे सब तुम्हारी ही तस्वीरे हैं। उसमे तुम किसी और को नही देखते, अपने को ही देखते हो। जहा तुम्हारी तस्वीर अच्छी तुम्हे मालूम लगती है, मित्र, जहा बुरी लगता है, शत्रु। अपना, पराया ! लेकिन तुम्हारे सभी सबध, रिलेशनशिप, दर्पण की भाति है। उसमे दिखाई तो तुम स्वय ही पडते हो, कोई और नही।

खयाल करो, क्रोधी आदमी सब तरफ पायेगा कि सभी लोग उसका अपमान कर रहे है। कोई हसेगा, तो वह समझेगा मेरे लिए हसते है। रास्ते पर कोई खुसफुस कर बात करेगा, तो वो समझेगा मेरे लिए बात करते है। अगर तुम कुछ न बोलोगे, चुपचाप खडे रहोगे, तो वो समझेगा कि ये मेरी वजह मे चुपचाप खडे है। तुम कुछ भी करो, वो अपनी तस्वीर देखेगा।

मेरे एक मित्र है। उनका एक ही लडका है। उनके लडके ने मुझे कहा, कि अब मै मुश्किल मे पड गया हू, अब कोई उपाय दिखाई नही पडता, आप ही कुछ करे!

मेरे पिता को समझा दें। अगर मैं ढंग से कपड़े पहनता हूं तो वे कहते हैं, 'अच्छा, कर लो राजशाही, जब मैं मरूंगा, तब पता चलेगा।' अगर मैं साधारण न पहनूं कपड़े ढंग के, तो वो कहते हैं, 'अच्छा, तो हम मर गये क्या! अभी तो ठीक से पहन लो, पीछे तो यह हालत आने ही वाली है।' उस युवक ने मुझे कहा, कोई रास्ता नहीं दिखाई पड़ता। सब करके देख चुका हूं। लेकिन नतीजा वो हमेशा वही निकालते हैं, जो उन्हें निकालना है। और उनका नतीजा बिलकुल तर्कयुक्त है। दोनों में कहीं कोई गलती आप नहीं पा सकते।

क्रोधी आदमी अपने चारों तरफ हर स्थिति से क्रोध को उपजा लेता है। लोभी आदमी अपने चारों तरफ देखता है कि सब उसको लूटने को तैयार है। सब मित्र, बेटे, पति-पत्नी—सब उसको लूटने को तैयार है। सगे-संबंधी—सब एक ही नजर पे लगे हैं, कि किस तरह उसको लूट ले। लोभी पाता है कि सारा संसार उसे लूटने को तैयार है। यह लोभ की तस्वीर दर्पण में दिखाई पड़ रही है।

कामी पाता है कि सारा संसार उसको कामना में ग्रस्त करना चाहता है। त्यागी पाता है कि सारा संसार उसे त्यागी की तरफ ले जा रहा है। त्यागी पाता है कि सारा संसार एक ही इशारा कर रहा है कि छोड़ो, भागो।

तुम जो हो, उसकी ही प्रतिध्वनि तुम्हें चारों तरफ सुनाई पड़ती है। और सारा जगत दर्पण है—कांच मंदिर, कबीर जिसको कह रहे हैं।

'जैसे श्वान कांच मंदिर महं, भरमते भूंक मरो।'

और आखिर में जब तुम मिट जाते हो—और सारी जिंदगी तुम मिटते हो—तो आखिर में तुम यही पाओगे, यही सोचोगे, इन सबने मिल के समाप्त कर दिया, मार डाला।

पुराने समय में और अभी भी आदिवासी कबीलों में, अगर कोई बीमार पड़ जाए, तो वे भी पता लगाते हैं कि किसने बीमार करने का जादू मुझ पे चलाया। बीमार तुम पड़ते हो! लेकिन वो जाता है ओझा के पास पता लगाने कि कौन है, जिसने मेरे खिलाफ बीमारी भेजी! वो तर्क तो यही है कि अगर बीमारी आयी है तो कोई भेजने वाला होगा। अगर मैं दुखी हूं तो कोई दुख दे रहा होगा। अगर मैं परेशान हूं तो कोई जरूर परेशान कर रहा होगा। गणित सीधा दिखाई पड़ता है कि बिना किसी के परेशान किये हुए कैसे परेशान होऊंगा। लेकिन तुम्हें मनुष्य के मन का कुछ भी पता नहीं है। अगर तुम बिलकुल अकेले भी छोड़ दिये जाओ, तुम्हारी सब जरूरतें पूरी कर दी जाएं, तो भी तुम्हारी यही स्थिति होगी।

पश्चिम में बहुत से प्रयोग हुए हैं। एक प्रयोग जिसको वे सेन्स-डिप्राईवेशन कहते हैं, वो बहुत बहुमूल्य प्रयोग है। कई मनोवैज्ञानिकों ने उस पर काम किया है। उन्होंने इस तरह के गर्भ-गृह बनाए हैं, जहां सब तरह की सुविधा है। भोजन भी अपने-आप नली से खून में पहुंच जाता है, उसे करने की कोई जरूरत नहीं। प्यास लगती

है तो ऑटोमेटिक इतजाम है, पानी शरीर मे पहुच जाता है, भोजन शरीर मे पहुच जाता है। घना अधकार है। कोई आवाज नही सुनाई पडती। और उन्होने ठीक वैसा ही रासायनिक इतजाम किया है, जैसे बच्चे के लिए गर्भ मे होता है। इस तरह के टब बनाए है, जिनमे ठीक वही रासायनिक द्रव्य होता है, जो मा के गर्भ मे होता है, और आदमी उसमे तैरता रहता है, उसमे सोया रहता है। उस टब मे सब तरफ अधकार है। न भोजन की चिंता है, न पानी की चिंता है, न कोई तकलीफ है—सब तरह की सुविधा है, सब सुख है। लेकिन पद्रह मिनट मे आदमी बेचैन हो जाता है। पद्रह मिनट मे वो सूचनाए भेजने लगता है, मुझे निकालो, बाहर करो। लबे प्रयोग किये गये हैं, कुछ लोगो ने हिम्मत की और इक्कीस दिन का प्रयोग किया गया। और इक्कीस दिन मे उनको खबर दी गई कि वे वक्त-वक्त पर सूचना देते रहे। उनके पास बटन लगा दिये थे। जब वे क्रोधित मालूम पडे तो लाल बटन दबा दे, तो ऊपर मनोवैज्ञानिक नोट कर लेगा कि अभी वे क्रोधित है। जब वे भय-भीत मालूम पडे, तो हरा बटन दबा दे। जब ईर्ष्या से भरे मालूम पडे तो यह बटन दबा दे। इस तरह के सब मनोवेगो के लिए बटन लगाए रखे है। और बडी हैरानी की बात है कोई नही है सताने को वहा, लेकिन वक्त पर आदमी क्रोधित होता है। कोई कारण नही क्रोधित होने का। वह खुद भी बेचैन होता है कि मै क्रोधित क्यो हू, पर क्रोधित है।

क्रोध, लोभ, मोह, सब तुम्हारी भीतरी अवस्थाए है। इनका बाहर के लोगो से कोई भी सबध नही। बाहर के लोग तो खूटियो जैसे है, जिन पे तुम अपने कपडे टागे देते हो। बाहर के लोगो पर जब तुम क्रोध टागते हो, तो वे खूटी है, लोभ टागते हो, वासना टागते हो—वह खूटी है। आता सब तुम्हारे भीतर से है। और जब तुम जीवन मे विषाद से भरोगे और सब नष्ट हो जायेगा, और मौत पास आयेगी, तब तुम कहोगे कि शायद सारी दुनिया के प्रति तुम्हारी शिकायत है, कि लोगो ने बरबाद कर दिया, हम क्या से क्या होने आये थे, होने नही दिया गया। तुम्हारे जीवन से कैसी प्रतिभा और प्रकाश पैदा होता, लेकिन सबने मिल के नष्ट कर दिया। यह जगत तुम्हारा शत्रु है?

पर कोई कारण नही दिखाई पडता कि जगत तुम्हारा शत्रु क्यो है। कोई तुम्हे मिटाने को उत्सुक क्यो है? सब अपने को पूरा करना चाहते है, और सभी सोचते है कि बाकी उन्हे मिटाने को उत्सुक है। तुम किसको मिटाने को उत्सुक हो? तुम अपने को पूरा करना चाहते हो, दूसरे अपने को पूरा करना चाहते है। लेकिन सबधो मे दर्पण के अतिरिक्त कुछ भी नही, तुम्हे अपनी ही तस्वीर दिखाई पडती है।

मैंने सुना है कि एक आधुनिक चित्रो की प्रदर्शनी थी। आधुनिक चित्र, मॉड्न पेंटिग तो तर्कहीन है। उसका अर्थ भी निकालना मुश्किल है। और पिकासो जैसे चित्रकार कहते है, अर्थ होता ही नही, निकालोगे कैसे?

पिकासो से किसी ने पूछा कि तुम्हारे इन चित्रो का क्या अर्थ है? तो उसने कहा, कि बाहर जो झाड खडे है, इनका क्या अर्थ है? ये जो फूल खिले है, इनका क्या अर्थ है? झरना जो कलकल कर रहा है, इनका क्या अर्थ है? जब इनका कोई अर्थ नही, तो पिकासो को क्यो झझट मे डालते हो? जब परमात्मा अर्थहीन है तो मुझ गरीब को क्यो फसाते हो? मैं भी अर्थहीन हू।

तो आधुनिक चित्रकला बिलकुल अर्थहीन है। प्रकृति जैसी है। उसे तुम देखके प्रसन्न हो सकते हो, उदास हो सकते हो, दुखी हो सकते हो, सुखी हो सकते हो, मगर अर्थ वहा कुछ भी नही है।

मुल्ला नसरुद्दीन देखने गया था उस प्रदर्शनी को—आधुनिक चित्रो की। चित्र देख-देखके वो परेशान हो गया कुछ सूझ-बूझ के बाहर है सब, न इनका आगा, न पीछा। न यह ही पता चलता कि सीधे टगे हैं कि उलटे टगे हैं। आखिर एक चित्र के सामने खडा हो गया, और उसने कहा कि हद हो गई, इस चित्र का क्या अर्थ है?

उस चित्रकार ने कहा, 'महानुभाव, आप दर्पण के सामने खडे है! यह चित्र है ही नही।'

पूरा जीवन दर्पण के सामने है। इसलिए सबध के प्रति वही व्यवहार करना जो दर्पण के प्रति करते हो। सबध नाजुक भी उतना ही है जितना दर्पण—जरा गिर गया कि टूट जाता है। और सबध एक दफा टूट जाये तो, वैसा ही जोडना मुश्किल है जैसा दर्पण। जोड भी लो टूटे हुए इस सबध को, तो भी टूट की रेखाए रह जाती है। प्रेम एक दफा टूट जाये, फिर लाख उपाय करो जोडने का, जोड भी लो, तो भी फिर वही बात वापस नही लौटती।

सबध बिलकुल दर्पण जैसा है, उतना ही नाजुक, और तुमको ही दिखाता है। तुम सदा हर सबध मे तुम्ही खडे हो। दूसरे को दोष मत देना। अगर जीवन व्यर्थ हो जाए, तो जानना कि तुमने ही व्यर्थ कर लिया है। और जितने जल्दी तुम समझ लो, कि दूसरे का कोई हाथ तुम्हे नष्ट करने मे नही है, उतने ही जल्दी तुम्हारे जीवन मे सृजन की प्रक्रिया का प्रारभ हो जायेगा।

'जैसे श्वान काच मदिर मह, भरमते भूकि मरो।

अपन पौ आपु ही बिसरौ।

ऐसी ही तुम्हारी दशा है!

'जौ केहरि बपु निरखि कूपजल, प्रतिमा देखि परो।' और जैसा सिह ने गुजरते हुए नदी के तट पर अपनी छाया देखी, झपट के कूद पडा! दुश्मन को बरदाश्त करना मुश्किल है! मर गया।

तुम जब भी झपटो, थोडा रुकना! एक क्षण सोचना कि जिससे तुम झपट रहे हो, वहा कोई है, या तुम अपनी ही प्रतिबिम्ब पर झपट रहे हो?

कोई तुम्हारी निन्दा करे, तुम तत्काल झपट पड़ते हो।

कभी तुमने गौर किया कि निंदा से दुख इसलिए होता है कि वो सच है, अन्यथा दुख न होगा। अगर कोई तुम्हारे सबध मे सरासर झूठ बात कह रहा हो तो तुम हस सकोगे। लेकिन अगर कोई ऐसी बात कह रहा है जो सच है, जिसको तुम छिपाये बैठे हो, और जिसको वो उघाडे डाल रहा है, तो तुम झपट पडोगे। निंदा पीडा देती है, कि तुम्हारे ढके हुए सत्य तुम्हारे सामने ही उघडने शुरू हो जाते है।

अगर तुम गौर से निंदक का विचार करोगे तो तुम अक्सर पाओगे कि सौ मे निन्यानबे मौको पर वो सही है। और इसका कारण है। इसका कारण है उसके सही होने का। क्योकि दूसरे को देखना तटस्थता से, हमेशा आसान है। खुद को तटस्थता से देखना बहुत कठिन है। देखने के लिए थोडी दूरी चाहिए। दूसरे तुम्हे जैसा देखते है, तुम अपने को नही देख पाते। तुम्हे पता ही नही चलता कि दूसरे तुम्हे कैसे देखते हैं।

मनसविद कहते है, अगर सभी लोग वास्तविक सच्चे हो जाए, जैसा कि धर्मगुरु समझते हैं कि सभी लोग सच्चे हो जाए, और सत्य ही बोले, तो दुनिया चार दिन नही चल सकती। क्योकि अगर लोग सभी सत्य कह दे, जैसा वो तुम्हारे सबध मे सोचते है, तो सब दुश्मन हो जायेगे। मित्र तो एक खोजना मुश्किल है। क्योकि मित्र भी इसलिए मित्र मालूम होता है कि वो कहता नही, जो सोचता है, या कहता भी है, तो पीठ पीछे कहता है।

दूसरा तुम्हे गौर से देख पाता है, क्योकि एक तटस्थता है। एक बात कभी तुम्हे भी निरीक्षण मे आयी होगी कोई आदमी समस्या ले के तुम्हारे पास आ जाए तो तुम उसे बडी कीमती सलाह दे पाते हो, और अगर वही समस्या तुम्हारे जीवन मे हो, तो खुद की सलाह भी तुम खुद के काम मे नही ला पाते हो। क्यो?

दूसरे को सलाह देना आसान है क्योकि फासला है। बडे से बडे सर्जन की पत्नी का आप्रेशन करना हो तो वो खुद नही करता, क्योकि हाथ कपेगा, फासला कम है। दूसरे की पत्नी पे कोई दिक्कत नही है उसको। दूसरे की पत्नी से क्या लेना-देना है! दूसरे की पत्नी पे वो ऐसे ही आप्रेशन करता है, जैसे पोस्टमाटम कर रहा हो। जिदा है कि मुर्दा, कोई फर्क नही। लेकिन अपनी पत्नी मे लगाव है, बच्चे है, घर-परिवार है, वो कही मर न जाए, कही भूल-चूक न हो जाए! भयभीत होता है, कपता है! तो बडे से बडे डॉक्टर को भी अगर अपनी पत्नी का ऑप्रेशन करवाना हो, तो किसी दूसरे सर्जन को बुलाना पडता है। और बडे से बडे डॉक्टर को भी अगर खुद की ही बीमारी का निदान करना हो, तो दूसरे से करवाना पडता है। बडी हैरानी की बात है! तुम, जो सभी जानते हो—क्या जरूरत है किसी और से निदान करवाने की? खुद निदान कर लो। लेकिन अब फासला और भी कम है—पत्नी से थोडा-बहुत फासला था भी। और पत्नी मर जाये, ऐसी कोई अचेतन आकाक्षा भी हो सकती थी क्योकि छुटकारा कौन नही पाना चाहता! शायद डर के पीछे यह भी कारण हो सकता है कि कही मैं मार न डालू, कि कही भूल-

चूक करके इसको खत्म न कर दू, क्योकि अचेतन मे, ऐसा पति खोजना कठिन है, जिसने दस-पाच बार न सोचा हो कि यह खत्म ही हो जाए पत्नी। पत्नी खोजना मुश्किल है, जिसने दस बार न सोचा हो कि यह कैसे खत्म हो जाये, तो झझट मिटे। खत्म हो जाने पे रोयेगे, छाती पीटेंगे।

और वो भी कारण समझने जैसा है। जब कोई मरता है, तुम रोते हो, उस रोने मे तुम्हारा अपराध का भाव भी है, क्योकि तुमने इसे मारना चाहा था और अब यह मर गया। तुम्हे लगता है कि तुम्हारी भी जुम्मेवारी है। अगर तुमने किसी व्यक्ति को कभी मारना न चाहा हो, तो उसकी मृत्यु को तुम हलकेपन से ले लोगे। तुम्हारा कोई अपराध नही है, पश्चाताप ज्यादा नही होगा। पश्चाताप उसी मात्रा मे होता है जितना अपराध का भाव हो।

बाप मर जाता है, बेटा बहुत रोता है, क्योकि जिन्दा था, कभी उसके पैर न छुए, जिदा था, कभी उसके पास बैठके दो प्रेम की बाते न की। अब कोई मौका न रहा। अब सदा के लिए यह अपराध मन पे रह जायेगा। अब इसको सुलझाने की कोई सुविधा नही है। लेकिन जिस बेटे ने बाप की सेवा की हो, जरूरत पर पैर दाबे हो, समय पर उसकी सुनी हो, उसकी चिता की हो, उसको प्रेम किया हो, वो इस तरह का पागल नही होगा। बाप मर जायेगा तो वो समझेगा, 'सभी मरते हैं। मरना स्वाभाविक है। मैं भी मरूगा।'

लेकिन अगर तुमने बाप के साथ कुछ ऐसा किया हो, जो नही करना था, तो तुम्हे पश्चाताप भारी होगा। यह बडी उलटी बात है। इसलिए जो बेटा बहुत छाती पीट के रोयेगा, समाज सोचता है उसको बहुत दुख हो रहा है। और जो बेटा चुपचाप बैठ के दुख को झेल लेगा, लोग कहेगे कि बेईमान, बाप मर गया, चुप बैठा है। लेकिन हालत यह है कि जो चुप बैठा है इसका कोई पश्चात्ताप नही। जो छाती पीट के शोरगुल मचा रहा है, यह परिपूर्ति कर रहा है, सब्स्टीटूयट खोज रहा है। इतनी ताकत पैर दबाने मे लगाई होती, सिर दबा दिया होता। यह रोने-पीटने से कोई अर्थ नही है।

तो यह भी अचेतन भय हो सकता है कि कही मैं मार ही न डालू, इसलिए भी हाथ कप सकता है। लेकिन खुद के पास तो इतना भी फासला नही होता। जब मैं बीमार हू, तो निदान खुद नही हो सकता। क्योकि अब भय बहुत ज्यादा है कि कही भूल न हो जाए।

मुल्ला नसरुद्दीन अपने डॉक्टर के पास गया था। और डॉक्टर ने कहा, तुम घबडाते क्यो हो? जब मैं हू, तो बीमारी ठीक हो जायेगी। और तुम्हारे भरोसे के लिए यह कहता हू कि ऐसी बीमारी से मैं भी बीमार रहा हू। तुम बिलकुल मत घबडाओ!

नसरुद्दीन ने कहा, घबडाहट नही मिटती, क्योकि आप भला इस बीमारी से बीमार रहे होगे, लेकिन आपका डॉक्टर दूसरा रहा होगा।

इसलिए कबीर कहते हैं, काहे की कुसलात! हाथ दीया था, और कुए मे गिर पड़े! दीया दूसरो के लिए था। अपने लिए जिसके पास दीया है, वो तो बुद्ध हो जाता है। अपने लिए जिसके पास ज्ञान है, वो तो भीतर प्रकाशित हो जाता है। उसकी कुशलता का तो कोई अत नही है। लेकिन दूसरो के लिए दीया हमारे पास है, अपने लिए तो हम अधे है।

इसलिए यह भी हो सकता है, कि तुम्हारा निंदक तुम्हारे सबध मे जो कहता हो, वो ज्यादा सच हो, जितना तुम अपने सबध मे कह सको। कबीर ठीक कहते है, निंदक नियरे राखिए। और उसकी बात पर सोचना। और तुम हैरान होओगे, वही बात चोट पहुचाती है, जो सच है। सच अखरता है। सच चुभता है। अगर तुम्हारे सबध मे कोई झूठी बाते कह रहा हो, तो कोई हर्ज नही।

ऐसा मैंने सुना है कि ऑस्कर वाइल्ड, एक पश्चिम का बडा लेखक, ने किसी दूसरे लेखक के सबध मे एक लेख लिखा, जिसमे उसने बडी निंदा की। वो लेखक उससे मिलने आया, और उसने कहा, 'ऐसी क्या दुश्मनी भजा रहे हो? क्यो इस तरह की झूठी बाते मेरे सबध मे लिखते हो?' ऑक्सर वाइल्ड ने कहा, चुप रहो। अगर सच लिखना शुरू कर दूगा तो तुम कही के न रहोगे।' और कहते है वो आदमी चुप-चाप खिसक गया। फिर उसने शिकायत न की।

झूठ तुम्हारे सबध मे कोई कहे, सहा जा सकता है। सच चुभता है। जो चीज चुभे, जान लेना कि किसी दर्पण ने तुम्हारा चेहरा दिखाया। और दर्पण को तोड देने का मन होता है।

मैंने सुना है कि एक महिला जो बडी कुरूप थी, वह दर्पणो की दुश्मन थी। जहा भी दर्पण देखती, फौरन तोड देती। उसको यही मैनिया, पागलपन था। उसको मनस्विद् के पास लाया गया कि इसका इलाज करो। उस स्त्री ने कहा कि मै, कुछ भी हो जाए, दर्पण को बरदाश्त नही कर सकती, क्योकि दर्पणो के कारण मैं कुरूप हो जाती हू। दर्पणो के कारण मैं कुरूप हो जाती हू! दर्पण नही होता तो मै सुदर हू। दर्पण होता है तो मै कुरूप हो जाती हू।

दर्पण तुम्हे क्यो कुरूप करने मे लगेगा? दर्पण का क्या लेना-देना? दर्पण का क्या स्वार्थ, क्या सबध? पर दर्पण वो बता देता है, जो तुम हो। सब सबध दर्पण हैं।

और वो स्त्री जो कर रही थी, वही लोग सबधो के सबध मे कर रहे है। लोग सबध तोडते है। सन्यासी भाग जाता है पत्नी को छोड के कि यह अब नही सहा जाता। लेकिन पत्नी दर्पण थी। तुम्हारी वासना को प्रगट करती थी। तुम्हारी वासना को दिखा देती थी। दर्पण तोडने से क्या होगा? तुम उसी महिला जैसे पागल हो। हिमालय पे भाग कर क्या करोगे? वासना तो साथ चली जायेगी, दर्पण छूट जायेगा। खतरा ज्यादा है हिमालय मे, क्योकि दर्पण न होगा, तो तुम अपने को सुदर समझने लगोगे। लेकिन तीस साल बाद, या तीस जन्मो बाद भी अगर वापिस लौटे हिमालय

से, जैसे ही दर्पण दिखाई पडेगा, वैसे ही कुरूप हो जाओगे। कुरूप तो तुम थे ही।

इसलिए वास्तविक सन्यासी सबधो से भागता नही, सबधो मे जागता है। दर्पण गौर से देखता है। और वास्तविक सन्यासी अपने सबधो को धन्यवाद देगा कि तुमने मुझे दिखाया, जगाया, चेताया कि मैं क्या हू। झूठा सन्यासी भागता है, सच्चा सन्यासी जागता है।

इसलिए मैं निरतर कहता हू—भागो नही, जागो। उसे सूत्र बना लेना है। किसी सबध से मत भागो, क्योकि सभी सबध तुम्हे जगाते है। जागो और अपने को बदलो! दर्पण को तोडने से क्या होगा? जिस दिन तुम बदल जाओगे, यही दर्पण तुम्हारे सबध मे दूसरी खबर देगा। जब तुम सुदर होओगे, दर्पण तुम्हे सुदर कहने लगेगा। दर्पण बिलकुल निष्पक्ष है।

'जौ केहरि बपु निरखि कूपजल, प्रतिमा देखि परो।
वैसे ही गज फटिक सिला पर, दसनन्हि आनि अरो।।'

और वैसे ही हाथी ने स्फटिक शिला मे देख कर अपने चेहरे को, स्फटिक शिला से टक्कर दे दी, दात तोड डाले अपने।

'मरकट मूठी स्वाद नही बिहुरै, घर-घर रटत फिरो।'

कबीर के प्रतीक बडे सीधे-साफ है। ऐसा अक्सर हो जाता है कि बदर किसी घडे मे हाथ डाल देता है—सामान निकालने को। चने है, कुछ और भोजन है। और फिर मुट्ठी बाध लेता है। और स्वभावत, जितनी बडी मुट्ठी बाध सकता है, उतनी बाध लेता है। हम भी वही करते है।

बदर और आदमी मे निश्चित ही सबध है।

डार्विन गलत नही हो सकता। जब मुट्ठी को भरने का मौका मिला हो तो छोटी कौन बनाएगा! उसको हम नासमझ कहेगे। बुद्धिमान बदर, छोटा बच्चा बदर का शायद थोडा-बहुत निकाल ले बाहर। नासमझ है, अनुभवी नही है, लेकिन अनुभवी बदर तो जितनी बडी मुट्ठी भर सकेगा, उतनी भरेगा। अब मुट्ठी हो जाती है बडी और बरतन के मुह से हाथ बाहर नही निकलता, तो बदर बर्तन को लटकाए हुए कष्ट भोगता है, भागता है द्वार-द्वार, घर-घर छलाग लगाता है—लेकिन मुट्ठी नही खोलता। चिल्लाता है, चीखता है! निश्चित ही कष्ट मे पडा है। और शायद सोचता होगा कि इस बर्तन मे कोई तरकीब है, जिसकी वजह से मै फस गया। लेकिन मुट्ठी नही खोलता।

वही तुम्हारी दशा है। बडी मुट्ठी बाध ली, मुट्ठी नही खोलते, और द्वार-द्वार सिर पटकते फिरते है शाति चाहिए, आनद चाहिए, जीवन चाहिए! आर एक घडे मे फसे हैं। उसकी वजह से बडी मुसीबत है।

बदरो को पकडने वाले बदरो की इस नासमझी का फायदा उठाते हैं। वो घडे गाड देते हैं जमीन मे, तो बदर भाग भी नही सकता, मुट्ठी खोल भी नही सकता।

तुम नही खोलते तो बदर कैसे खोलेगा? कोई तुमसे कम समझदार हैं बदर? कोशिश करता है कि बधी मुट्ठी बाहर निकल आये। यही तो तुम भी कर रहे हो।

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, सब जैसा चल रहा है चलता रहे—और मन शात हो जाए। मुट्ठी बधी रहे और मन शात हो जाए—ऐसी कोई तरकीब बताए। सब जैसा चलता है, चलता रहे, इसमे कुछ अडचन न पडे और मन शात हो जाए। मन अशात है, क्योकि वही घडे मे जहा मुट्ठी बाध ली है, वही कष्ट हो रहा है, वही पीडा है।

एक धनपति मेरे पास आते है। वो अक्सर कहते है कि 'छोडूगा, एक दिन सब छोडूगा, लेकिन तब तक तो कुछ विधि बताइये! एक दिन छोडूगा, सब छोडूगा लेकिन तब तक तब तक अशान्ति तो मत भोगवाइये!' जैसे कि मैं उन्हे अशाति भुगवा रहा हू। 'कोई विधि बताइये, तब तक तो मन शात हो जाए!' और मैंने उनसे कहा, कि अगर तब तक कोई विधि होती शात होने की, तो जब तुम अशात हालत मे नही छोड रहे हो, तो शात होके तुम कैसे छोडोगे? फिर तो तुम कहोगे कि अब जरूरत ही न रही। अगर बदर मुट्ठी बाधे हुए घडे के बाहर हाथ निकाल ले, मुट्ठी बाधे हुए घडे की चिंता से मुक्त हो जाए, मुट्ठी बाधे हुए घडा निर्भार हो जाए—तो बदर पागल है कि फिर मुट्ठी खोलेगा! इतने कष्ट मे नही खोल रहा तुम इतने दुख मे हो और फिर तुम नही खोल रहे मुट्ठी, तो तुम सुख मे हो के मुट्ठी खोलोगे?

तुमने कभी सुना है कि किसी ने सुख के कारण ससार छोड दिया? दुख के कारण लोग नही छोडते, दुख रहते हुए नही छोडते, महा दुख पडता रहे तो नही छोडते, तो सुख के कारण कोई ससार छोडेगा? फिर तो असभव है। अभी असभव दिखता है, तो फिर तो कैसे सभव होगा?

वो कहते है कि 'आप जो भी कहते है, ठीक कहते हैं। अभी तो सुविधा छोडने की नही है। क्या ऐसे ही तडपता रहू?' क्योकि वो रात सो नही सकते। उनके घर मैं मेहमान होता था, तो वो रात मुझे भी नही सोने देते थे। वो बैठे हैं, बैठे है। मै सकोचवश उनसे बात करता रहू। आखिर उनकी पत्नी ने मुझसे कहा कि ऐसे न चलेगा। ऐसी ही पहले मैंने भी भूल की थी इनके साथ। आप तो सो जाओ! यह तो इनको रात भर नीद आती ही नही, क्योकि आकडे धन के इतने बडे है!

एक बार उनके घर मेहमान हुआ, तो बहुत उदास थे। एयरपोर्ट से मुझे ले के गये तो रास्ते मे उन्होंने कहा, 'इस बार बहुत नुकसान हुआ है। पाच लाख का नुकसान लगा अभी पाच-सात दिन के भीतर।' सटोरिये है। उनकी पत्नी भी साथ थी। मैं दोनो के बीच मे बैठा था। पत्नी ने मेरा हाथ दबाया और उसने कहा कि उनकी बात मे मत पडना। घर जा के मैंने पूछा कि मामला क्या है? उनकी पत्नी ने कहा कि नुकसान बिलकुल नही हुआ है। पाच लाख का लाभ हुआ है, लेकिन

दस का होना था। तो वे जमाने भर मे कहते फिर रहे हैं कि पाच लाख का नुकसान हो गया।

अब यह जो बदर की मुट्ठी है, अब ये शाति चाहते हैं! लाभ कल्पना का जो था, वह कल्पना पूरी नही हुई, उसको नुकसान कह रहे है।

तुम भी जिदगी के अत मे जब मरने के करीब पहुचोगे, तो तुम उस सब को भी अपनी हानि मे गिनोगे, जो तुम सोचते थे होना चाहिए और नही हुआ। जो मिलना था तुम्हे, जिसकी तुम्हारी योग्यता और पात्रता थी, जिसके लिये तुम बिलकुल जन्म से अधिकार ले के आये थे, वो तुम्हे नही मिल पाया।

मुट्ठी खोलनी पड़ेगी। बदर-पन से नही चलेगा! और सन्यास का इतना ही अर्थ है बदर-पन से मुक्त हो जाना। वह नासमझी इतनी साफ है कि तुम परेशान हो रहे हो ज्यादा लाभ के कारण। तुम परेशान हो रहे हो ज्यादा क्रोध के कारण। तुम परेशान हो रहे हो उतनी वासनाए इकट्ठी कर ली है, जिनको बाध के रख लेने का तुम्हारे पास उपाय भी नही। तुम्हारी मुट्ठी छोटी है, और तुमने बहुत भर लिया है। आवश्यकता तक तो मुट्ठी काफी है, जैसे ही आवश्यकता वासना बनती है मुट्ठी छाटी पड जाती है। फिर जितनी बडी तुम मुट्ठी बनाते जाते हो, ससार के घडे मे उतने ही फसते जाते हो।

कहते है कबीर, 'मरकट मूठि स्वाद नहि बिहुरै, घर घर रटत फिरो!' और फिर घर-घर चिल्लाता फिरा, रोता फिरा, मगर मटके को लटकाए रहा। कष्ट भारी था लेकिन लाभ भी भारी था। लोभ कष्ट से ज्यादा मालूम पडता है। इस बात को खयाल मे रख ले।

तुम जहा हो, वहा जो दुख है, उस दुख मे ज्यादा तुम्हे सुख की आशा है। सुख है नही—आशा है। आशा मे आदमी बधा है आज नही कल, कोई तरकीब निकल आयेगी, कोई विधि हो जायगी, कोई चमत्कार किसी का आशीर्वाद—सब ठीक हो जाएगा! आशा से! मत छोडो। एक दफे मुट्ठी बाहर निकाल ली, फिर पता नही दुबारा डालने का मौका मिले न मिले। घडा रोज तो मिलता नही! और घडे कम है, बदर ज्यादा है। सब अपने-अपने घडे लिए हुए है, तुमने छोड दिया, कोई दूसरा बदर हाथ डाल दे! तुम दुख छोड दो, दूसरा दुख भोगने लगे, फिर तुम क्या करोगे? तो इसको तो रखे ही रहो, इसको लटकाए रहो, कष्ट पाओ, सो न सको, हर्ज नही। जीवन एक बेचैनी और नर्क हो जाए, ठीक, लेकिन आशा, कभी न कभी, किसी न किसी दिन, कोई न कोई विधि हो जायेगी! प्रार्थना करो, पूजा करो, मदिर जाओ, लेकिन मटके को साथ रखो!

मदिर मे लोगो की प्रार्थनाए सुने। वो प्रार्थनाए क्या कर रहे है? वो प्रार्थनाए यह कर रहे है कि मुट्ठी बधी हुई मटके के बाहर आ जाए।

खलील जिब्रान ने कही लिखा है कि मैंने हजारो लोगो की प्रार्थनाए सुनी और

मैने पाया, उनकी प्रार्थनाओ का एक ही मतलब है कि दो और दो चार न हो, कुछ असभव घट जाए, बस यही उनकी प्रार्थनाए हैं।

'कहहि कबीर ललनी के सुगना, तोहि कवने पकडो!'

तोतो को पकडनेवाले व्याध, एक छोटी-सी तरकीब का उपयोग करते है। रस्सी बाध देते हैं दो वृक्षो के बीच। रस्सी के बीच मे छोटी-छोटी लकडिया अटका देते है। तोते उन लकडियो पे आ के बैठ जाते है। बजन के कारण लकडी उलटी घूम जाती है। तोते नीचे लटक जाते है। उलटा लटका तोता समझता है, फस गये! डरता है कि अगर छोडे हाथ तो नीचे गिरेगे और मरेगे। कोशिश करता है कि किसी तरह सीधा हो के बैठ जाए। वो रस्सी है पतली, इसलिये वो बैठ नही सकता, उसका वजन ज्यादा है, वो नीचे ही गिरेगा। वो जितना तडपेगा उतना ही फसेगा। और इस घबडाहट मे वो यह भूल ही जाता है कि मेरे पास पख हैं, मैं उड सकता हू, गिरने का कोई सवाल ही नही है। लेकिन शीर्षासन की वजह से फस जाता है।

शीर्षासन से सावधान रहना! लोग उलटे खडे है, फिर डरते है।

कबीर कहते है, 'कहहि कबीर ललनी के सुगना, तोहि कवने पकडो।' तुझे पकडा किसने है मूरख! तू छोड दे, तू ही पकडे है इस रस्सी को। तेरे छोडते ही तू मुक्त है।

बधन नही है, पकड है। मोक्ष बधन से मुक्ति नही है, पकड़ से छुटकारा है। बधन तो बाहर होता है, पकड भीतर होती हैं। बधन तो दूसरा भी लगा सकता है, पकड तुम्ही लगा सकते हो, पकड दूसरा नही लगा सकता।

जिस-जिसको तुमने पकडा है, वही-वही तुम बध गये हो। और अब तुम डरते हो। अब तुम्हे पखो का विस्मरण हो गया है कि तुम उड भी सकते हो और गिरने का कोई डर नही है, लेकिन इतने दिन से तुम बधे हो, इतनी लबी हो गई है बधन की प्रक्रिया कि तुम भूल ही गये कि कभी तुम मुक्त थे, कभी तुम आकाश मे भी उडे थे।

तोते बहुत दिन पिजरे मे रह जाए, फिर उड नही पाते, पखो का स्मरण खो जाता है। बहुत दिन तक पख उडने मे रुके रहे तो उनकी क्षमता क्षीण हो जाती है। यही हुआ है।

और कबीर बडा गहरा व्यग्य कर रहा है। वो कह रहे है 'ललनी के सुगना तोहि कवने पकडो।' किसने तुझे पकडा है? कोई पकडे हुए नही है। तूने हो कुछ गलत चीजे पकड रखी है और कष्ट पा रहा है।

इसलिए समस्त धर्म का सार है पकड, क्लिगिग को छोडना। कुछ भी मत पकडो। जियो सब, पकडो कुछ भी मत। रहो घर मे, रहो दुकान पर, बाजार मे —पकडो मत, मुट्ठी खुली रखो। जियो सारे ससार को, वो जीने के लिए है। उसके जीने से प्रौढता मिलेगी। उसके जीने से समझ बढेगी। अनुभव बुद्धिमत्ता को लायेगा। जियो, पर जाग कर जियो, पकडो मत। मुक्त रह कर जियो। विचरो

ससार से। एक भी अनुभव ऐसा नही कि उसे तुम छोडो। सभी अनुभव कर लेने जैसे हैं। क्योंकि उसको करने से ही तुम्हारे भीतर जो छिपी हुई सभावना है, बोध की, वो जगेगी। सभी अनुभव, बुरे-भले—गुजर जाने जैसे है। पर जाग कर गुजरना, ताकि कोई अनुभव कारागृह न बन जाए, और तुम किसी अनुभव मे बद न हो जाओ।

अभी ऐसा ही हुआ है। एक बार तुम जो अनुभव कर लेते हो, तुम उसमे बध जाते हो, फिर तुम बार-बार उसी को करना चाहते हो। क्लिगिंग पैदा हो गई, पकड पैदा हो गई। जो भी अनुभव तुम्हे सुख देता है, जरा-सी भी झलक देता है, तुम मुट्ठी बाध लेते हो। तुम इतना अविश्वास किये हो जीवन भर! तुम्हे यह पता ही नही कि जिस जीवन से यह अनुभव मिला, उस जीवन से और बडे अनुभव भी मिलेगे, बधने की जल्दी क्या है? जो जीवन यहा लाया है, वह जीवन और विराट किनारो तक भी ले जायेगा। यही घर बना लेने की जल्दी क्या है? तुम रास्ते पर पहला कदम ही नही रखते कि वही पडाव बना लेते हो। रुको, ठहरो! रात का विश्राम बुरा नही है, लेकिन सुबह होते चल पडो।

वेदो के ऋषियो ने कहा है चलते रहो! चलते रहो! रुको मत, ठहरो भला!

बुद्ध अपने भिक्षुओं को कहते थे, चरैवेति, चरैवेति! चलते रहो, चलते रहो! विश्राम के लिए रुको, घर मत बनाओ। कही भी जहा तुमने पकड बनाई, वही घर बनता है। और जहा घर बना, वह जल्दी ही कारागृह निर्मित हो जाता है।

बौद्धो की बडी पुरानी कथा है। एक आदमी सन्यासी हुआ। उसने गुरु से दीक्षा ली। तो गुरु ने उससे पूछा कि दीक्षा के समय कुछ बोध, जो मैं सदा याद रखू? गुरु ने कहा, एक बात भर खयाल रखना बिल्ली कभी मत पालना। वो थोडा हैरान हुआ कि यह आदमी पागल मालूम होता है। हम ज्ञान की खोज मे निकले है—मोक्ष, निर्वाण, ईश्वर—और इस आदमी से दीक्षा ले फसे, और यह क्या उपदेश दे रहा है कि बिल्ली कभी मत पालना!

फिर गुरु तो मर गया। और जो उसने कहा था, चूकि इसने उसको कभी समझा ही नही। और उसने समझा कि व्यर्थ की बकवास कर रहा है, दिमाग खराब हो गया है, सठिया गया है। साठ के ऊपर था। और दो आदमी भरोसे के नही होते। पुराने जमाने मे, जो सठिया जाते थे, साठ के पार चल जाते थे, वे भरोसे के नही थे। आज के जमाने मे, जो 'कुर्सिया' जाते है, कुर्सी पे बैठ जाते है, वो सठिया गये, अब उनकी बात का कोई मतलब नही।

बूढा तो मर गया। इसके पास बस एक लगोटी ही थी, उसको टागता था, तो चूहे काट जाते थे। तो गाव के लोगो से पूछा कि क्या करू? तो उन्होने कहा कि एक बिल्ली पाल लो। भूल ही गया बिलकुल कि गुरु ने कहा था कि बिल्ली भर मत पालना। अपने अनुभव से कहा था, क्योंकि यही कहानी उसके साथ दोहरी

थी। कहानी तो वही है, पात्र बदल जाते है। कुछ अडचन नही मालूम पडी, एक बिल्ली पाल ली। झझट शुरू हो गई, क्योकि बिल्ली को भोजन चाहिए। उसको दूध चाहिए। चूहे तो खतम किये बिल्ली ने, लेकिन बिल्ली आ गई! गाव के लोगो से पूछा। उन्होने कहा, इसमे क्या अडचन है? एक गाय हम आपको भेट दिये देते है।

बिल्ली के पीछे गाय आ गई। गाय के लिए घास, कब तक गाव के लोग दे। उन्होने कहा, 'ऐसा करो कि जमीन पडी है तुम्हारे आसपास मदिर के, थोडी खेती-बाडी शुरू कर दो।' खेतीबाडी शुरू की तो कभी बीमारी भी होती, पानी डालना है, कोई पानी डालनेवाला चाहिए। खेतीबाडी मे समय ज्यादा लग जाता, खुद ही खाना बनाना है। तो गाव के लोगो ने कहा, 'ऐसा करो शादी कर लो।' एक लडकी थी भी गाव मे योग्य, बिलकुल तैयार। उन्होने इसकी शादी करवा दी। फिर बच्चे हो गये। फिर वह भूल ही गया। दीक्षा, सन्यास वो सब मामला खत्म हो हुआ, अब बच्चो को पढाना, लिखाना । खेती बडी हो गई, व्यवसाय फैल गया ।

जब मरने के करीब था, तब उसे एक दिन याद आया, जैसे नीद मे चौका कि हद कर दी उस बूढे ने, ठीक ही कहा था, कि बिल्ली मत पालना! बिल्ली के पीछे सब चला आता है। पहला कदम तुमने उठाया फिर मुश्किल हो जाती है।

एक घर मे मैं ठहरा था, दो छोटे बच्चे सीढियो पे बैठ के बात कर रहे थे। घर के ही दो बच्चे—बडा होगा कोई चार साल का, छोटा होगा कोई ढाई साल का। बडा छोटे को ज्ञान दे रहा था। छोटा पूछ रहा था कि किस चीज से बचना चाहिए? स्कूल मे, उसके जाने का वक्त आ गया था। बडे ने कहा, 'बस एक बात खयाल रखना, अगर उसमे बच गये तो बिलकुल बच गये! छोटे ने कहा बता दो। उसने कहा, सी ए टी—कैट! कैट यानि बिल्ली। जब स्कूल म यह पढाया जाए, इसको बिलकुल सीखना ही मत। इसको सीखे कि फिर दूसरी चीजे सीखनी पडती है। बस इस पे ही तुम, इस पे ही अडे रहना। फिर बडे-बडे शब्द आते है इसके पीछे। और फिर कोई अत ही नही है। उसी मे मैं फस गया। तुम सावधान रहना!'

जब उन बच्चो की बात मैं सुन रहा था, तब मुझे यह कहानी याद आई, कि ठीक है, सी ए टी कैट, कैट यानी बिल्ली! बिल्ली से जो बचा, वा सबसे बचा!

एक चीज को पकडो, पकड शुरू हो गई। फिर दूसरी को पकडना पडे, तीसरी को पकडना पडे—सिलसिला है। एक के पीछे दूसरा, दूसरे के पीछे तीसरा, एक शृखला है।

जीना, गुजरना—सब अनुभव से, पकडना कोई अनुभव नही। और सदा अनुभव की सभावना है, जल्दी क्या है पकडने की? और पुनरुक्ति की आकाक्षा मत करना।

जो अनुभव एक बार गुजरे, फिर बार-बार मत मागना। क्योकि बार-बार मागने का मतलब है कि तुम वही अटकने को खडे हो गये बार-बार तुमने भरोसा खो

दिया जीवन का। अभी बहुत बाकी था। यह जीवन वहा तक ले जाता है जहां परमात्मा है—अगर तुम चलते रहो। रुक गये, तो तुम कही छोटी जगह, व्यर्थ जगह रुक जाते हो, किसी कूडे की ढेर पर घर बना लेते हो।

इसलिए कबीर कहते हैं, 'कहहिं कबीर ललनी के सुगना, तोहि कवने पकडो।' किसी ने पकडा नही है, बिल्ली तुम्ही ने पाल ली है। तुम्ही चाहो तो छूट सकते हो। छूटने के लिए—सिर्फ छूटने की चाह!

और क्या है पकड? उसको समझने का प्रयास चाहिए, अभीप्सा, कि मैं मुक्त होना चाहता हू। और इस अभीप्सा के पीछे, स्वभावत समझ विकसित होनी शुरू होने लगती है कि मैं बधा क्यो हू।

सिद्धो ने कहा है, तुम बधे नही हो, तुमने अपने को बांध रखा है। अगर तुम मुक्त होना चाहते हो, इसी क्षण मुक्त हो सकते हो। एक क्षण भी गवाने की कोई जरूरत नही। समझ की प्रगाढ़ता, त्वरा, तीव्रता, एक लपट की तरह सभी अतीत को राख कर सकती है। इसी क्षण तुम मुक्त हो सकते हो!

आज इतना ही।

दिनाक १४ नवम्बर, १९७४,
श्री रजनीश आश्रम, पूना

गुरु मानुष करि जानते, ते नर कहिए अध ।
महादुखी संसार में, आगे जम के बध ।।
तीन लोक नौ खण्ड में, गुरु ते बड़ा न कोय ।
करता करै न करि सकै, गुरु करै सो होय ।।
गुरु समान दाता नहिं, जाचक सिष समान ।
तीन लोक की सम्पदा, सो गुरु दीन्हा दान ।।
गुरु कुम्हार सिष कुंभ है, गढ़-गढ़ काढ़ै खोट ।
अन्तर हाथ सहार दै, बाहर बाहै चोट ।।
गुरु को सिर पर राखिए, चलिए आज्ञा माहिं ।
कहै कबीर ता दास को, तीन लोक डर नाहिं ।।
गुरु गोविन्द दोउ खड़े, काको लागूं पाय ।
बलिहारी गुरु आपने, जिन गोविन्द दियो बताय ।।

हरि रूठै गुरु ठौर है,
गुरु रूठे नहिं ठौर ।।

४

गुरु कुम्हार सिष कुंभ है

गुरु पूर्वीय चेतना की खोज है। पश्चिम की भाषाओ मे गुरु जैसा कोई शब्द भी नही, शिक्षक है, अध्यापक है, आचार्य है, पर गुर जैसा कोई शब्द नही। पहले तो गुरु शब्द को समझ ले, क्योकि बडे सूक्ष्म भाव उसमे समाहित हैं।

शिक्षक तो वह है जो ज्ञान दे, जिससे हम कुछ सीख ले, स्मृति बढे, जानकारी बढे। गुरु शिक्षक नही है। वो ज्ञान नही देता, उससे तुम्हारी जानकारी भी नही बढेगी। ठीक उलटा ही है गुरु शिक्षक से। वो तुम्हारा सारा ज्ञान छीन लेता है। वो तुम्हारी स्मृति को गिरा देने के लिए उपाय बताता है। वो पहले तुम्हे परम अज्ञानी बना देता है, क्योकि जैसे ही तुम परम अज्ञान की प्रतीति से भर जाओ, वैसे ही परमात्मा के द्वार खुल जाते है। क्योकि वे द्वार उसके लिए ही खुलते हैं, जो नही जानता है। जो जानता है कि मै नही जानता हू, बस उसी के लिए वे द्वार खुलते है। जिसे खयाल है कि मैं जानता हू, उसके लिए परमात्मा के द्वार सदा बद है—परमात्मा के कारण नही, उसके जानने की भ्राति के कारण।

इससे बडा कोई अहकार नही है कि मै जानता हू। क्या जानते है आप? जो भी जानते हैं, कचरा है। वो कचरा भी अपना नही है, वो भी उधार है, वो भी किसी से सीखा है। इस कचरे के बोझ को हम पाडित्य कहते है। इस बोझ को हम ढोते रहे, यह पत्थर की तरह हमारी छाती पे बढता जायेगा। लेकिन यह बोझ कभी पख नही बन सकता। इससे तुम परमात्मा के आकाश मे उड न सकोगे। इससे मोक्ष का कोई भी सम्बध नही, क्याकि मोक्ष के लिए तो निर्भार होना जरूरी है। सब बोझ हट जाए, तो ही पख उन्मुक्त आकाश मे प्रवेश कर सकते है। और ज्ञान से बडा कोई बोझ नही है। तुम जानते हो, वही तो तुम्हारी मुसीबत है, वही तुम्हारा बधन है। और अहकार जल्दी मान लेता है कि मै जानता हू, क्योकि अहकार को यह मानना कि मैं अज्ञानी हू, बडी पीडा मे भरी बात है।

इसलिए सुकरात ने कहा है, जब कोई ज्ञानी हो जाता है, तो पहली बात तो यही जानना है कि मैं नही जानता हू। तब द्वार खुलते है। वे द्वार भी ज्ञान के नही, वे द्वार भी अनुभव के हैं। जब कोई अनुभव कर लेता है कि मैं नही जानता हू,

तभी तो शिष्य होने की क्षमता आती है। अगर थोडी-सी भी समझ लेके तुम मेरे पास आए हो, तो तुम नासमझ ही वापस लौट जाओगे। तुम्हारी समझ ही तो बाधा हो जाएगी। तुम मुझे मौका ही न दोगे कि मैं तुम्हारे भीतर जा सकू, दरवाजे पे तुम्हारी समझदारी खडी है। समझदारी का हटना जरूरी है। तुम जो भी जानते हो, उसका हटना जरूरी है। क्योकि एक बात तो तय है कि तुम्हारे जानने से न तो तुम्हे सत्य मिला, न तुम्हे जीवन मिला, न तुम्हे प्रकाश मिला। इस जानने से तुमने पाया क्या है? इससे जानने से तुमने सिवाय अहकार के और कुछ नही पाया है। इस जानने से यह अकड मिली कि मैं जानता हू। और यह अकड बिलकुल थोथी है। और यह अकड वैसी है, जैसे रस्सी जल जाए, उसमे अकड होती है। इस अकड मे कोई शक्ति भी नही है। क्योकि इस जानने सैं कुछ भी तो जीवन सघन नही होता, प्रगाढ नही होता। इस जानने से तुम कही भी तो पहुचते नही हो। इस जानने से ही उलटे तुम भटकते हो। न जानने वाला बैठ जायेगा, चलेगा नहीं, क्योकि वो कहेगा, मुझे पता नही, कहा जाऊ, रास्ता कहा, मुझे पता नही, मजिल कहा है, मुझे पता नही। तो उचित यह है कि बैठ ही जाऊ जब तक पता नही है। कम से कम न जानने वाला भटकेगा नही।

जानने वाले के पास नक्शे है, जानकारी है। वे उनकी वजह से बडी यात्राओ पे निकल जाते है। जितनी लबी यात्रा पर तुम जाओगे, उतने ही स्वय से दूर निकल जाओगे।

अज्ञानी बैठ जायेगा। बैठ के ही पा लेगा। क्योकि जिसको तुम खोज रहे हो वो भीतर छिपा है। वो कही बाहर होता, तो नक्शे साथ दे सकते थे, शास्त्र काम आ सकते थे। कोई शास्त्र काम न आयेगा।

शिक्षक शास्त्रो को हस्तातरित करता है। समाज ने जो जानकारी इकट्ठी की है सदियो-सदियो मे, शिक्षक उसको नयी पीढी को देता है। शिक्षक कडी है दो पीढियो के बीच।

गुरु शिक्षक नही है। गुरु हमेशा जो भी तुम्हे समाज ने दिया है, उसे छीन लेता है, और तुम्हे समाज-मुक्त कर देता है, गुरु तुम्हे ज्ञान से मुक्त करता है—उस तथाकथित ज्ञान से, जिससे तुम भरे हो। गुरु तुम्हे निर्भार करता है। इसलिए गुरु के पास सीखने नही जाना पडता। गुरु के पास अन-सीखने जाना पडता है।

श्री रमण को किसी ने कहा, मुझे कुछ सिखाए, कुछ शिक्षा दे। रमण ने कहा, तो फिर कही और जाओ, यहा तो अनलर्निंग, अन-सीखना करना हो तो आओ। यहा तो हम मिटाते है, पोछते है। यहा हम तुम्हारी चेतना के आकाश पर कुछ लिखना नही चाहते। काफी लिख गया है, उसी को साफ करना चाहते हैं। यहा हम तुम्हे खाली करेंगे, भरेंगे नही। भरे तो तुम काफी हो, वही तो तुम्हारी विपदा है। लेकिन विपत्तियो को तुम सपत्ति समझते हो। तुम और भरने को उत्सुक हो।

तुम सोचते हो शायद मैं इसलिए भटक रहा हू कि मेरा भराव कम है। तुम सोचते हो शायद मैं इसलिए भटक रहा हू कि थोडी जानकारी कम है, और थोडी जानकारी आ जाए तो पहुच जाऊगा। नही, तुम नही पहुचोगे। तुम्हारी जानकारी को ही तो कबीर कहते है, काहे की कुसलात, कर दीपक कुबे पडे! कैसी तुम्हारी कुशलता! कैसा तुम्हारा जानना! पडे हो कुए मे, और कहते हो हाथ मे दीया है! हाथ मे दीया था, तो तुम कैसे गिरे? और कुए मे गिर गये हो तो हाथ मे बुझा दीया होगा। बुझे दीये को भी हम दीया ही कहते है। बुझे ज्ञान को हम ज्ञान ही कहते हैं।

एक तो कबीर का ज्ञान है, वो जलता हुआ दीया है, और एक पडित का ज्ञान है, वो बुझा हुआ दीया है। दोनो को हम दीया कहते हैं। बुझे को दीया कहना नही चाहिए, भाषा की भूल है। उधार ज्ञान को ज्ञान कहना नही चाहिए, भाषा की भूल है। लेकिन अपना ज्ञान तो कभी-कभी घटित होता है करोडो मे। तो एक को छोड कर बाकी का क्या होगा? वे बाकी भी मानना चाहते है कि ज्ञानी हैं। उस मानने से बडी तृप्ति मिलती है। उस मानने से कुछ भी नही मिलता, सिर्फ एक तृप्ति मिलती है कि मैं भी जानता हू।

पडित से ज्यादा भ्रात आदमी तुम कही न पा सकोगे। इसलिए मैं निरतर कहता हू, पापी भी उस तक पहुच जाए, पडित नही पहुच पाता। ऐसा कभी सुना नही कि पडित मोक्ष गया हो। पापी तो कुछ पहुचे है, पडित नही पहुचा, क्योकि पाडित्य सबसे बडा पाप है। बाकी सब पाप छोटे हैं। क्यो?

एक चोर है, उसने किसी का धन चुरा लिया—यह पाप है। यह पाप बहुत बडा नही है, क्योकि धन मिट्टी है। और यह पाप बहुत बडा नही, क्योकि कितना धन चुराया होगा? और यह पाप बहुत बडा नही, क्योकि धन को चुरानेवाले को यह लगता ही रहता है कि मैने बुरा किया। उसके अहकार की भरती नही होती इससे, अहकार मे काटा छिदता है।

फिर एक आदमी ने ज्ञान चुरा लिया पडित, यानी जिसने ज्ञान चुरा लिया। पडित चोर है। लेकिन अकड उसकी ऐसी है, जैसे वो साहूकार हो। और जो उसने चुराया है, वो ज्यादा सूक्ष्म है। और कही काटा भी नही छिदता कि मैने चोरी की है। चोर को तो काटा छिदता है, वही काटा उसे मोक्ष ले जा सकता है। पडित को तो काटा भी नही छिदता। पडित तो फूल पर सवार है, वही फूल उसे डुबायेगा। वही सघातक है।

तो पहली बात गुरु ज्ञान देता नही, तुम्हारे ज्ञान को छीन लेता है। गुरु तुम्हे भरता नही, खाली करता है। गुरु तुम्हे शून्य बनाता है, क्योकि शून्य मे ही पूर्ण का आगमन हो सकता है। गुरु तुम्हे खाली करता है। गुरु तुम्हे शून्य बनाता है। क्योकि शून्य मे ही पूर्ण का आगमन हो सकता है। गुरु तुम्हे खाली करता है, ताकि परमात्मा के लिए जगह हो सके। इसलिए गुरु और शिक्षक मे बुनियादी भेद है।

दूसरी बात शिक्षक शब्द का प्रयोग करेगा, क्योकि शब्द ही वहा माध्यम है। कुछ भी कहना हो, कुछ भी देना हो, कुछ भी ज्ञान हस्तातरित करता हो, तो शब्द ही माध्यम है। गुरु शब्द का उपयोग करेगा, लेकिन भलीभाति जानते हुए कि शब्द केवल भूमिका है। सत्य उससे दिया नही जा सकता।

शिक्षक शब्द पर पूरा हो जाता है, गुरु नि शब्द पर पूरा होता है। गुरु भी शब्द से शुरू करता है, इसलिए भ्राति का डर है कि हम शिक्षक को गुरु समझ ले, गुरु को शिक्षक समझ ले। शब्द से शुरू करना ही होगा, क्योकि तुम जहा हो वही से यात्रा शुरू हो सकती है। तुम अगर बीमार हो, तो औषधि से शुरू करना पडेगा। लेकिन औषधि अन्त नही है। स्वास्थ्य अन्त है। और स्वास्थ्य का अर्थ ही है कि जहा औषधि की कोई जरूरत न रह जाये।

तुम बीमार हो—शब्दो से बीमार हो। शब्द से ही शुरू करना पडेगा। लेकिन, लक्ष्य होगा नि शब्द। शिक्षक शब्द ही से शुरू करता है, शब्द ही लक्ष्य है। गुरु शब्द से शुरू करता है, लेकिन शब्द लक्ष्य नही है। नि शब्द! गुरु शब्द का उपयोग करता है, तुम्हारे शब्दो के निषेध के लिए। एक काटा लगा हो तो हम दूसरे काटे स पहले काटे को निकालते है। गुरु शब्द का ऐसा ही उपयोग करता है। शब्द के काटे लगे है, दूसरे शब्दो के काटो से उन्हे निकालता है। लेकिन गुरु, तुम्हारे पीछे छूट गये घाव मे, नये काटे को नही रख देता कि यह काटा बडा प्यारा है, कि इस काट ने बडी कृपा की है, कि इसी काटे की वजह से पुराना काटा निकला। शिक्षक तुम्हारे भीतर काटो को चुभाये चला जाता है।

तुम जितना जानकार हो जाते हो, उतना ही जानना मुश्किल हो जाता है। तुम जितन समझदार हो जाते हो, उतनी ही समझ मुश्किल हो जाती है।

गुरु तुम्हारे एक काटे को दूसरे काटे से निकालता है। फिर कहता है दोनो काटे फेक दो। तुम बिलकुल निर्भार हो जाओ। तुम काटे से शून्य हो जाओ। लक्ष्य नि शब्द ह, शून्य है।

शिक्षक से एक सबध बनता हे। वो सबध बुद्धि का है। वह सबध दो सिरो का है, हृदय का नही। हृदय से शिक्षक का कोई लेना-देना नही। गुरु से जो सबध बनता है, वो दो बुद्धियो का नही है, वो दो हृदयो का है। इसलिए पश्चिम के लोग समझ ही नही पाते कि गुरु के प्रति श्रद्धा की क्या जरूरत। सीखना है, गुरु एक टेक्नीशीयन है, जानकार है, उससे सीख लो, बात खतम् हो गई! श्रद्धा का कहा सवाल है!

काश! बुद्धि का ही सबध होता गुरु से, तो पश्चिम ठीक कहता है। सीख लिया, धन्यवाद दे दिया, फीस चुका दी, बात खत्म हो गई। जैसे रास्ते पे तुम किसी से पूछ लेते हो कि स्टेशन का मार्ग कहा है—श्रद्धा की कोई जरूरत है? मार्ग बता दिया, धन्यवाद दे दिया—चुकतारा हो गया। तुम अपनी राह चले गये, तुम्हारा

बताने वाला अपनी राह चला गया। न तो वो अपेक्षा करता है कि तुम उससे श्रद्धा रखो, समर्पण करो, न तुम सोच सकते हो कि इतनी-सी बात पूछने के लिए कोई श्रद्धा और समर्पण की जरूरत है। तुमने पूछ लिया ईश्वर कहा है, गुरु ने बता दिया। तुमने पूछ लिया ध्यान कैसे करे, गुरु ने बता दिया। तुमने धन्यवाद दे दिया, भेंट दे दी, अपने घर चले गये, बात समाप्त हो गई।

शिक्षक और विद्यार्थी का सबध व्यवसायिक है, वहा श्रद्धा की कोई भी जरूरत नही। इसलिए अगर विश्वविद्यालय के शिक्षक विद्यार्थियो से श्रद्धा की अपेक्षा करते हो तो भ्राति मे है। यह हो नही सकता। लेकिन पूरब की परपरा की वजह मे उनके मन मे यह भ्राति बनी है। क्योकि पूरब मे गुरु को आदर था, श्रद्धा थी—वो सोचते हैं वो भी गुरु हैं, उनके लिए श्रद्धा और आदर होना चाहिए। नही, वो गुरु है नही। विद्यार्थी शिष्य नही है, शिक्षक गुरु नही है। विद्यार्थी फीस चुका रहा है। धन्यवाद दे देगा—बात खत्म हो गई। शिक्षक मे कोई हार्दिक सबध नही है—हो नही सकता।

लेकिन भारत मे गुरु के प्रति सम्मान का भाव इतना पुराना है कि विश्वविद्यालय का शिक्षक भी सोचता है कि मै गुरु हू—बिना इस बात की फिक्र किए कि गुरु कि गुरुता कहा, बिना इस बात की चिंता किए कि गुरु होना साधारण आदमी के बस की बात नही। क्योकि गुरु तो वही हो सकता है, जो उस गुरुता को उपलब्ध हो गया। जो अतिम महिमा को उपलब्ध हो गया, जिसने परम सत्य को जान लिया, वही गुरु हो सकता है। जिसको जानने को कुछ शेष न रहा, जिसके होने मे अतिम घटना घट गई, जो समाधिस्थ हुआ, जिसके लिए परमात्मा पारदर्शी हो गया, जो परमात्मा में एक हो गया, जिसमे और परमात्मा मे रत्ती भर भेद न रहा—गुरु वो है।

शिक्षक और विद्यार्थी मे जो फर्क है, वह परिमाण का है, मात्रा का है - गुण का नही है, क्वालिटेटिव नही है, क्वाटिटेटिव है। गुरु थोडा ज्यादा जानते है, शिष्य थोडा कम जानता है—ऐसा आप सोचते है? नही, गुरु और शिष्य के बीच जो भेद है, कम-ज्यादा का नही है। गुरु और शिष्य के बीच मात्रा का भेद नही है, गुण का भेद है। गुरु कही और है, शिष्य कही और है। दो अलग लोको मे उनका निवास है। दो अलग आयाम मे वे जीते है। उनका अस्तित्व भिन्न है। लेकिन विश्वविद्यालय का शिक्षक और उसका विद्यार्थी, उनमे जो अतर है, वो मात्रा का है। शिक्षक थोडा ज्यादा जानता है, विद्यार्थी थोडा कम। और इसलिए अगर विद्यार्थी थोडा कुशल हो तो कोई कठिनाई नही कि शिक्षक से ज्यादा जान सके। कोई भी कठिनाई नही है। मात्रा का ही फर्क है। तो जो बहुत प्रतिभाशाली विद्यार्थी होता है, वो अक्सर शिक्षक से ज्यादा जान लेता है। थोडी प्रतिभा, थोडा श्रम, बस इतनी ही बात है। और आज नही जानता, तो कल जान लेगा। शिक्षक एम ए की उपाधि

लिए हुए हैं, विद्यार्थी कल एम ए की उपाधि ले लेगा। तो जो फासला है, वो मात्रा का है, गुण का नही है। जहा तक बीइंग का आत्मा का सवाल है, दोनो एक जैसे है। जहा तक स्मृति का सवाल है, दोनो में फर्क है। एक के पास ज्यादा, एक के पास कम। लेकिन इसमे गुणवत्ता का क्या है, गुरुता का क्या है?

तो गुरु और शिष्य के बीच जो फासला है, वो क्वालिटेटिव है, वो गुण का है। गुरु कही और, शिष्य कही और। यह मात्रा का भेद नही है। यह तो पूरा का पूरा शिष्य का जब रूपातरण होगा, तभी यह भेद टूटेगा। यह भेद सीखने से टूटने वाला नही है। जन्मो-जन्मो तक शिष्य सीखता रहे, तो भी टूटेगा नही। और यह भी हो सकता है कि जानकारी की दुनिया मे गुरु से ज्यादा भी जान ले, तो भी नही टूटेगा। इसमे क्या कठिनाई है? बुद्ध से ज्यादा कोई भी जान सकता है।

सच तो यह है कि आज विश्वविद्यालय मे पढनेवाला एक विद्यार्थी बुद्ध से ज्यादा जानता है। कबीर की जानकारी क्या है? कबीर से ज्यादा तो कोई भी जानता है। कबीर को न तो पता था आइस्टीन का, न पता था हेज़नबर्ग का, न कबीर को पता था हिरोशिमा, नागासकी मे गिरने वाला एटमबम का। कबीर को पता ही क्या था? अगर पते की ही बात पूछते हो, तो कबीर को अगर मैट्रिक की परीक्षा मे बिठा दो तो तुम सोचते हो कि एकदम पास हो जायेंगे? ट्यूटर रखना पडेंगे और सालो मेहनत करनी पडेगी, तब पास हो पाएगे। फिर भी पक्का नही है। जानकारी का सवाल ही नही है। लेकिन तुम जन्मो-जन्मो तक पढते रहो लिखते रहो, उपाधिया इकट्ठी करते रहो, पच्चीस उपाधिया इकट्ठी कर लो, विश्वविद्यालय तुम्हे सम्मानित करे डी लिट् से, तो भी तुम कबीर के एक कण को भी न पा सकोगे। तुम्हारी तो बात दूर, तुम्हारा आइस्टीन भी कबीर के एक कण को नही पा सकता।

आइस्टीन भी मरते वक्त इसी पीडा से मरता है कि मैं बिना कुछ जाने मर रहा हू, यह रहस्य जगत का अछूता रह गया। आइस्टीन कितना जानता है! मनस्विद कहते है कि आइस्टीन जितना जानता है, शायद मनुष्य-जाति के इतिहास मे इतना किसी आदमी ने कभी नही जाना, जानकारी का जहा तक सबध है। खुद आइस्टीन चकित था कि इतनी जानकारी मेरे भीतर बनी कैसे रहती है! तो मरते वक्त वसीयत कर गया कि मेरे सिर की वैज्ञानिक जाच की जाए—मस्तिष्क की। तो मस्तिष्क प्रयोगशाला मे रखा हुआ है और जाच चल रही है। अनूठा मस्तिष्क है, उसकी जानकारी बडी है! लेकिन आत्मा? आत्मा वही है, जहा तुम्हारी है, उसमे कोई फर्क नही है।

तो दो बाते खयाल कर ले—एक, ता जानकारी का परिमाणात्मक बिस्तार, और एक आत्मा का गुणात्मक विस्तार।

कबीर के पास कुछ भी नही है जो तुममे ज्यादा है। तुम्हारे पास मकान बडा

कबीर से, तुम्हारे पास दुकान बडी कबीर से, तुम्हारे पास स्मृति बडी कबीर से, तुम्हारे पास अनुभव भी बडा कबीर से—फिर भी कबीर तुमसे बडे है। और तुम जन्मो-जन्मो तक इसी यात्रा मे चलते रहो जिसमे चल रहे हो, तो तुम कबीर के पैर की धूल को भी न पा सकोगे। मामला क्या है?

कबीर किसी और आयाम मे है—आत्मा, अस्तित्व, बीइग।

दो आयाम ध्यान रख ले—नोइग, जानकारी, और बीइग—अस्तित्व, होना।

ये कबीर और बुद्ध और क्राइस्ट, और कृष्ण को हम जो इतना सम्मान देते हैं, जो इतनी श्रद्धा देते है—इनकी जानकारी के कारण नही, इनके अस्तित्व के शुद्धि के कारण। इनके होने का ढग और है। इनके होने का ढग हममे बिलकुल ही भिन्न है। ये हमारे साथ रहते हुए भी हमारे साथ नही, किसी और लोक के निवासी है। इसलिए हम इस तरह के पुरुषो को अवतार कहे है। अवतार का मतलब है कि वे हमारे बीच है, लेकिन हमसे पैदा नही हुए। अवतार का मतलब है हमारे बीच है, लेकिन उनका आना किसी पार के लोक से हुआ है।

जैसे अधेरे कमरे मे, छोटा-सा छिद्र हो छप्पर मे, और सूरज की किरण उतरती है, वो अवतरण है। वो किरण भी वही है। अधेरे से भरे कमरे मे, जहा अधेरा है, वही वो किरण भी है। दोनो के होने का ऊपरी ढग एक-सा है। लेकिन भीतरी ढग बहुत भिन्न है। कहा अधेरा, कहा किरण—बिलकुल विपरीत है! किरण आती है सूर्य के लोक से—वो अवतरण है। अधेरा इस पृथ्वी का है। वो कही मे भी नही आता। वो सदा यही है। किरण आकर उसको तोड देती है, किरण चली जाती है, फिर वो अपनी जगह ले लेता है। वो कही आता-जाता नही। अधेरे मे कोई गति नही है। अधेरे मे कोई विकास नही है। अधेरे मे कोई रूपातरण नही है। बस अधेरा जैसा का तैसा बना रहता है। अधेरे मे ज्यादा मृत, तुम कोई और चीज न पा सकोगे। पत्थर भी थोडा हिलता-डुलता है। पहाड भी सरकते है। महाद्वीप भी यात्रा करते है। पहाड भी बढते है, छोटे-बडे होते है। उनमे भी गति है और जीवन है। अधकार इस जगत मे सबसे भयकर मृत्यु है। इसलिए हम सारी दुनिया मे मृत्यु को अधकार की तरह चित्रित करते है। यमदूत हो, मृत्यु के देवता हो, उनको हम काला चित्रित करते है। उसके पीछे कारण है, क्योकि अधेरे से ज्यादा जीवन-शून्य और कुछ भी नही। वह हिलता-डुलता भी नही, बढता-घटता भी नही, बस वैसे का वैसा ही पडा है, जहा का तहा है। किरणे आती हैं, छेद देती है। किरणे चली जाती है, वो फिर वापिस फिर घना हो जाता है, अपनी जगह।

अवतरण कहते है हम उस घटना को, कि कोई हमारे पडोस मे ही बैठा हो, फिर भी हमारे पास न हो।

कबीर तुम्हारे पास ही बैठे हो तो भी तुम्हारे पास नही। परमात्मा के पास है—तुमसे बहुत दूर। यह उनका परमात्मा के पास होना ही उनकी महत्ता है।

तो गुरु और शिष्य के बीच गुणात्मक भेद है। शिक्षक और विद्यार्थी के बीच परिमाणात्मक भेद है। शिक्षक और विद्यार्थी के बीच किसी तरह की श्रद्धा अपेक्षित नही है। गुरु और शिष्य के बीच बिना श्रद्धा के कुछ भी घटेगा नही, क्योकि गुरु और शिष्य हृदय से जुडे हैं। हृदय यानी प्रेम। और प्रेम का जो परम रूप है उसका नाम है श्रद्धा। प्रेम का जो शुद्धतम रूप है, उसका नाम है श्रद्धा। निकृष्ट रूप है, वो है काम।

तो प्रेम के तीन रूप हैं। एक काम, वो निकृष्ट रूप है, जहा प्रेम नाममात्र को है एक प्रतिशत प्रेम, निन्यानबे प्रतिशत वासना है। फिर एक मध्य का तल है, जहा पचास-पचास प्रतिशत है, जहा प्रेम और वासना बराबर-बराबर है। हमारे जीवन मे अगर हमे इस दूसरे प्रेम का भी पता चल जाए तो बहुत बडी घटना है। फिर एक तीसरी घटना है, जहा वासना एक प्रतिशत रह गई और प्रेम निन्यानबे प्रतिशत—उस अवस्था का नाम श्रद्धा है।

कौन-सी वासना बचती है श्रद्धा मे एक प्रतिशत? मुक्त होने की वासना, बस। निन्यानबे प्रतिशत जहा वासना है, और एक प्रतिशत प्रेम—वहा कौन-सा प्रेम है? बधने का प्रेम, किसी से बधे हुए होने की आकाक्षा। एक प्रतिशत प्रेम बधन का। अकेले होने मे डर है, किसी से बधा रहू, कोई सगी-साथी हो! निन्यानबे प्रतिशत शोषण है, बस वो एक प्रतिशत प्रेम है किसी से बधा रहू! बधन! इसलिए हम अगर विवाह को बधन कहते हैं तो ठीक ही कहते हैं। बस वहा उतना प्रेम है जितनी रस्सी बाधने के लिए जरूरी है, बाकी निन्यानबे प्रतिशत एक-दूसरे का शोषण है।

श्रद्धा मे शोषण बिलकुल खो गया, बस एक प्रतिशत वासना बची है। और वो वासना इतनी ही है, कि उतनी देर तक बधा रहू, जितनी देर तक मुक्ति का मार्ग न मिल जाये। जैसे ही मुक्ति का मार्ग मिला, मुक्ति की घटना घटी, वह बधन भी टूट जाता है। शिष्य उसी क्षण गुरु हो जाता है।

श्रद्धा का अर्थ है अनन्य प्रेम। अब थोडा समझ लेना जरूरी है। जहा वासना होती है, वहा तो कारण भी होता है। कारण की वजह से ही हम प्रेम करते है। एक स्त्री सुन्दर है। उसके व्यक्तित्व से हमारा मेल खाता है, उसकी आखे हमे पसद हैं, उसकी वाणी मधुर है—कारण है। यह प्रेम सदा नही रह सकता। क्योकि कारण कल खो जायेंगे। स्त्री बूढी होगी, वाणी कर्कश हो जायेगी, चेहरा दीन-हीन हो जायेगा, चमडी सिकुड जायेगी, सौदर्य खो जायेगा, तब कैसे प्रेम टिकेगा? क्योकि कारण से था। कारण खो गये इसलिए अक्सर प्रेम शुरू तो होता है, लेकिन टिकता नही। फिर हम ढोते है। फिर हम सिर्फ अभिनय करते हैं। वास्तविक तो कभी का खो गया होता है। लेकिन यह मानने मे भी पीडा होती है कि अब प्रेम नही है। तो हम उसको सम्हालके चलते हैं, एक-दूसरे को धोखा देते रहते है। इसलिए हमारी जिन्दगी मे इतना धोखा है। क्योकि जहा प्रेम भी धोखा होगा, वहा और क्या होगा

जो धोखा न हो ?

श्रद्धा अकारण है। प्रेम मे तो कारण है, क्योकि वासना है—निन्यानबे प्रतिशत। श्रद्धा तो बिलकुल अकारण होगी क्योकि एक प्रतिशत वासना है—वो मुक्त होने की वासना है। तो श्रद्धा कैसे पैदा होगी ? और आकारण का अर्थ है, अतर्क्य होगी। इसलिए तुम श्रद्धा के लिए उत्तर नही दे सकते। अगर किसी की मुझमे श्रद्धा है, तुम उससे पूछो, वो तुम्हे सतुष्ट न कर सकेगा। यह हो सकता है कि तुम्हे उसे सतुष्ट कर दो कि गलत है तुम्हारी श्रद्धा। तुम पच्चीस तर्क देके खडित कर सकते हो उसकी श्रद्धा, लेकिन वो अपनी श्रद्धा के सबध मे एक भी तर्क न दे पायेगा। और अगर वह समझ गया है श्रद्धा का सार, तो वो तर्क देने की कोशिश भी न करेगा। और अगर श्रद्धा का रस चख लिया है उसने, तो वह हसेगा तुम्हारे तर्कों पर। और तुम्हे उसका व्यवहार अतर्क्य मालूम पडेगा। क्योकि तुम पच्चीस तर्क दे रहे हो जो श्रद्धा को खडित कर सकते हैं। लेकिन, वो तुम्हारे कोई नर्क उस पर कोई असर नही करते। तर्क पडते है उस पे और गिर जाते हैं।

श्रद्धा अतर्क्य है। होती है तो होती है, नही होती है तो नही होती है। कोई चेष्टा करके श्रद्धा नही ला सकता। इसलिए तुम कैसे गुरु को चुनोगे ? तुम लाख उपाय करो, तुम श्रद्धा को पैदा कर सकते हो ? इसलिए गुरु को चुनने का एक ही उपाय है, और वह यह है कि गुरु तुम्हे चुन ले, तुम कैसे चुनोगे ? पर तुम गुरु को चुनने मे बाधा डाल सकते हो। इसलिए शिष्य की होने की एक ही कला है, कि वो उपलब्ध रहे। वो चुन नही सकता। कोई कारण नही है चुनने का, कोई तर्क नही है चुनने का। और अगर तर्क से तुम चुनते हो तो जानना वो श्रद्धा नही है, वो बुद्धि का ही खेल है। तुम कहते हो यह आदमी जो कहता है, ठीक कहता है, इसलिए इसको हम अपना गुरु बनाते हैं। तो तुमने गुरु चुना ही नही। तुम शिक्षक की ही तलाश कर रहे हो अभी। तुमने देखा कि इस आदमी का आचरण ठीक है। तुम कौन हो, कैसे तुम आचरण जानोगे कि ठीक क्या है, गलत क्या है ?

काश तुम्हे ठीक और गलत का ही पता होता, तो तुम खुद ही गुरु थे। तुम्हे कोई खोजने की जरूरत न थी। तुम कैसे चुनोगे कि इसका आचरण ठीक है ?

समाज ने जो तुम्हे सिखाया है कि क्या ठीक है, क्या गलत है, क्या नीति है, क्या अनीति है - वही समाज का सिखावन तुम इस पर लगाओगे ? तुम ज्ञान के माध्यम से गुरु को चुन रहे हो, श्रद्धा के माध्यम से नही। तो तुम उसी को गुरु चुन लोगे, जिसको तुम सोचते रहे हो कि गुरु होना चाहिए। अगर तुम जैन घर मे पैदा हुए हो, तो यह आदमी उपवास करता है, एक बार खाना खाता है, रात भोजन नही लेता, पानी नही छूता रात, गरम पानी पीता है—चुन लोगे, गुरु का काम पूरा हो गया ! इतनी सस्ती होती परीक्षा, काश, कि पानी पीने से तुम पता लगा लेते ! तो यह अगर ठडा पानी पी रहा है, तो बात खत्म हो गई !

दिगंबर जैन मुनि स्नान नहीं करते, तो अगर तुम स्नान करते हो तो बात खत्म हो गई।

एक घर में मैं रुका था। मैं दिन मे दो दफे स्नान करता हू। उन्होने कहा, क्या कर रहे है आप? ज्ञानी होके और दो बार स्नान? क्योकि पानी मे तो जीवाणु है, उनकी हत्या होती है। जैन मुनि—दिगम्बर जैन मुनि—स्नान नही करता। बदबू आती है शरीर से। अगर तुम्हारे समाज ने तुम्हे स्वच्छता सिखाई हो, तो तुम दिगम्बर जैन मुनि को गुरु न मान सकोगे कि यह कैसा गुरु! बदबू आती है मुह से, क्योकि वो ठीक से दतुवन नही कर सकता, मजन का उपयोग नही कर सकता, या करे तो चोरी करनी पडती है, छिपाके करना पडता है।

मगर तुम्हारी धारणा से अगर तुम चुनोगे तो तुमने गुरु चुना ही नही, तुम ही गुरु हो। क्योकि धारणा तो तुम्हारी ही तुम लिए चल रहे हो।

श्रद्धा का अर्थ है, मैं अपनी सारी धारणा छोडता हू। श्रद्धा का अर्थ है, अपनी सारी धारणाओ को एक किनारे रखके तुम्हे मैं सीधा देखता हू। मैं सोचूगा नही, देखूगा। मैं विचार न करूगा, तुम्हारी सुगध लूगा। मैं अपनी मान्यताए तुम्हारे पास न लाऊगा, मैं उनका बीच मे पर्दा खडा न करूगा। तुम्हारी आख मे सीधा झाकूगा।

श्रद्धा बुद्धि को एक तरफ रखके उत्पन्न होती है। और जो व्यक्ति भी इसके लिए राजी है, उसके लिए गुरु उपलब्ध हो जायेगा। गुरु सदा मौजूद है, जब तुम तैयार हो, तभी उपलब्ध हो जाता है। तुम्हारी तैयारी की ही कमी है। तब ऐसा व्यक्ति एक गुरु से दूसरे गुरु, तीसरे गुरु के पास जायेगा भी, तो खुले मन से जायेगा। जहा घटना घट जायेगी, वहा रुक जायेगा। यह घटना है जो घटती है, तुम इसे घटा नही सकते। इसलिए मैने कहा, तुम सिर्फ उपलब्ध हो सकते हो। अनेक गुरु है। हर काल मे अनेक लोग ज्ञान को उपलब्ध हो जाते है। तुम उनके पास उपलब्ध अवस्था मे जाओ, बस। कही-न-कही हृदय का मेल बैठ जायेगा। और जब हृदय का मेल बैठ जाता है कोई बिठा नही सकता। जैसे प्रेम घटता है, वैसे ही श्रद्धा भी घटती है। तुम कोई तर्क दे सकते हो कि इस स्त्री से तुम्हारा प्रेम क्यो हो गया है? तुम्हारे सब तर्क झूठे होगे। क्योकि वस्तुत तर्क तुम बाद मे खोजोगे, प्रेम पहले हो जायेगा। तब तुम युक्तिया खोजोगे कि क्यो हो गया।

प्रेम एक घटना है। इसलिए लोग कहते है, प्रेम अधा है। ठीक कहते है। लेकिन बिना प्रेम के आखे बेकार है। आख रखके भी क्या करोगे? अधा प्रेम भी चुनने जैसा है। क्योकि अधे प्रेम के पास भी देखने की एक क्षमता है, जो तुम्हारी आखो के पास नही है। श्रद्धा भी अधी है। यही तो अर्थ है, उसका अतर्क्य होने का। होती है तो होती है, नही होती है तो नही होती। तुम्हारे किए कुछ भी न होगा। तुम सिर्फ उपलब्ध रहो। गुरुओ की सन्निधि मे रहो। सत्सग मे जाओ, उनकी सगत मे बैठो, कही घट जायेगा। और जब घट जाये, तब तुम पाओगे कि तुम्हारे पास

कहने को कुछ भी नही है। तुम कोई तर्क न दे सकोगे। क्योकि तुम्हारे तर्क को खडित करने के पच्चीस उपाय किये जा सकते हैं। अगर कबीर को तुम कहो कि मेरे गुरु हैं, तो जैन कहेगा ये कैसे तुम्हारे गुरु हो सकते हैं, इसकी पत्नी है और बच्चा है—ये ब्रह्मचारी नही! और अभी भी इन्होने पत्नी, बच्चो को नही छोडा है, ये कैसे गुरु हो सकते है! ये अभी भी कपडा बनाते हैं और बेचते हैं! नही, ये गुरु नही हो सकते। तो कबीर के बगल मे भी जैन बसा रहे, तो भी कबीर से कोई सबध न जुडेगा।

सूफी फकीर है! अगर तुम उनसे कहो कि ये महावीर ज्ञान को उपलब्ध हो गये हैं, हमारे गुरु हैं, तो सूफियो को माननेवाले उनको गुरु नही मानेगे। वो कहेगे कि गुरु तो सदा अपने को छिपाता है। ये नग्न होके घूम रहे है, यह तो प्रगट होने का ढग है। गुरु तो अपने को ऐसा छिपा लेता है कि खोजनेवाला बामुश्किल खोज पाता है। गुरु जाहिर नही करता, क्योकि गुरु कोई ससार की घटना नही है। वो सिर्फ उसी के लिए है, जिसको परमात्मा की तलाश है। और जिसको परमात्मा की तलाश है, गुरु कही भी छिपा हो, वो खोज लेगा।

हिन्दुओ ने महावीर का उल्लेख भी नही किया अपने शास्त्रो मे, जैसे यह आदमी हुआ ही नही। क्यो करे इसका उल्लेख? क्योकि यह उन्हे गुरु मालूम ही न पडा। धारणाए । और तब अडचने हो जाती है।

एक भक्त से मैं बात कर रहा था। ज्ञानी है, पडित है। जीसस की बात चल पडी तो उन्होने कहा कि और कुछ भी हो, मैं जीसस को अवतार नही मान सकता, क्योकि अवतार फासियो पे नही मरते। निश्चित ही न तो राम फासी पे मरे है, न बुद्ध फासी पे मरे हैं। तो जीसस फासी पे मरे हैं। और फिर उन्होने कहा कि फिर यह भी बात ध्यान रखनी चाहिए कि आदमी अपने कर्मों का फल भोगता है। कर्म का सिद्धान्त! जरूर जीसस ने कोई पाप-कर्म किये होगे अतीत मे, उन्ही का फल भोग रहे हैं, सूली पे लटके है। हिन्दुस्तान मे जीसस को कोई गुरु मानने को तैयार नही हो सकता, क्योकि सूली पे लटका हो गुरु!

जैन कहते हैं कि महावीर अगर रास्ते पे चलते हो, काटा सीधा पडा हो तो तत्क्षण उलटा हो जाता है। क्योकि महावीर के कर्म इतने शुभ, कि काटा चुभ कैसे सकता है! क्योकि दुख तो अपने ही कर्मों के कारण होता है। तो काटा सीधा पडा हो, महावीर को आते देखके तत्क्षण उलटा हो जाता है, कही चुभ न जाए। तो सूली सोच सकते हो महावीर को सूली पर? असभव! सूली लग ही कैसे सकती है!

लेकिन अगर ईसाई को पूछो, तो ईसाई कहता है कि तुम्हारे महावीर, तुम्हारे बुद्ध, तुम्हारे राम-कृष्ण, कुछ भी नही। जीसस का क्या मुकाबला! जिसने लोगो को मुक्त करने के लिए अपना जीवन दिया, जिसने, सारा जगत पाप से मुक्त हो

सके, इसलिए सूली भोगी! तुम्हारे महावीर, बुद्ध सब स्वार्थी हैं, अपने-अपने ध्यान मे लगे हैं, जगत की उनको कोई चिंता नही। अपनी आत्मा मुक्त हो जाए, इसकी चिंता है। जीसस ने, सब कैसे मुक्त हो सके, इसकी चिंता की। यह अवतारी पुरुष है, यह ईश्वर का बेटा है! बाकी तो सब छोटे-छोटे स्वार्थी हैं।

कैसे तय करोगे, कौन गुरु है? तय करने का कोई उपाय नही, तुम सिर्फ उपलब्ध होना। अगर तुम उपलब्ध रहे, तो तुम अचानक किसी दिन पाओगे किसी व्यक्ति के निकट श्रद्धा का जन्म हुआ। एक फूल खिला तुम्हारे भीतर जो अतर्क्य है, जिसको तुम सिद्ध न कर सकोगे, जिसको तुम सिद्ध करने जाओगे तो हारोगे, जिसको तुम किसी को समझाना चाहोगे तो मुसीबत मे पडोगे। उसका कोई भी खडन कर सकता है।

गुरु श्रद्धा के बिना घटता ही नही, क्योकि श्रद्धा की आख से ही देखा जा सकता है। और गुरु और शिष्य के बीच जो सबध है वो विचार का नही है, वो श्रद्धा का है, वो प्रेम का है। वो अत्यत आत्मीय सबध है। उससे बडा आत्मीय कोई सबध जगत मे नही है। पति-पत्नी का सबध भी आत्मीय नही है। बाप-बेटे का सबध भी आत्मीय नही है। भाई-भाई का सबध भी आत्मीय नही है। फासले हैं, क्योकि सारे सबध शरीर के है। तुम्हारे पिता, तुम्हारे पिता हैं क्यो? क्योकि उनके शरीर से तुम पैदा हुए हो, और क्या सबध है? तुम्हारी मा, तुम्हारी मा है क्यो? क्योकि उस शरीर से तुम पैदा हुए हो। ये सबध सब शारीरिक हैं। इसमे आत्मा का क्या सबध है? भाई से तुम जुडे हो, बहन से तुम जुडे हो, क्योकि एक ही शरीर की तुम सतान हो। लेकिन यह सबध शरीर का है। एक ही सबध है जगत मे जो शरीर का नही है, वो गुरु और शिष्य के बीच का सबध है। उससे कोई सबध शरीर का नही है। उससे सबध आत्मा का है। और जिससे आत्मा का सबध है, उससे ही परमात्मा की उपलब्धि हो सकेगी।

अब हम इस सूत्र को समझे।

यह सूत्र अत्यत महत्त्वपूर्ण है। एक-एक शब्द को जतन करके समझना और एक-एक शब्द को सुरति मे सम्हालके रखना।

'गुरु मानुष करि जानते, ते नर कहिये अध।
महा दुखी ससार मे आगे जम के बध॥'

जो गुरु को मनुष्य की भाति मानते हैं, उन्हे अधा जानना। क्योकि गुरु को तो जब भगवान की भाति जानोगे, तभी जोड बनेगा। अगर गुरु भी मनुष्य है, तो तुम्हारे सबध शारीरिक होगे। आदर भी हो सकता है, लेकिन आदर सकारण होगा, अतर्क्य नही होगा। श्रद्धा नही होगी। श्रद्धा और आदर मे यही फर्क है। आदर का अर्थ है, कारण है। यह आदमी ज्यादा जानता है, आचरणवान है, त्यागी है, ऐसा है वैसा है—कारण है तो आदर है। श्रद्धा अकारण है। इसलिए आदर

तोडा जा सकता है, श्रद्धा तोडी नही जा सकती। क्योकि कल पक्का पता चल जायेगा कि नही, यह उतना आचरणवान नही, तो आदर टूट जाएगा, श्रद्धा नही टूटेगी, क्योकि श्रद्धा कभी आचरण के कारण थी ही नही। तो उसके आचरण के कारण टूटने का क्या सवाल है? कल पता चल जाये, यह आदमी इतना ज्ञानी नही जितना हम सोचते थे, तो भी श्रद्धा नही टूटेगी, आदर टूट जायेगा।

जो गुरु को मनुष्य के भाति जानते हैं, कबीर कहते है, 'ते नर कहिये अध'—वे अधे है, उनके पास आख नही है।

निश्चित ही गुरु भी मनुष्य है, पर मनुष्य ही नही। मनुष्य तो है ही। हमारे जैसा शरीर है, हमारे जैसे भूख लगती है, हमारे जैसे प्यास लगती। धूप आए तो पसीना आता—मनुष्य तो है ही। इन अधो को समझाने के लिए बडी कहानिया गढनी पडी।

तो जैन कहते है कि महावीर को पसीना नही आता। ये अधो को समझाने के लिए! महावीर को पसीना आयेगा ही। प्लास्टिक के बने हो तो बात अलग। पसीना स्वाभाविक है। लेकिन यह कहानी क्यो गढनी पड रही है। यह कहानी गढनी पड रही है, क्योकि अगर पसीना आये तो भक्त कहेगा, फिर मनुष्य ही है।

महावीर पाखाना नही जाते। इससे बडी कब्जियत, महा कब्जियत दुनिया मे कभी हुई ही नही है! लेकिन भक्त को समझाने के लिए महावीर को फसाना पडता है। क्योकि अगर महावीर भी पाखाना जाते हैं, तो फिर हम जैसे ही है। फिर भेद क्या? भेद खडा करने के लिए लेकिन उस भेद से क्या फर्क पडेगा? ज्यादा से ज्यादा आदर पैदा होगा, श्रद्धा नही हो सकती। श्रद्धा तो तभी होगी जब महावीर को पसीना भी निकलता हो, भूख भी लगती हो, महावीर बीमार भी पडते हो, फिर भी तुम उनमे परमात्मा देख पाओ, तभी श्रद्धा पैदा होती है।

शरीर तो घर है। और शरीर तो वैसा ही है, जैसा तुम्हारा है। नही तो महावीर मरे कैसे, पैदा ही कैसे होगे? शरीर तो ठीक तुम्हारे ही जैसा है। लेकिन तुमने अपने को शरीर ही मान रखा है, और महावीर ने अपने को उसके ऊपर जान लिया है। तुम अपने शरीर के साथ जुडे हो, तादात्म्य हो गया है। महावीर अतिक्रमण कर गये है। वो शरीर मे हैं, लेकिन शरीर ही नही हैं। मिट्टी का दीया है, लेकिन ज्योति मिट्टी नही है। तुम्हे अगर दीया ही दिखाई पडा, तो तुम अधे हो, कबीर कहते हैं। ज्योति को देखना!

वो ज्योति, निश्चित ही, उस ज्योति मे कोई पसीना नही आता, उस ज्योति मे कोई दुर्गध भी नही है। इस ज्योति को भूख भी नही लगती, प्यास भी नही लगती, लेकिन उस दीये को तो प्यास भी लगेगी, तेल की भी जरूरत होगी, थकेगा भी, टूटेगा भी, मरेगा भी।

'गुरु मानुष करि जानते, ते नर कहिये अध।'

जो लोग गुरु को भी मनुष्य की भाति देखते हैं, वो अधे हैं। अधे इसलिए हैं कि कोई सबध भी न जुड पाएगा। आखें ऊपर उठाओ!

मन्सूर को सूली लगी। और जब मन्सूर को सूली लगी, तो वो हस रहा था। किसी ने भीड मे से पूछा कि मन्सूर, क्यो हसते हो, क्या प्रसन्नता की बात है? तो उसने कहा कि तुम कम से कम थोडी आखें तो ऊपर उठा के देख रहे हो। सूली लगी थी तो वो ऊपर लटका था, लोगो को आखे ऊपर उठा के देखना पड रहा था। तो मन्सूर ने कहा कि मैं प्रसन्न हो रहा हू, कि चलो तुमने थोडी तो आखें ऊपर उठा के देखी।

मन्सूर बडी प्रतीक की बात बोल रहा है, भीड समझी नही होगी। भीड समझ ही नही सकती। जो उसे सूली लगा रहे, वो उसे क्या खाक समझे होगे! लेकिन मन्सूर ने यह कहा कि अगर मेरी फासी भी लग जाए, और तुम थोडी-सी आख उठा के देख लो तो काफी है। तो फल मिल गया, पर्याप्त है। मेरी फासी का सवाल नही है, तुम्हारी आख थोडी ऊपर उठ जाए।

गुरु को देखना, शरीर मे वो निश्चित है, लेकिन शरीर ही नही है। श्रद्धा से ही देख पाओगे। जब भी तुम किसी को श्रद्धा से देखते हो तो शरीर खो जाता है। जब भी तुम किसी का बडे गहन प्रेम से देखते हो, तो शरीर खो जाता है। शरीर की जगह व्यक्तित्व, आत्मा, अस्तित्व का बोध होना शुरू हो जाता है। जब भी तुम किसी को प्रेम करते हो, तो वहा मनुष्य नही होता, वहा परमात्मा होता है। साधारण जीवन मे भी जब तुम किसी के प्रेम मे पड जाते हो, तो दूसरा व्यक्ति साधारण दिखाई नही पडता, प्रेम की आख तत्क्षण असाधारण को उघाड देती है।

मजनू लैला के पीछे दीवाना है। उसके गाव के राजा ने उसे बुलाया, और कहा कि 'तू पागल है। यह लैला कुरूप है और साधारण है। क्यो फालतू परेशान हो रहा है। तुझ पे दया आती है।' क्योकि वह रोता है, चिल्लाता है, गाव-गाव घूमता है, 'लैला-लैला' की रट लगाये रखता है, वो मत्र है। राजा को भी उस पर दया आ गई, लोग भी उस पर रोने लगे। और राजा ने कहा कि मेरे महल मे मैं सुदर लडकियो को बुलवाता हू, तू सुन्दर-से-सुदर लडकी चुन ले। राजा ने एक दर्जन लडकिया लाकर खडी कर दी, वे सुन्दरतम लडकिया थी। लेकिन राजा ने देखा, उसकी आखो से आसू टपक रहे हैं। वह हर लडकी को गौर से देखता है और कहता है, नही, लैला नही है। फिर वह राजा से बोला, 'क्षमा करे, मेरी और आपकी आख मे फर्क है। आपको लैला साधारण दिखाई पडती है। मुझे उसके सिवाय कोई दिखाई नही पडता, कही कुछ गडबड है। होगी भूल मेरी ही। लेकिन लैला मे मुझे कुछ दिखाई पडता है जो आपको दिखाई नही पडता। और मैं अपनी ही आख से जी सकता हू, आपकी आख से जीने का मेरे पास क्या उपाय है?

जब भी कोई आदमी साधारण प्रेम मे गिरता है, वह प्रेम जहा एक प्रतिशत

प्रेम होता है, और निन्यानवे प्रतिशत वासना होती है, तो भी दूसरे व्यक्ति मे तत्क्षण कुछ अलौकिक की प्रतीति होने लगती है। लेकिन जब श्रद्धा का जन्म होता है, जहा निन्यानवे प्रतिशत प्रेम और एक प्रतिशत वासना रह जाती, वहा तत्क्षण परमात्मा की प्रतीति होती है। इसलिए इस देश मे गुरु को हमने परमात्मा कहा है। उससे भी ऊपर रखा है। ऊपर रखने के भी कारण हैं।

'गुरु मानुष करि जानते, ते नर कहिये अध।
महा दुखी ससार मे, आगे जम के बध ॥'

वे यहा तो दुखी रहेगे ही, क्योकि श्रद्धा के बिना कोई आनद सभव नही है। क्योकि श्रद्धा के बिना आत्मा की प्रतीति सभव नही है। श्रद्धा के बिना परमात्मा की उपस्थिति का बोध नही हो सकता है। और अगर गुरु मे तुम्हे परमात्मा का बोध नही हुआ, तो तुम्हे वृक्षो मे, चट्टानो मे, पहाडो मे कैसे होगा? अगर गुरु मे न हुआ तो मदिर की मूर्ति मे कैसे होगा? अगर जीवत मे न हुआ तो मृत मे कैसे होगा?

तो बडी हैरानी की बात है, तुम मदिर की मूर्ति के सामने, पत्थर की मूर्ति के सामने झुक के खडे हो जाते हो, भगवान, भगवान की रट लगा देते हो, लेकिन गुरु के सामने भगवान कहने मे तुम्हे बडी कठिनाई होती है। क्या तुम सोचते हो कि यह मूर्ति जिसकी है, अगर व्यक्ति जीवित होता, तुम्हे यही अडचन होती या नही होती? यही अडचन होती। महावीर की मूर्ति के सामने जब तुम खडे हो, तब भगवान कहना बहुत आसान है। क्योकि निश्चित ही अब इस सगमरमर की मूर्ति मे पसीना नही आता, भूख भी नही लगती। सगमरमर की मूर्ति उपवासी हो बैठी रहती है। भोजन का सवाल ही नही है। सगमरमर की मूर्ति प्यासी नही होती, रुग्ण नही होती, मरेगी भी नही। हमने पत्थर की मूर्तिया बडे सोच के बनाई हैं—इसी कारण ताकि मनुष्य मे जो-जो दिखाई पडता है, वह वहा दिखाई न पडे।

सगमरमर की मूर्तिया है ।

ऐसा हुआ कि मैं एक गाव मे रहता था, कुछ दिन के लिए। पडोस मे एक सज्जन रहते थे। आसपास लोगो को खयाल था कि वे थोडे झक्की हैं। अवकाश-प्राप्त थे। कभी तर्कशास्त्र के अध्यापक किसी विश्वविद्यालय मे रहे थे। तो वैसे ही तर्कशास्त्री थोडे विक्षिप्त हो जाते हैं, और फिर अवकाश-प्राप्त । पर मैंने कहा, कि कभी जब उनसे मिलना होगा तब देखेंगे।

एक दिन मुझे भी शक हो गया। निकल रहा था उनके दरवाजे के बाहर से, देखा कि एक टीन का फव्वारा लिए फूलो पर पानी डाल रहे है, एक गमले पर। लेकिन पानी उस फव्वारे मे से गिर ही नही रहा, और वे खडे है मूर्तिवत्। मैंने, गौर से देखा तो दिखाई पडा कि फव्वारे मे पेंदी भी नही है! तो मैंने उनसे कहा, 'सुनिये, आप शायद खयाल नही किए, विचार मे खोये होगे। फव्वारे मे पेंदी नही

है। उन्होने कहा, 'बेफिकर रहिए, ये फूल ही कौन सच हैं, प्लास्टिक के हैं।'

लेकिन प्लास्टिक के फूल मे एक खूबी है—न मुरझाता, न मरता, शाश्वत मालूम पडता है। बिलकुल सनातनी है। असली फूल सुबह खिलता है, साझ होते-होते मुरझा जाता है। नकली फूल सुबह भी वैसा, साझ भी वैसा, रात भी वैसा। असली महावीर तो असली फूल की तरह है, सुबह खिलेगे, साझ मुरझा जायेगे। लेकिन तब तुम्हे लगेगा हमारे ही जैसे हैं। क्या भेद? तो तुम्हे मनुष्य का दर्शन ही होगा, पूजा मुश्किल होगी। सगमरमर की मूर्ति न मुरझाती, न जन्मती, न मरती, सनातन है! वहा तुम घुटने टेक के आसानी से खडे हो जाते हो। तुम इतने झूठे हो कि झूठे की ही पूजा कर पाते हो। सच्चे की पूजा करना मुश्किल। तुम इतने मुर्दा हो, कि मरे को ही पूज पाते हो। जीवत से तुम्हारा सबध नही जुडता। गुरु जीवत घटना है। उसकी मूर्ति बनाने से कुछ भी न होगा। मूर्ति तो तुम बनाओगे, लेकिन वो जब मर जायेगा, तब कुछ भी हल नही होगा, कोई राह न मिलेगी उससे।

और ध्यान रखना, मूर्ति के सामने झुकने मे अहकार को कोई चोट नही लगती। वहा कोई है ही नही, तुम्ही खरीद के बाजार से मूर्ति लाये हो। तुम्ही मालिक हो। तुम चाहो तो अभी इस मूर्ति को बाहर करो। यह मूर्ति कुछ भी न कर सकेगी। तुम भोग लगाओ तो भोग लगता है। तुम कहो, भगवान सो जाओ, तो सोना पडता है। तुम दरवाजा बद करो कि पट बद है, तो पट बद हो जाते। तुम मालिक हो! यह भगवान सिर्फ तुम्हारा खिलौना है। इसके सामने तुम्हारे अहकार को चोट नही लगती। लेकिन एक जीवित व्यक्ति के सामने तुम जब झुकते हो, तब अडचन आती है। तुम्हारा अहकार ही तो श्रद्धा मे बाधा है।

ध्यान रखना, तर्क बाधा नही है, अहकार बाधा है। तर्क तो सिर्फ तरकीब है अहकार को छिपाने की, कि तुम कहते हो कि कैसे झुके! जब तक वो आदमी न मिल जाए जो झुकने योग्य है—तब तक कैसे झुके! वो आदमी तुम्हे कभी न मिलेगा। क्योकि तुम्हारा तर्क सदा कुछ खोज लेगा।

मुल्ला नसरुद्दीन बहुत दिन तक अविवाहित रहा। मैंने उससे पूछा कि क्या कारण है? अब काफी समय हुआ। अब तुम खोज ही लो, अन्यथा समय जा रहा है। उसने कहा, 'खोज मे ही तो लगा हू। लेकिन मुझे ऐसी स्त्री चाहिए, जो समग्र रूप मे पूर्ण हो। सैकडो स्त्रिया मिली, लेकिन पूर्ण कोई भी नही। जब तक पूर्ण नही हो, तब तक मैं प्रेम न होने दूगा।'

तो मैंने कहा, 'एक भी स्त्री न मिली तुम्हे जीवन भर की तलाश मे?' उसने कहा, 'नही, एक-दो बार मिली, लेकिन वह भी पूर्ण पति की तलाश मे थी।'

तुम्हे अगर कभी पूर्ण गुरु मिलेगा भी तो ध्यान रखना, वो भी पूर्ण शिष्य की तलाश मे है। वो मिलेगा ही नही। वो तो बचने की तरकीब है।

'गुरु मानुष करि जानते ते नर कहिए अन्ध।'

महा दुखी ससार मे आगे जम के बध ॥'

यहा वे दुखी होगे। दुख खबर है कि तुम गलत हो। सुख खबर है कि तुम सही हो। इसको कसौटी समझो। अगर तुम्हारा जीवन दुखी है तो जानना कि तुम गलत हो, तुम जो भी कर रहे हो वह भ्रात है। बुनियाद मे भूल है। क्योकि सुख के फूल तभी लगते हैं जब तुम बुनियादी रूप से सही हो।

और ध्यान रखना, अगर कोई मनुष्य सुखी हो तो तर्क देके उसे, उसके सुख को नष्ट करने की कोशिश मत करना, क्योकि सुखी होना ही एकमात्र कसौटी है कि वो सही है।

मेरे पास लोग आते है। दो दिन पहले एक मित्र ने कहा कि 'आप लोगो को पागल किये हुए है, मुझे तो नही दिखाई पडता कि कोई परमात्मा कही है, या कि उसे पाया जा सकता है। आप लोगो को पागल किए हुए है।' मैने कहा, 'वो मेरा और लोगो के बीच का मामला है। आप उसमे नही आते। आप स्वस्थ है, प्रसन्न है—खुशी की बात है।' उन्होने कहा, 'वही तो मुसीबत है कि न स्वस्थ हू, न सुखी हू।' तो मैंने कहा कि तुम अपने स्वस्थ और सुखी होने का ही खयाल करो, तो आज नही कल, परमात्मा के करीब पहुच जाओगे। तुम इसकी फिक्र मत करो कि परमात्मा है या नही। क्योकि परमात्मा कोई तर्क की निष्पत्ति नही है। परमात्मा सुख की गहन प्रतीति मे उठा हुआ अहोभाव है। जब तुम सुखी हो, तब तुम मान ही नही सकते कि परमात्मा नही है, अन्यथा सुख कैसे होगा? जब तुम सुखी हो और तुम्हारा हृदय गद्‌गद है, और तुम्हारे रोए-रोए मे गीत है, तब तुम मान ही नही सकते कि यह अस्तित्व चेतना से शून्य हो सकता है! क्योकि तुम इस अस्तित्व मे वही देखोगे, जो तुम्हारे भीतर घटित हो रहा है। तुम दुखी हो तो अस्तित्व नर्क है, परमात्मा-शून्य है। तुम सुखी हो तो अस्तित्व स्वर्ग है। कण-कण परमात्मा से आप्लावित, भरा हुआ! यह सवाल निष्पत्ति का नही है कि तुम सोचो परमात्मा है या नही, विचार करो, दर्शनशास्त्र मे जाओ, शास्त्रो का अध्ययन करो, तर्क जुटाओ—यह सब पागलपन है। तुम सुखी हो—तत्क्षण वो है! तुम दुखी हो—वो खो गया!

तो मैने उनसे कहा कि मेरे पागलो को तुम छोडो। अगर वो सुखी है, तो क्या फर्क पडता है, परमात्मा है या नही। और तुम अगर दुखी हो तो क्या फर्क पडता है कि परमात्मा है या नही। आखिरी निष्पत्ति तो सुख और दुख होगी। आखिरी निर्णय तो यह होगा कि आदमी के जीवन मे आनद का फूल लग सका, या नही लग सका? वही निर्णायक है, तो तुम उसकी तरफ खयाल रखना। और जिस व्यक्ति के पास तुम्हारे जीवन मे आनद का फूल खिलने लगे, वहा तर्क छोडना, वहा बुद्धि को हटा देना, वहा हृदय को खुला करना। वहा श्रद्धा फलित होगी। वहा गुरु का उदय होगा।

क्योकि, गुरु कोई बाह्य घटना नहीं है—तुम्हारी श्रद्धा से देखा गया अनुभव है। जैसे कि तुम आख खोलते हो, सूरज की रोशनी दिखाई पडती, तुम आख बद कर लेते हो, अधेरा हो जाता श्रद्धा खोलते हो, गुरु दिखाई पडता है, श्रद्धा बद करते हो, गुरु खो जाता है।

गुरु तुम्हारी श्रद्धा की आख का अनुभव है। श्रद्धा की आख बुद्धि को हमेशा अधी मालूम पडेगी। और जिन्होने श्रद्धा को पा लिया, उनके लिए बुद्धि की आख से बडा अधापन नही। लेकिन एक बात पक्की है ।

समझो, एक छोटा बच्चा है। वो जो भी कहता है, उसकी बात अनुभव की नही है। एक जवान है, उसकी बात थोडे अनुभव की है। उसने बचपन भी देखा और जवानी भी देखी। एक बूढा आदमी है, उसकी बात और भी अनुभव की है। उसने बचपन भी देखा, जवानी भी देखी, बुढापा भी देखा। जवान और बूढा जब बात करेगे तो बात मे मेल नही पडेगा, क्योकि जवान ने अभी दो ही चीजे देखी है, तीसरी चीज नही देखी। बूढा जो भी जवानी के सबध मे कहेगा, उसका अर्थ सोचने जैसा है, क्योकि उसने जवानी भी देखी, और फिर जवानी का ह्रास भी देखा, और अब जवानी की विपरीत अवस्था भी देखी। और अब वो जीवन के शिखर पे खडा है। इसलिए हम पूरब मे बूढे आदमी को आदर देते है, क्योकि उसने सब देखा है। जवान को हम आदर नही देते, क्योकि अभी उसे देखने को बाकी है।

पश्चिम मे जवान का आदर है। वो भ्रात है। क्योकि जिसने सब देखा, उसकी ही बात का कोई मूल्य हो सकता है। जिस आदमी ने सिर्फ अभी तर्क देखा, सदेह भी देखा, उसकी बात का कोई मूल्य नही है। जिसने तर्क भी देखा, सदेह भी देखा, फिर श्रद्धा भी देखी, उसकी बात का मूल्य है। क्योकि उसने दोनो देखे।

नास्तिक बच्चे जैसा है, आस्तिक बूढे जैसा है। सभी को नास्तिकता से गुजरना पडता है, लेकिन सभी आस्तिक नही हो पाते, क्योकि कई बच्चे, बच्चे ही मर जाते है। आस्तिक ने दोनो पहलू देखे जीवन के। इनकार करके देखा और पाया कि जितना ही इनकार करो, उतने सिकुड जाते हो। जितना कहो—नही-नही, नही—छोटे होते जाते हो। उसने दूसरा अनुभव भी देखा, कि जितना कहो हा, जितना करो स्वीकार, उतने विराट होते जाते हो। कहो 'नही'—आखीर मे तुम्ही बचते हो, सिकुडे हुए, सडे हुए! कहो 'हा'—तुम खो जाते हो, विराट बचता है, परमात्मा बचता है। कहो 'नही'—तुम हो जाओगे अणु की भाति—क्षुद्र! कहो 'हा'—तुम हो जाओगे आत्मा की भाति, आकाश की भाति, विराट!

'महादुखी ससार मे, आगे जम के बध।'

वो यहा तो दुखी होगे ही, और बार-बार उन्हे मरना पडेगा—जम के बध। बार बार यम आयेगा, उन्हे बाधेगा और ले जाएगा। उनके कारण यम को भी बडा श्रम उठाना पडेगा। वो बार-बार जन्मेगे, बार-बार मरेगे, दुख पायेगे और मृत्यु

मे बार-बार गुजरेंगे।

जो व्यक्ति जाग जाता, उसके जन्म और मृत्यु दोनो खो जाते हैं। जो आदमी परमात्मा के साथ एक हो जाता है, फिर न आना है, न जाना है। इसे ही पूरब ने कहा है, आवागमन से मुक्ति, आने-जाने से मुक्ति। उसकी यात्रा समाप्त हो जाती है, मजिल आ गई।

'तीन लोक नौ खड मे, गुरु से बडा न कोय।
करता करै न करि सके, गुरु करे सो होय ॥'

बडा कठिन वचन है। अगाध श्रद्धा हो तो ही समझ मे आ सकता है। आस्तिक भी थोडा डरेगा ये कबीर थोडा सीमा के बाहर जा रहे है! आस्तिक भी कहेगा कि ठीक था कि गुरु पे श्रद्धा हो, लेकिन कबीर अब यह कह रहे है, 'तीन लोक नौ खड मे गुरु ते बडा न कोय।' पर समग्र अस्तित्व मे गुरु से बडा कोई भी नही। इसलिए हम गुरु कहते है। गुरु का अर्थ है, जिससे भारी और कुछ भी नही।

'करता करै न करि सके'—और परमात्मा भी करना चाहे, तो भी न कर पाये। 'गुरु करे सो होय'—और गुरु जो करना चाहे, वो हो जाए। क्या मतलब परमात्मा के ऊपर गुरु को रखने मे? परमात्मा के साथ रखने तक भी हम जा सकते है कि चलो ठीक, हमे पता नही श्रद्धा का, होगा कि गुरु भी परमात्मा है—लेकिन परमात्मा के ऊपर कबीर अतिशयोक्ति करते मालूम पडते है। नही, कबीर यह कह रहे है कि साधन साध्य से बडा है। क्योकि साधन के बिना तुम साध्य तक कभी न पहुच सकोगे। मार्ग मजिल से बडा है, क्योकि मार्ग के बिना तुम मजिल तक कभी न पहुच सकोगे। और जब मार्ग के बिना मजिल मिल ही नही सकती, तो कौन बडा है? जब मार्ग बिलकुल अपरिहार्य है, उसके बिना इच भर गति नही है तो मजिल सिर्फ मार्ग का आखिरी छोर हुआ। जब सीढी के बिना तुम चढ ही न सकोगे छप्पर पर, तो सीढी छप्पर से बडी हो गई।

'करता करै न करि सके, गुरु करे सो होय।'

और परमात्मा भी जो करना चाहे, तो न कर पाये, वो भी गुरु करना चाहे तो कर सकता है। क्यो? उसके कई कारण हैं। समझने की कोशिश करे।

मनुष्य की पहली अवस्था अधकार, अज्ञान, भटका हुआ। परमात्मा की अवस्था परमज्ञान, पहुचा हुआ। गुरु दोनो के बीच—आधा मनुष्य, आधा परमात्मा, परमात्मा और मनुष्य के बीच सेतु। परमात्मा समझ भी नही सकता तुम्हारी तकलीफ। तुम कितना ही रोओ-गाओ, कितना ही चिल्लाओ, परमात्मा के कान तुम्हारी आवाज न सुन सकेंगे, क्योकि वे कान ही उसके पास नही है। वो परम अवस्था है। वहा दुख की कोई बात पहुच नही सकती। वह परम शून्यता है। वहा तुम चिल्लाते रहोगे, आकाश मे गूजेगी बात और खो जायेगी, वहा से कोई उत्तर न आयेगा। वो आखिरी अवस्था है। उससे तुम्हारा कोई सबध नही

जुड सकता। लेकिन गुरु मध्य मे है। वो आधा तुम जैसा है, आधा परमात्मा जैसा है। वहा दोनो मिलते हैं। वो जैसे सपर्क की जगह है, जहां दो सीमाए मिलती हैं। जहां तुम्हारा अत होता है और जहा परमात्मा शुरू होता है—उस सीमा पर थोडी बात हो सकती है। तुम गुरु से कुछ कह सकते हो। वह समझेगा। क्योकि वो भी वही से गुजरा है, जहा से तुम गुजरे हो। उन्ही कष्टो मे, उन्ही चिताओ और दुखो मे वो भी जिया है, जिनमे तुम अब जी रहे हो। जो तुम्हारा वर्तमान है, वो उसका अतीत था। जो तुम्हारा भविष्य है वो भी उसका वर्तमान है। वो वहा खडा है, जहा से परमात्मा और तुम जुडे हो, ठीक मध्य मे। तुम कुछ कहोगे, अगर गुरु ने सुन लिया, तो गुरु के द्वारा परमात्मा ने सुन लिया। तुम कुछ निवेदन करोगे, तुम्हारी भाषा उसकी समझ मे आयेगी, क्योकि तुम्हारी भाषा वह बोलता रहा है। परमात्मा को तुम्हारी भाषा बिलकुल समझ मे नही आ सकती। कौन-सी भाषा समझेगा परमात्मा? कैसे समझेगा?

दूसरे महायुद्ध मे ऐसा हुआ कि एक जर्मन सैनिक और एक अग्रेज सैनिक की बात हो रही थी। दोनो का मिलना हो गया युद्ध के क्षेत्र मे। अग्रेज सैनिक ने कहा कि हमारी जीत सुनिश्चित है, तुम व्यर्थ कोशिश कर रहे हो। उस जर्मन ने पूछा कि सुनिश्चित होने का कारण? तो अग्रेज ने कहा, 'हम रोज प्रार्थना करते हैं। परमात्मा हमारे साथ है।' तो उस जर्मन ने कहा कि प्रार्थना तो हम भी करते है, और परमात्मा हमारे साथ है। अग्रेज हसने लगा। उसने कहा, 'तुम पागल हो। कभी तुमने सुना कि परमात्मा जर्मन भाषा समझता है? परमात्मा अग्रेजी भाषा समझता है।'

इसमे तुम्हे हसी आती है। लेकिन सभी लोगो का यही दावा है। हिंदुस्तान के पडितो से पूछो, वो कहते हैं सस्कृत देव-भाषा है। उसका मतलब क्या होता है? उसका मतलब, परमात्मा इसको समझता है। हिंदी बोल रहे हो बेकार! सस्कृत! वो भी बिलकुल शुद्ध! क्योकि परमात्मा व्याकरण का बडा आग्रही है! इसलिए तो काशी के पडित कबीर की फिक्र नही किए, अट-सट भाषा बोलता है। काशी के पडितो ने कबीर की भाषा को नाम ही दे दिया, सधुक्कडी। आदमी की नही, साधुओ की। जिनका कोई ठिकाना नही, कुछ भी बोल रहे है! कबीर फारसी के शब्द भी उपयोग कर लेते हैं, सस्कृत भी कर लेते हैं, पाली के भी उपयोग कर लेते हैं—सब का घोल-मेल कर देते हैं। परमात्मा भी दिक्कत मे पडता होगा, दस पद्रह व्याख्याकार रखने पडते होगे। यह कबीर क्या बक रहा है, इसका मतलब निकालो!

परमात्मा, तुम्हारी भाषा कोई भी हो, न समझ पायेगा—चाहे सस्कृत, चाहे अग्रेजी, कुछ भी हो। आदमी की भाषा परमात्मा कैसे समझ सकता है? आदमी की भाषा आदमी समझ सकता है। लेकिन आदमी ही अगर समझे तो सहायता क्या करेगा?

गुरु ऐसा आदमी है, जो तुम्हारी भाषा भी समझ सकता है, और एक तरफ से जिसका जीवन और प्राण परमात्मा मे लीन हो गया। एक हाथ तुम्हारे हाथ मे और एक हाथ परमात्मा के हाथ मे। इसलिए तुम जो कहोगे, वो समझेगा। तुम जो कहोगे, वो करेगा। वो चाहेगा कि तुम्हारी माग उचित है, तो कुछ हो सकता है। क्योकि दूसरा हाथ उसका परमात्मा का हाथ है। वो दोनो है।

इसलिए कबीर कहते हैं, वो ठीक कहते हैं, मैं भी सहमत हू। अतिशयोक्ति नही है यह बात, बिलकुल सही है।

'करता करै न कर सके, गुरु करै सो होय।
गुरु समान दाता नहिं, जाचक सिष्य समान।
तीन लोक की सपदा सो गुरु दीन्हा दान॥'

गुरु के जैसा देनेवाला नही है। गुरु का अर्थ ही है जो दिये चला जाए। पर वो जो दे रहा है, बडा सूक्ष्म है। अगर तुम क्षुद्र को मागने गए हो तो वहा से खाली हाथ लौटोगे। अगर तुम विराट को मागने गए हो तो मिलेगा।

'गुरु समान दाता नही!' लेकिन उसका दान तभी सभव हो सकता है, जब शिष्य भिखारी की तरह आये। तुम अगर अकडे हुए आए, तुम अगर ऐसे आए, जैसे कि तुम हकदार हो, जैसे कि तुम्हे मिलना ही चाहिए, तो तुम चूक जाओगे।

'जाचक शिष्य समान!' शिष्य तो ऐसा हो, परम भिखारी! शिष्य तो ऐसा हो जैसे उसका हृदय सिर्फ भिक्षा का पात्र है! परम याचक! तो गुरु से मेल बनता है। क्योकि परम दाता से परम याचक का ही मेल बन सकता है। वो उलीचता हो, और तुम उलटे घडे की भाति हो, तो सब व्यर्थ चला जायेगा।

भिक्षुक का अर्थ है जिसका घडा सीधा है।

ऐसा हुआ, चीन मे एक बहुत बडा ज्ञानी हुआ, लीहत्ज्---लाओत्से की परपरा, शिष्यो मे एक। एक शिष्य उसके पास आया, कुछ पूछा। लीहत्जू ने कहा, 'समय आने पर जवाब देगे, तैयारी चाहिए! पूछते तो हो, लेने की हिम्मत है? दे तो दूगा, दब तो न जाओगे उसमे? पता है क्या मागते हो?' शिष्य थोडा डर गया। वो साल भर चुप ही रहा। लेकिन उसने देखा तो उत्तर तो दिया ही नही इस आदमी ने। साल भर बाद छोडके चला गया। दूसरे गुरु के पास पहुचा। और उसने कहा कि साल भर लीहत्जू के पास था, कुछ मिला नही, इसलिए यहा आया हू। उसने कहा, 'तू अभी यहा से चला जा। क्योकि तेरे पास पात्र ही नही है। जब लीहत्जू न भर सका, मैं गरीब आदमी हू, मै तुझे क्या दूगा? लीहत्जू के पास से खाली हाथ लौट आया, पागल! तो मेरे पास तो कुछ भी नही है। तू जा! तू भाग! नही तो तू लोगो से कहेगा कि मेरे पास साल भर रहा और बेकार आया।'

ऐसी बात सुनके वो फिर लीहत्जू के पास वापिस लौटा। उसने कहा कि बडी हैरानी की बात है। अब मैं क्या करू? एक-दो जगह गया, उन्होने कहा, जब लीहत्जू

के पास गये, जब उस विराट सरोवर के पास से प्यासे लौट आए, तो हम तो छोटे डबरे हैं। हम तुम्हारे काम न पड़ेंगे। तो मैं वापिस आया हू।

तो लीहत्जू ने कहा, 'सुन, मैं अपने गुरु के पास आया। तो तीन साल तो मेरे गुरु ने मेरी तरफ देखा ही नही। पूछने का सवाल ही न उठा। क्योंकि वो देखे ही नही, वो सबकी तरफ देखे, वो मुझे छोड दे! और वो इस तरह छोड दे, जैसा वहा खाली जगह है। इशारा मैं समझ गया कि मुझे खाली जगह की भाति हो जाना चाहिए, इसलिए मुझे नही देखता।'

'अगर तुम होते' लीहत्जू ने कहा 'तो तुम भाग गये होते। तुम्हारे अहकार को चोट लगती कि मैं आया हू, और मुझे देखा नही जा रहा है! तीन साल जब मैं बैठा रहा, और धीरे-धीरे राजी हो गया कि ठीक, जो उसकी मरजी, तो एक दिन उसने मेरी तरफ देखा—आनद की वर्षा हो गई! इतना पुलकित हो गया जैसा मैं कभी भी नही था। क्योंकि तीन साल, चुपचाप बैठे रहना ऐसे जैसे हू ही नही। वो देखे ही नही! औरो मे बात करे, औरो से चीत करे, पूछे-ताछे, मेरी तरफ देखे ही नहीं। और एक-दो दिन की बात की नही, तीन साल का लबा वक्त है! पर पर्याप्त हो गया, मैं भर गया। फिर तो फिक्र ही न रही कि वो देखता है कि नही देखता। तीन साल और बीत गये। पहले उसने मुझे शून्य होने का इशारा किया। और जब उसने आख मेरी तरफ देखी तो मैं समझ गया उसका इशारा क्या, कि अब मुझे देखनेवाला द्रष्टा हो जाना चाहिए। जैसा उसने देखा, ऐसे ही अब मैं अपने को देखू। तीन साल मैं अपने को देखता रहा। तब एक दिन उसने नजर मेरी तरफ की और पहली दफा वो मुस्कराया। धन्य मेरे भाग्य! मैं भर गया। अब मैं समझ गया उसका मतलब—शून्य हो जाओ, साक्षी हो जाओ, आनदित हो जाओ! तब मैं अकारण मुस्कराने लगा, अकारण हसने लगा अकारण उत्सव मनाने लगा, अकारण प्रसन्न होने लगा। लोग समझे पागल हो गया। तीन साल बाद वो मेरे पास आया। उसने मेरे सिर पे हाथ रखा। उसने कहा, तेरी साधना पूरी हो गई। अब मुझमे-तुझमे कुछ भेद न रहा। अब तू जा, दूसरो को जगा! तुझे मिल गया, अब बाट!'

'और एक तू है,' लीहत्जू ने कहा कि 'साल भर यहा बैठा तो जरूर रहा, लेकिन क्षण भर को भी शान्त न हुआ। और तेरे मन मे वही प्रश्न गूजता रहा कि कब उत्तर मिलेगा। जैसे उत्तर ज्यादा महत्वपूर्ण था, और गुरु कम महत्वपूर्ण था!'

तुम्हार प्रश्न तुम्हे बहुत महत्वपूर्ण मालूम पडते हैं—अहकार के कारण। उत्तर चाहिए—वो भी अहकार की माग है। लेकिन जिससे तुम उत्तर पाना चाह रहे हो, जब तक तुम उसे न देखोगे, तब तक कोई उत्तर नही मिल सकता। सत्सग का यही अर्थ है।

गुरु के पास चुप होके बैठ जाना, उसकी जब मर्जी होगी, जब तुम तैयार होओगे

—वो भर देगा। उसके हाथो मे अपने को छोड देना!

'गुरु समान दाता नहिं, जाचक सिष्य समान।
तीन लोक की सपदा, सो गुरु दीन्हा दान।।
गुरु कुम्हार सिष कुभ है, गढ-गढ़ काढै खोट।
अतर हाथ सहार दे, बाहर बाहै चोट।।'

बडा प्यारा वचन है! कुम्हार को देखा कभी! घडे को गढता है। 'गुरु कुम्हार सिष कुभ है'—और शिष्य को तैयार कर रहा है। वो एक कुभ की भाति है। एक घडे को भाति है। वो कुम्हार है। और क्यो तुम्हे घडे की तरह बना रहा है?—ताकि तुम भरे जा सको। घडा तो खालीपन है। घडे की दीवाल घडा नही है। घडा तो खालीपन है। वो जो शून्य भीतर है, वही घडा है। वो तुम्हारे चारो तरफ एक पतली मिट्टी की दीवाल उठा रहा है। और भीतर एक शून्य निर्मित कर रहा है।

'गुरु कुम्हार सिष कुभ है, गढ-गढ काढै खोट।' और वो जो-जो कमी है, और जहा-जहा जरूरत है, जो-जो हटाना है, जो-जो गढना है, उस श्रम मे लगा है।

'अतर हाथ सहार दे ।' कुम्हार को देखने जैसा है। क्योकि वो भीतर से तो सहारा देता है घडे को, भीतर से तो मिट्टी को सहारा देता है, और बाहर से चोट करता है। सारे गुरु की प्रक्रिया यही है। वो भीतर से तुम्हे सहारा देता है, बाहर से तुम्हे चोट देता है। और अगर तुमने बाहर की ही चोट देखी तो तुम भाग खडे होओगे। अगर तुम्हे भीतर का सहारा दिख गया, तो बाहर की चोट बडी प्रीतिकर हो जायेगी। तुम धन्यभागी समझोगे कि बाहर से चोट दी, क्योकि दोनो जरूरी है। भीतर के सहारे से घडे की दीवाल निर्मित होगी, अन्यथा गिर जायेगी। बाहर की चोट से मजबूत होती है, अन्यथा पहली ही प्रक्रिया पानी भरने की—और घडा फूट जायेगा। बाहर से चोट देनी जरूरी है, मजबूती के लिए। सब तरह की चोट देगा। वह जो भी चोटें बाद मे पड सकती हैं, जिनमे घडा टूट जाता, वो सब चोट गुरु देगा। कठिन यही है, क्योकि जैसे ही चोट लगती है, शिष्य भाग खडा होता है। वो सोचता है, चोट लग गई, मेरी तरफ देखा नही, मुझे कहा नही कि आओ, बैठो। मुझे सम्मान न दिया। या कुछ ऐसी बात कही कि मेरा अपमान हो गया। या कुछ इस ढग से उत्तर दिया कि चोट मार दी।

बाहर से चोट जरूरी है, अन्यथा तुम मजबूत न हो सकोगे। और जब वर्षा होगी पूर्ण की, तो तुम फूट जाओगे। भीतर से सहारा ,।

गुरु के दोनो हाथ हैं। वो भीतर से तुम्हे सहारा देगा ताकि तुम अभी ही न टूट जाओ, बाहर से चोट देगा, ताकि तुम कभी भी न टूटो।

'गुरु कुम्हार सिष कुभ है, गढ गढ काढै खोट।
अतर हाथ सहार दे, बाहर बाहै चोट।।
गुरु को सिर पर राखिये, चलिए आज्ञा माहिं।

कहु कबीर ता दास को तीन लोक डर नाहि ॥'

'गुरु को सिर पर राखिए, चलिए आज्ञा माहि।' क्या मतलब? गुरु को सिर पर रखना आसान, आज्ञा मान के चलना कठिन। लेकिन आज्ञा मान के चलना ही सिर पे रखने का अर्थ है। बहुत सुविधापूर्ण है कि गुरु के चरणो मे सिर रख दिया। उससे कुछ फर्क नही पडता। भीतर तो तुम झुकते ही नही, बाहर ही झुक जाते हो। भीतर तो तुम अकडे ही रहते हो।

एक घर मे मैं मेहमान था, और गृहिणी अपने बच्चे को डाट रही थी। वो काफी शोरगुल, उपद्रव मचा रहा था। आखिर उसने कहा, कि अब बहुत हो गया, जाओ, बैठ जाओ उस कुर्सी पर, इसी वक्त। और बच्चे समझ जाते है कि कब सीमा आ गई। तो वो जाके कुर्सी पे बैठ गया। और वहा से मा को घूर के देखता रहा। उसने कहा, 'अच्छा कोई बात नही। बाहर-बाहर बैठे है, भीतर तो हम खडे ही हैं।'

बाहर-बाहर झुकना बहुत आसान है। बाहर-बाहर सम्मान बताना बहुत आसान है। आज्ञा मान के चलना बहुत कठिन है, क्योकि वो भीतर झुकना है।

गुरु जो कहे, आज्ञा मानने का अर्थ है कि उसमे तुम तर्क मत लगाना। क्योकि तुमने तर्क लगाया, सोचा, फिर माना, तो तुम अपनी आज्ञा मान रहे हो, गुरु की नही। तुम्हारी बुद्धि ने कहा, ठीक है, वो तुमने किया। लेकिन अगर बुद्धि तुम्हारी यह भी कहे कि ठीक नही है, तब भी तुम आज्ञा गुरु की ही मानना। तभी तो बुद्धि टूटेगी और गिरेगी। जब तुम बुद्धि की ही सुनते जाओगे, तुम सिर से नीचे न उतर सकोगे। हृदय तक तुम्हारी जडे न पहुच पायेगी।

गुरु बहुत बार ऐसी बात तुम्हे करने को कहेगा, जिसे वो भी जानता है कि वो अतर्क्य है, जिसे वो भी जानता है कि बुद्धि राजी न होगी, जिसे वो भी भलीभाति जानता है कि कोई भी साधारण आदमी कहेगा, क्या पागलपन है!

गुरजिएफ अपने शिष्यो को ऐसी आज्ञाए देता था, जो कि बिलकुल बुद्धिहीन है। एक आदमी आया। उसने कभी शराब नही पी। सच्चरित्र आदमी है, शाकाहारी है। और उसे गुरजियेफ ने कहा कि तू मास खा और शराब पी।

साफ बात है कि यह आदमी पागल है। और यह आदमी चौका होगा। उसने कहा, क्या कह रहे है आप? वो आदमी भाग खडा हुआ। गुरजियेफ के एक शिष्य ने पूछा कि क्या प्रयोजन था? गुरजियेफ ने कहा कि प्रयोजन सीधा और साफ है। यह आदमी मासाहार के विरोध मे है। यह आदमी शराब के विरोध मे है। और मासाहार न करने, और शराब न पीने के कारण इसने भयकर अहकार को जन्म दे दिया है 'मैं पवित्र! मैं नैतिक! मैं धार्मिक! मैं शाकाहारी।' यह अकड तोडनी पडेगी।

शाकाहारी आदमी आए तो गुरजियेफ कहता है, यह मास खा लो! सारी बुद्धि

कहेगी कि भ्रष्ट करने का उपाय है, यह कोई गुरु है? लेकिन कुछ रुक जाते थे और गुरु ने कहा, तो मासाहार कर लेते थे। क्योकि जब गुरु ने कहा तो ठीक। फिर दुबारा नही कहता था उनसे वो कभी। कभी तो ऐसा भी हुआ है कि जैसे ही शिष्य मास को उठाने गया, उसने रोक दिया कि बस, हो गया, बात हो गई, कोई मासाहार का प्रयोजन नही है।

महिलाए आती गुरजियेफ के पास, तो वो कहता कि पहले ये सब जेवरात उतार दो, मुझे दे दो। एक महिला आई—एक बहुत बडी सगीतज्ञ महिला। बहुत धन था, बडे बहुमूल्य जेवरात थे। और जब गुरु के पास गई तो सब जेवर पहन कर गई थी, जैसा कि लोग मदिरो मे जाते है। वहा इतने लोग देखनेवाले होगे! उसको पता भी नही था। और गुरजियेफ ने कहा, 'बात पीछे, यह रूमाल रखा है, इसमे सब तेरे जेवर रख दे।' उस स्त्री ने अपने सब जेवर उतार के रख दिये। गुरजियेफ ने रूमाल बाध के अपने कोट मे डाल लिया। बातचीत हुई। स्त्री चली गई। रात गुरजियेफ ने रूमाल वापिस पहुचा दिया। स्त्री चकित हुई, क्योकि गहने उतने ही नही थे, ज्यादा थे। गुरजियेफ ने कुछ और गहने उसमे डाल दिये थे।

पद्रह दिन बाद एक दूसरी महिला आश्रम मे आई, उसने कहा कि मैंने सुना है कि गुरजियेफ अक्सर गहने माग लेता है, तुमसे भी मागे थे? उसने कहा, मुझसे भी मागे थे। लेकिन रात वापिस पहुचा दिया। उसने कहा, तब कोई भय नही। वो गई। गुरजियेफ ने जैसे ही गहने मागे, सब उसने उतार के रख दिये। और चूकि उसे यह भी पता चल गया था कि ज्यादा भी गुरजियेफ ने भेजे हैं, तो जितने उसके पास थे, सब ले आई थी। गुरजियेफ हडप गया! कभी न भेजे वापिस!

गुरु को तुम धोखा न दे सकोगे। वह असभव है। तुम्हे तोडना ही है उसे। तुम जैसे हो, तुम्हे मिटाना है, ताकि तुम्हे नया बनाया जा सके। तुम्हारे कुभ को फिर मे गढना है। तुम्हारी बुद्धि से नही चलेगा।

श्रद्धा का अर्थ है कि अब मैं नही, अब तू है! श्रद्धा का अर्थ है, अब जो तू कहेगा, वो हम पूरा करेगे। कई बार बडी अद्भुत घटनाए घटी हैं।

मारपा अपने गुरु के पास गया—तिब्बत का एक फकीर। सीधा आदमी था। लेकिन वो इतना सीधा और सरल था कि दूसरे शिष्य शकित हो गये कि जल्दी ही वो गुरु का उत्तराधिकारी हो जायेगा। था भी वो उत्तराधिकारी, हुआ भी। शिष्यो ने अडचन डालनी शुरू की। शिष्यो ने मारपा को एक दिन कहा कि गुरु ने आज्ञा दी है। गुरु को पता ही नही था। गुरु ने आज्ञा दी है कि अगर तुम्हारी श्रद्धा सच है, तो इस पहाड से कूद जाओ। मारपा कूद गया। शिष्य भागे, नीचे पहुचे। बडी भयकर खाई थी। उसमे बचने का कोई उपाय ही नही था। और वो एक वृक्ष के नीचे ध्यान कर रहा था। उन्होने समझा कि सयोग ही होगा। यह हो ही नही सकता, सयोग की बात है।

मकान मे आग लगी थी, उन्होने कहा कि गुरु की आज्ञा है, भीतर प्रवेश कर जाओ। उसने गुरु से जा के कभी नही पूछा कि तुम ये आज्ञाए भेजते हो कि यही लोग करवा रहे हैं! इतनी भी क्या अश्रद्धा! उसकी मरजी! वो आग मे घुस गया। उसके वस्त्र तक न जले।

नदी पार कर रहे थे, शिष्यो ने कहा, 'कूद जाओ। तुम तो पानी पे चल सकते हो, क्योकि कहा है शास्त्रो मे कि जिसकी श्रद्धा अटूट है, वो पानी पे चलता है।' मारपा पानी पे चल गया। तब सयोग मानना मुश्किल हो गया। उन्होने गुरु को जा के कहा कि महाराज! हैरानी की बात है, माफ करे, हम आपके नाम से इसको सताते रहे। लेकिन आपके नाम की महिमा अपार है! यह तो आग मे चला गया—जला नही। पहाड से कूद गया—मरा नही। पानी पे चल गया!

गुरु को अकड हुई। गुरु कोई ज्ञान को उपलब्ध व्यक्ति नही था। सच्चरित्र था, आचरणवान था। सब तरह के योग-साधन किये थे। लेकिन अभी पहुचा नही था। उसने कहा, जब मेरे नाम से मारपा चल गया, तो मैं खुद । तो उसने अपने शिष्यो से कहा, इसमे क्या बात है, मारपा की क्या खूबी? मेरे नाम का रहस्य !

एक दिन सब नाव पर चल रहे थे, तो शिष्यो ने कहा कि आज आप पानी पर चले। उसने कहा, इसमे क्या कठिनाई है! वो चला और डूब गया। बामुश्किल उसको निकाला जा सका।

मारपा गुरु के नाम के कारण नही चल रहा था, मारपा श्रद्धा के कारण चल रहा था।

अगर तुम ठीक समझो तो श्रद्धा ही गुरु है। गुरु तो बहाना है, खूटी है। उस बहाने तुम्हारे भीतर श्रद्धा जग जाए। तो कभी-कभी ऐसा भी अनहोना हुआ है कि गुरु तो गुरु था ही नही और शिष्य पहुच गया। और ऐसा तो रोज होता है कि गुरु गुरु था और शिष्य नही पहुचे।

श्रद्धा ही सूत्र है।

आज्ञा का अर्थ है, वो जो कहे, तुम्हारी बुद्धि को सगत लगे, असगत लगे, तुम अपना हिसाब मत लगाना। तुम बुद्धि को कहना कि तू किनारे हट, गुरु की सुनूगा। और जैसे ही गुरु को सुनने की क्षमता बढेगी, वैसे ही वैसे गुरु के सामने झुकने की क्षमता बढेगी। गुरु सिर पर हो जायेगा। जिस दिन तुम्हारी बुद्धि सिर से उतर जायेगी, गुरु तुम्हारी बुद्धि हो जायेगा। वो तुम्हारा विवेक बन जायेगा। यही अर्थ है—गुरु को सिर पर राखिए, चलिए आज्ञा माहि। कहे कबीर ता दास को तीन लोक डर नाहिं॥

'गुरु गोविन्द दोउ खडे काको लागू पाय।
बलिहारी गुरु आपने जिन गोविन्द दियो बताय॥'

इस सूत्र के दो अर्थ हो सकते हैं—दोनो प्रीतिकर है।

'गुरु गोविन्द दोउ खडे काको लागू पाय।' फिर ऐसी घडी आई---कबीर अपना अनुभव कहते है, कि गुरु गोविन्द दोनो सामने खडे थे। ऐसी घडी आएगी ही एक दिन। गुरु तो द्वार है आज नही कल, गोविन्द प्रगट होगा। गुरु तो मार्ग है आज नही कल, मजिल आयेगी। और पहली घडी मे तो ऐसा होगा कि गुरु भी मौजूद होगा और गोविन्द भी मौजूद होगे। तब ऐसी घडी मे किसके पैर छुऊ।

तो कबीर कहते है बडी दुविधा मे खडा हो गया। गुरु गोविन्द दोउ खडे, काको लागू पाय? पहले किसके पैर छुऊ?

दूसरे वचन के दो अर्थ हो सकते हैं। पहला अर्थ—'बलिहारी गुरु आपने जिन गोविन्द दियो बताय।' तो कबीर कहते है कि बलिहारी गुरु तुम्हारी कि जब मैं दुविधा मे था, तुमने तत्क्षण इशारा कर दिया कि गोविद के पैर छुओ। 'बलिहारी गुरु आपने जिन गोविन्द दियो बताय।' जैसे ही मै दुविधा मे था आपने इशारा कर दिया कि गोविन्द के पैर छुओ, क्योकि मै तो यहा तक था। मैं तो राह पर लगे हुए मील के पत्थर की तरह था, जिसका इशारा था आ गया, मजिल आ गई, अब मेरा कोई काम नही। अब तुम गुरु को छोडो, गोविन्द के पैर छू लो।

एक तो यह अर्थ है। साधारणत यही अर्थ किया जाता है। दूसरा अर्थ तो और भी कीमती है। और मेरी प्रतीति दूसरे अर्थ के साथ है, क्योकि पहले जो वचन हैं, वो दूसरे अर्थ के साथ सही होगे।

दूसरा अर्थ है—'गुरु गोविन्द दोनो खडे काको लागू पाय। बलिहारी गुरु आपन जिन गोविन्द दियो बताय॥' दुविधा मे हू, किसके पैर लगू। गुरु गोविन्द दोउ खडे हैं। फिर मैंने गोविन्द को छोडा, गुरु के ही पैर छुए, क्योकि उसकी ही बलिहारी है, उसी ने गोविन्द को बताया है। यही अर्थ ठीक होगा। क्योकि पूरे आगे के सूत्र जो कह रहे है, वो कह रहे हैं

'तीन लोक नौ खड मे गुरु ते बडा न कोय।
करता करे न करि सके, गुरु करे सो होय॥'

परमात्मा से ऊपर कबीर जब गुरु को रख रहे है, तो दूसरा ही अर्थ सगत है। और होना ही वही चाहिए, क्योकि इस आखिरी पडाव पर, जहा से गुरु से विदा होगे, जहा से गोविंद की यात्रा शुरू होगी, यही उचित है कि गुरु के ही पैर छुए जाए। उस आखिरी पडाव पर, वो विदाई का क्षण है। उसके बाद गुरु नही होगा, गोविंद ही होगे। उस दिन बीच के सेतु हट जायेगे। उस दिन बीच मे जो अब तक हाथ पकड के लाये थे, वो विदा हो जायेगा। उस विदाई के क्षण मे यही उचित है कि कबीर ने कहा हो कि मैंने फिर गुरु के ही पैर छुए, क्योकि बलिहारी उसी की है, उसके बिना यहा तक न आ सकता, उसके कारण ही यहा तक आया हू। और यही बात आगे के सूत्र से भी सघन होती है।

'हरि रूठे गुरु ठौर है, गुरु रूठे नही ठौर।'

शिष्य की समग्र साधना गुरु की छाया बन जाने की है। वो समग्र समर्पण है। वो अपने-आप को बिलकुल खो देना है। तभी तो गुरु तुम्हे तैयार कर पायेगा—उस परम घटना के लिए जहा तुम्हारा आपा परमात्मा मे खोयेगा। गुरु तैयार कैसे करेगा? अगर ठीक से समझो तो गुरु उस परम घटना की प्राथमिक तैयारी है—उस परम अनुभव की, जहा आत्मा परमात्मा मे खो जाती है। गुरु मे तुम खो के तैयारी करते हो। वो पूर्व-प्रशिक्षण है। जब पूरा हो जाएगा, उसी क्षण द्वार खुल जाता, उसी क्षण गुरु गोविंद दोनो खडे हो जाते हैं। वहा से गुरु विदा होगा और गोविंद की यात्रा शुरू होगी।

तो ऐसा समझो कि तीन यात्रा-पथ हैं। एक है, जो तुमने अपनी बुद्धि से चुना है, जो अहकार का पथ है। दूसरा है, जो परम ब्रह्म का पथ है। दोनो समातर हैं, कही मिलते नही। तीसरी एक बीच की गली है, जो इन समातर पथो को जोडती है, वो गुरु है। वो तुम्हारे अहकार को विसर्जित करता है, अहकार से दूर ले जाता है, निरहकार ब्रह्म के पास पहुचाता है।

जितने तुम पिघलते हो उतना ही परमात्मा सघन होता है। जितने तुम मिटते हो उतना ही वो प्रगट होता है।

लोग पूछते है, परमात्मा कहा है? उन्हे पूछना चाहिए कि मैं इतना ठोस क्यो हू? परमात्मा को जगह कहा है आने की? तुम्हारा घर बुरी तरह भरा है—तुमसे ही भरा है। गुरु खाली करेगा। और इसके पहले कि परमात्मा उतर सके—परमात्मा तो बहुत अज्ञात है, उससे तुम डर जाओगे, आज अगर आ भी जाये तुम्हारे द्वार पर, तो तुम द्वार ही न खोलोगे। तुम ऐसे भागोगे वहा से अपना घर छोड के कि दुबारा लौट के न आओगे। क्योकि परमात्मा तो विराट है। वो विराट खाई तो तुम्हे बहुत घबडा देगी, तुम चक्कर खा जाओगे। गुरु तुम्हे धीरे-धीरे राजी करेगा।

ऐसा समझो, कि सागर मे नदी गिरती है, तुम्हे अपनी नाव को सागर मे ले जाना है, तो तुम नदी मे अपनी नाव को छोडते हो, नदी मे नाव को चलाने का अभ्यास करते हो। नदी मे अभ्यास हो सकता है—खतरा कम है। सागर मे अभ्यास नही हो सकता, खतरा बहुत ज्यादा है। तैरना सीखना हो तो नदी मे सीखना उचित है, जहा किनारे हैं, जहा किनारो पर लोग हैं, तुम्हारी आवाज पहुच सकती है, जहा कोई बचा सकता है, जहा सुविधा हो सकती है।

गुरु नदी की धार है। वो गगा है। उसमे तुम तैरना सीख लो। फिर, धीरे-धीरे गगा तुम्हे सागर मे ले जाएगी। फिर सब किनारे छूट जायेगे। फिर वहा कोई सहारा न होगा। वहा तुम बिलकुल अकेले हो जाओगे। उस परम एकात के पहले, गुरु का सग-साथ जरूरी है। गुरु के पहले तुम भीड मे हो। भीड यानी अनेक, अनत। गुरु यानी दो, द्वैत। ब्रह्म यानी एक, अद्वैत। इसके पहले कि तुम भीड से

हटो, तुम्हे दो के लिए राजी होना पडेगा। तब तुम दो से भी हट सकोगे और एक के लिए राजी हो जाओगे।

ठीक कहते हैं कबीर

'गुरु गोविंद दोउ खडे काको लागू पाय।
बलिहारी गुरु आपने जिन गोविद दियो बताय।
हरि रूठे गुरु ठौर है, गुरु रूठे नही ठौर।'

आज इतना ही।

दिनाक १५ नवम्बर, १९७४,
श्री रजनीश आश्रम, पूना

झीनी झीनी बिनी चदरिया
काहे के ताना काहे के भरनी, कौन तार से बिनी चदरिया ।
इंगला पिंगला ताना भरनी, सुषमन तार से बिनी चदरिया ।।
आठ कंवल दस चरखा डोले, पाच तत्तगुन तिनी चदरिया ।
साईं को सीयत मास दस लागे, ठोक ठोक के बिनी चदरिया ।।
सोई चादर सुर नर मुनि ओढी, ओढी के मैली किनी चदरिया ।
दास कबीर जतन से ओढी, ज्यों की त्यों धरि दीनी चदरिया ।।

५

झीनी झीनी बिनी चदरिया

कबीर तो जुलाहे हैं, उनके प्रतीक भी जुलाहे के प्रतीक है, लेकिन जुलाहे के प्रतीको मे भी उन्होने वह सब कह दिया, जो उपनिषद नही कह पाते हैं, वेद जिसे कहने मे थक जाते हैं, बुद्ध और महावीर भी जिसे अनिर्वचनीय कह कर छोड देते हैं।

जीवन के जितने निकट हो प्रतीक, उतना ही सत्य को प्रगट करने मे सक्षम होता है, जीवन से जितने दूर हो जाए, उतनी ही सत्य की अभिव्यक्ति की क्षमता कम हो जाती है। कबीर ठीक जीवन के निकट जी रहे है—साधारण जीवन के!

और ध्यान रहे, दुनिया मे कोई असाधारण जीवन नही है। साधारण मे ही असाधारण छिपा है। और जो असाधारण होने की कोशिश करेगा, वह साधारण से तो बच ही जायेगा, उसमे छिपे असाधारण से भी बच जायेगा।

अहकार असाधारण की खोज करता है। अहकार बडे काम करना चाहता है, लेकिन जीवन तो छोटे-छोटे कामो से बना है। उठना है, बैठना है, कपडा बुनना है, बेचना है, खाना है, पीना है, सोना है, जागना है—जीवन तो इन छोटी-छोटी चीजो से बना है। और जो भी असाधारण होने की कोशिश करेगा, वह जीवन से वचित रह जायेगा। जो इन साधारण कृत्यो मे जागने लगेगा, जो इन्ही कृत्यो को जाग कर करने लगेगा, वह असाधरण को उपलब्ध हो जायेगा। 'जतन' का यही अर्थ है।

'जतन' का अर्थ है साधारण को भी होशपूर्वक करना, अति साधारण से भी चेतना को जोड देना। क्षुद्र के साथ जैसे ही होश जुडता है, क्षुद्र विराट हो जाता है। और विराट के साथ भी बेहोशी हो, तो विराट भी क्षुद्र हो जाता है। तुम जाओ मदिर मे, तुम्हे परमात्मा न मिलेगा, क्योकि तुम बेहोश ही जाओगे वहा। तुम्हे जो दिखाई पडेगा, वह तुम्हारी ही वासनाओ का प्रतिबिंब होगा।

काश, होश होता तो मदिर तक जाने की जरूरत क्या थी! होश होता तो तुम जहा हो, वही पाते कि उसी का मदिर है, उसके अतिरिक्त कुछ और है भी नही। काशी और काबा, अज्ञानी ही यात्रा करेगे। ज्ञानी तो जहा है, वही उसका काशी

है, वही उसका काबा है। क्योंकि चारो तरफ उसी एक का विस्तार है। वह ब्रह्म कही कम और कही ज्यादा तो नही, कही सघन और कही विरल तो नही, वह ब्रह्म कही उपलब्ध और कही अनुपलब्ध तो नही—सभी जगह है, एक-सा बटा है।

बुद्ध ने कहा है, सागर को चखो कही से, सभी तरफ से नमकीन है। चाहे इस किनारे चाहे उस किनारे, चाहे मध्य मे चाहे गहराई मे, चाहे लहर मे—चखो सागर को, सब जगह उसका स्वाद एक है। चखो ब्रह्म को सब जगह, उसका स्वाद भी एक है।

मंदिर-मस्जिद अज्ञानी का निर्माण हैं। इसलिए फिर वह अपने ही ढग से निर्मित करता है। वे उसकी ही प्रतिछवियां है। तुम्हारे परमात्मा तुमसे बडे नही हो सकते, जब तक कि तुम्ही परमात्मा जितने बडे न हो जाओ। लेकिन यही जटिलता है। अगर तुम बडे होना चाहोगे, तो छोटे ही रह जाओगे, क्योंकि बडे होने की माग, छोटे मन की माग है। अगर तुम छोटे मे राजी हो जाओगे, अचानक पाओगे कि छोटा तो कुछ है ही नही, सभी बडा है।

क्षुद्र का कोई अस्तित्व नही है। क्षुद्र तुम्हारी आख के द्वारा दी गई सीमा है।

जैसे कि मैं खिडकी खोलू और आकाश को देखू, तो खिडकी का चौखटा ही मालूम होता है, आकाश है। खिडकी के चौखटे से जितना आकाश दिखाई पडता है, लगता है वही आकाश है। और अगर मैं कभी बाहर गया ही होऊ, मैंने कभी मुक्त आकश देखा ही हो, और सदा खिडकी से ही झाकता रहा हू, तो स्वभावत मैं मानूगा कि यही खिडकी के चौखटे मे जितना फसा आकाश है, यही आकाश है। यह आकाश नही है। खिडकी का चौखटा यह रूप दे रहा है। यह सीमा खिडकी के कारण बन रही है, आकाश की कोई सीमा नही है। तुम्हारी आखें खिडकियो से ज्यादा नही। तुम्हारे कान भी खिडकियो से ज्यादा नही। तुम्हारे हाथ भी खिडकियो से ज्यादा नही।

इद्रिया छोटी खिडकिया है, जिनसे हमने ब्रह्म को देखा है, इसलिए ब्रह्म छोटा लगता है। अन्यथा इद्रियो को हटा कर देखो, क्षुद्र तत्क्षण विराट हो जाता है, सीमाए गिर जाती हैं। सीमाए थी ही नही, हमारे द्वारा दी गई थी। सीमाए कल्पित है। किसी काम को छोटा मत कहना।

कबीर का प्राथमिक सदेश यही है कि किसी काम को छोटा मत कहना। क्योंकि उस छोटे मे विराट छिपा है। तुमने छोटा कहा कि तुम पीठ फेर लोगे। और जहा से तुम पीठ फेरोगे, वही है। तो हमेशा तुम्हारी पीठ उस पर पडेगी।

और बडे को तुम खोजने जाओगे कहा? क्या है बडा? राष्ट्र की सेवा बडी है? मनुष्यता की सेवा बडी है? कुर्बान हो जाना बडा है? शहीद हो जाना बडा है?

ध्यान रहे, एक क्षण मे शहीद होने की क्षमता किसी मे भी है। क्षण भर मे आत्महत्या कर लेने मे कौन असमर्थ है! शहीदगी लगती है बहुत कठिन, बहुत कठिन

नही है, क्योकि एक ही क्षण मे तो निपटारा हो जाता है। सूली क्षण मे लग जाती हैं, गोली क्षण मे प्राणो मे छिद जाती है। असली शहीद तो वे ही हैं, जो जीवन के लबे विस्तार मे होश से जीते हैं, क्योकि उनको सूली पूरे जीवन कधे पे ढोनी पडती है।

असली शहीद तो वे ही हैं जो क्षुद्र मे विराट को खोजते है। और उनकी खोज कभी अखबारो मे न छपेगी, और कोई उन्हे फूल चढाने न आयेगा, कोई उनको गले मे मालाए न पहनाएगा। वे चुपचाप अपने अकेले मे भोजन करते वक्त जानेगे, कपडा बुनते वक्त जानेगे, स्नान करते वक्त जानेगे। कौन उनका सम्मान करेगा? लोग कहेगे, 'पागल हो गये हो? सम्मान करते है हम शहीदो का, जो सूलियो पे लटकते हैं। तुम भोजन करने मे जाग गये, तुम जानो! इससे हमे क्या प्रयोजन है, क्षुद्र की बात ही मत उठाओ, लोग कहेगे। लेकिन क्षुद्र मे ही विराट छिपा है, जैसे बीज मे वृक्ष छिपा है। एक छोटे-से बीज को तुम बो दो, और विराट वृक्ष पैदा होता है। वह छोटा-सा बीज 'जतन' का बीज है, ध्यान का बीज है।

जो भी तुम करो, ध्यानपूर्वक करना।

लेकिन हमारी मनोदशा बडी अजीब है। हम जब एक काम से ऊब जाते है, तो हम विपरीत काम को तत्क्षण चुन लेते हैं। ससार से थक जाओगे, तो धार्मिक हो जाओगे। लेकिन जैसे बेहोश ससार मे थे, वैसे ही बेहोश धार्मिक हो के रहोगे। कृत्य बदल जायेगा, तुम न बदलोगे। पहले तुम दुकान पे बैठे थे और रुपया, रुपया रुपया, रुपया का मत्र चलाते थे, अब तुम मदिर मे बैठ जाओगे, राम, राम, राम का मत्र चलाओगे। तुम न बदलोगे। रुपया कहते वक्त भी तुम बेहोश थे, राम कहते वक्त भी तुम बेहोश रहोगे। रुपया भी तुम्हारी नीद था, राम भी तुम्हारी नीद ही होगा। तब तुम दुकान पर बैठे थे, अब भी तुम दुकान पर बैठे हो। तुमने ही तो सारे मदिरो को दुकानो मे बदल दिया है। तुम जहा जाओगे, स्वभावत तुम, तुम ही रहोगे। तुममे फर्क कैसे पड जायेगा?

स्थिति बदलने से कभी कोई बदला नही है--मनोदशा बदलने से कोई बदलता है। परिस्थिति नही, मन स्थिति को बदलना है। वही रूपातरण है। इसलिए कबीर जुलाहे बने रहे, लेकिन जाग गये। इस सूत्र मे उन्होने बडी कीमती बाते कही हैं। एक-एक शब्द को समझने की कोशिश करे।

'झीनी-झीनी बिनी चदरिया।'

जुलाहे को अगर कभी बुनते देखा हो, या कभी तुमने अगर चरखा काता हो तो एक बात खयाल में आयेगी जितना बारीक तुम्हे धागा निकालना हो चरखे से या तकली से, उतना ही होश रखना पडेगा। जितना मोटा निकालना हो उतनी बेहोशी चल जायेगी। अगर बहुत महीन सूत निकालना हो, तो उतने ही जतन से, उतने ही होश से निकालना पडेगा। क्योकि जरा-सी बेहोशी, और धागा टूट जायेगा।

कबीर कह रहे हैं, 'झीनी-झीनी बिनी चदरिया' इतनी झीनी चादर बीनी—उसका अर्थ ही है कि बडे जतन से बीनी। उसका अर्थ है, होश से बीनी। उसका अर्थ ही है, कि जरा भी हाथ न कपा, जरा भी चेतना न कपी—अकप हो कर बीनी।

जितना झीना, बारीक काम करना हो उतना होश चाहिए पडेगा। मोटे काम मे बेहोशी चल जाये, महीन काम मे बेहोशी नही चल सकती। इसलिए तो हम महीनतम काम को कला कहते हैं, क्योकि उसके करते समय चेतना को बडा सजग होना चाहिए। जरा-सी चूक और सब विकृत हो जायेगा।

तो पहली बात जीवन को जितना तुम जाग के जियोगे, उतने ही बारीक और सूक्ष्म जीवन का तुम्हे अनुभव होगा। और जितने सूक्ष्म का तुम अनुभव करोगे, उतना ही तुम ज्यादा जानोगे। वे दोनो सयुक्त हैं, और दोनो एक-दूसरे मे सहयोगी हैं।

रास्ते पे तुम चल रहे हो, शराबी भी चलता है, उसी रास्ते पर, लेकिन उसके पैर देखो, एक भी पैर जगह पे नही पडता। ऐसे तो वह भी घर पहुच ही जायेगा। तुम भी चलते हो। फिर तुम एक बुद्ध को भी चलते देखो। तब तुम पाओगे कि तुम मे और शराबी मे जितना फर्क है उतना ही तुम मे और बुद्ध मे भी है। ऐसे तो शराबी भी घर पहुच जाता है, तुम भी घर पहुच जाते हो, बुद्ध भी घर पहुच जायेगे, लेकिन तुम्हारे चलने का गुण अलग-अलग है। शराबी बिलकुल बेहोश चल रहा है, बुद्ध बिलकुल होश मे चल रहे हैं, तुम कही बीच मे हो। कभी थोडी-सी झलक भी होती है होश की, फिर अधेरा आ जाता है। कभी तुम जागे होते हो, कभी तुम सोये होते हो। कभी तुम्हारी आख खुली होती है, कभी बद होती है।

तुम अगर गौर से देखोगे तो तुम पाओगे कि जैसे-जैसे होश बढेगा, तुम्हारे चलने मे एक सुगढता, एक कुशलता जिसको गीता मे कृष्ण ने कहा है—योगी कर्म मे कुशल हो जाता है, वह कुशलता। क्योकि योगी को बडी झीनी चादर बीननी पडती है। उसे एक-एक पैर सम्हाल के रखना पडता है, एक-एक श्वास सम्हाल के लेनी पडती है। जीवन बडा नाजुक है और बडा बहुमूल्य है। वह शराबी की तरह नही चलता। कबीर ने कहा है, वह ऐसा चलता है जैसे गर्भवती स्त्री चलती है—सम्हाल कर जतन से। भीतर एक नया जीवन है! और गर्भवती के भीतर जो जीवन है, वह तो शारीरिक ही है, साधक के भीतर, साधु के भीतर जो जीवन का अकुर फल रहा है, वह तो परमात्मा का अकुर है।

तुम ऐसा सोचो कि परमात्मा तुमसे पैदा होने को है, तो तुम कितने सम्हल के न चलोगे! जरा-सी चूक, और गर्भपात हो सकता है। जरा-सी भूल, पैर का मुड जाना और गिर जाना, और सदियो का श्रम व्यर्थ हो सकता है। जैसे-जैसे मजिल करीब आती है, वैसे-वैसे ज्यादा होश की जरूरत पडती है। क्योकि मजिल से दूर थे, तब भटकने का कोई डर ही न था, क्योकि भटकते तो और क्या, भटके ही हुए थे। मजिल करीब आती है तो और होश की जरूरत पडती है, क्योकि अब भटक

सकते हो।

सूफी कहते हैं, सासारिको को क्या डर, डर तो हमे है! सासारिक के पास खोने को क्या है, खोने को तो हमारे पास है! और सासारिक चाहे तो कैसा भी चले, मिटने को कुछ है ही नही, लेकिन हम कैसे ही नही चल सकते, क्योकि बडी सपदा है, जो मिलते-मिलते खो जा सकती है, जो हाथ मे आते-आते वचित हो जा सकती है, जिस पर पहुचने-पहुचने को थे और मजिल खो जा सकती है। और जितनी ऊचाई पर हो तुम, गिरोगे तो उतनी ही निचाई मे उतर जाओगे।

इसलिए जतन शब्द को बहुत खयाल रखना।

जो आदमी खाई मे ही सरक रहा है, उसको क्या डर! लेकिन जो गौरीशकर के शिखर पे खडा है, डर उसको है। लेकिन यह डर भय नही है। यह डर एक सावचेतता है। यह डर इस बात का है कि मेरे पास कुछ है जो खो जा सकता है।

ऐसा हुआ कि जपान मे एक फकीर हुआ बोकोजू। वह टोकियो मे राजधानी मे ही था। पुरानी कथा है, कोई तीन सौ वर्ष पहले की। सम्राट रात को, जैसा पुराने सम्राट निकला करते थे, घोडे पर निकलता था, छिपे हुए वेश मे, नगर को देखने कहा क्या हो रहा है। सारा नगर सोया रहता, यह एक फकीर वृक्ष के नीचे जागा रहता। अक्सर तो खडा रहता। बैठता भी तो आख खुली रखता। आखिर सम्राट की उत्सुकता बढी। पूरी रात, किसी भी समय कभी भी जाता, मगर इसको जागा हुआ पाता। कभी टहलता, कभी बैठता, कभी खडा होता, लेकिन जागा होता। सोया, सम्राट उसे कभी न पा सका। महीने बीत गये, उत्सुकता घनी होने लगी। आखिर एक दिन उससे न रहा गया, वह रुका और कहा कि फकीर, एक उत्सुकता है। अनाधिकार है। कोई हक मुझे पूछने का नही, लेकिन उत्सुकता घनी हो गई है और अब बिना पूछे नही रह सकता। किसलिए जागते रहते हो रात भर?

फकीर ने कहा कि सपदा है, उसकी सुरक्षा के लिए। सम्राट और हैरान हुआ। उसने कहा, 'सपदा दिखाई नही पडती। ये टूटे-फूटे ठीकरे पडे है। तुम्हारा भिक्षा-पात्र, ये तुम्हारे चीथडे—इनको तुम सपदा कहते हो, दिमाग ठीक है? और इनको चुरा कौन ले जायेगा?'

उस फकीर ने कहा, 'जिस सपदा की बात मैं कर रहा हू, वह तुम्हारी समझ मे न आ सकेगी। तुम्हे ठीकरे ही दिखाई पड सकते है, और ये गन्दे वस्त्र। और वस्त्र गन्दे हो कि सुन्दर, क्या फर्क पडता है—वस्त्र ही है, और ठीकरे टूटे-फूटे हो कि स्वर्ण के पात्र हो, ठीकरे ही है। इनकी बात ही कौन कर रहा है? एक और सपदा है, जिसकी रक्षा करनी है।'

पर सम्राट ने कहा, 'सपदा मेरे पास भी कुछ कम नही, मैं भी सोता हू।'

उस फकीर ने कहा, 'तुम्हारे पास जो सपदा है, तुम मजे से सो सकते हो। वह खो भी जाए तो कुछ खोयेगा नही। मेरे पास जो है, वह अगर खो गया तो सब

खो जायेगा। और पहुचने के बिलकुल करीब हू। हाथ मे आयी-आयी बात है, चूक गया तो पता नही, कितने जन्म लगेंगे!'

कबीर उसी सपदा की बात कर रहे हैं। उसके लिए बडा जतन चाहिए, राते जाग के बितानी पडें, दिन होश से बिताना पडे, एक-एक कदम जतन से रखना पडे।

साधु का अर्थ है जो जतन से जी रहा है, सुरति से जी रहा है, स्मरणपूर्वक जी रहा है—जो भी कर रहा है।

और जैसे-जैसे तुम स्मरण से भरोगे वैसे-वैसे तुम्हे दिखाई पडेगी 'झीनी झीनी बिनी चदरिया।'

बडी झीनी चादर है जीवन की! और जितना तुम झीनापन देख पाओगे, उसकी बनावट की बारीकी समझोगे, उतने ही अनुग्रह से भरोगे, उतनी ही सपदा बहुमूल्य होने लगेगी। जहा ककड-पत्थर थे, वहा हीरे प्रगट होने लगेंगे। और जितने तुम समझोगे कि सपत्ति पास है, उतना जागोगे। जितना जागोगे उतनी बडी सपत्ति का द्वार खुल जायेगा। दोनो एक-दूसरे पर अन्योन्याश्रित है।

कहा से शुरू करोगे? कही से भी शुरू कर सकते हो। या तो जीवन की झीनी चादर को देखना शुरू करो। कबीर उसको ही इस सूत्र मे समझाते है।

'काहे के ताना काहे के भरनी, कौन तार से बिनी चदरिया।' यह जीवन की जो चादर है, इससे सूक्ष्म इस जगत मे और कुछ भी नही। यह तुम्हारा दिखाई पडने वाला शरीर, न दिखाई पडने वाले को छिपाए हुए है। यह तुम्हारे रोए-रोए मे जिसे तुम छू सकते हो, वह छिपा है जिसे छूने का कोई उपाय नही। इन तुम्हारी आखो के भीतर वह दर्शक बैठा है, जो अदृश्य है। जब तुम हाथ बढाकर किसी को छूते हो, तो तुम्हारा हाथ ही नही छूता, तुम्हारे भीतर वह भी उस हाथ से छूता है जिसको छूने का कोई उपाय नही। तुम्हारा शरीर तो स्थूल है, लेकिन तुम्हारे शरीर के भीतर अशरीरी छिपा है। स्थूल और सूक्ष्म का ताना-बाना है। और बडी झीनी चादर है। यह शरीर भी जिसे तुम देख रहे हो, यह भी इतना स्थूल नही जितना तुमने समझ रखा है। और पहले तो तुम अगर प्रवेश करोगे तो तुम पाओगे कि यह शरीर भी बहुत सूक्ष्म है। क्योकि तुम इसे पहचाने ही नही हो, इसे तुमने देखा नही है।

योगी कहते है कि करोडो नाडिया हैं, और अब विज्ञान भी सहमत है। अब विज्ञान भी कहता है कि योगियो की प्रतीति सही है। सिर्फ तुम्हारे मस्तिष्क मे सात करोड स्नायु-ततु हैं। छोटा-सा मस्तिष्क है—मुश्किल से कोई डेढ किलो वजन—वह भी आइस्टीन के मस्तिष्क का, सबके मस्तिष्क का नही! डेढ किलो वजन का मस्तिष्क है, उसमे सात करोड स्नायु-ततु हैं। उनसे सूक्ष्म कोई भी चीज जगत मे नही है। उन्हे खाली आखो से देखा नही जा सकता। तुम्हारा बाल बहुत मोटा है। अगर

हम एक लाख मस्तिष्क के ततुओ को एक के ऊपर एक रखे तो तुम्हारे बाल की मोटाई के होगे। इसलिए तो मस्तिष्क की सर्जरी जल्दी विकसित नही हो सकी, क्योंकि काटो कुछ, कट जाये कुछ--सब इतना बारीक है। यन्त्र को ही भीतर ले जाना खतरनाक है। क्योकि तुम कुछ काटना चाहते हो, लाखो ततु कट जायेगे— सिर्फ यत्र को भीतर ले जाने मे। इसलिए मस्तिष्क की सर्जरी को इतनी देर लगी। क्योकि इतने सूक्ष्म यत्र विकसित करने बहुत कठिन थे। और इतने सधे हुए हाथ पाने बहुत कठिन थे। फिर भी ब्रेन की सर्जरी अभी भी पूरा विज्ञान नही बन पायी है। क्योकि मस्तिष्क के सबध मे पूरी जानकारी अब भी हमे उपलब्ध नही हो सकी।

यह जो सात करोड ततुओ का जाल है, इसमे तुम्हारी चेतना छिपी है। यह जाल भी सूक्ष्म है, और चेतना तो उससे भी सूक्ष्म है। यह जाल भी खाली आखो मे नही दिखाई पड सकता। और चेतना तो आख से दिखाई ही नही पड सकती। बडी से बडी खुर्दबीन लगा दो, तो भी दिखाई नही पड सकती। यह जो छोटे-छोटे ततु है सात करोड, इनसे एक-एक ततु एक-एक करोड सूचनाओ को सगृहीत कर सकता है। एक ततु एक करोड ज्ञान की सूचनाओ को अपने मे सगृहीत कर सकता है।

मस्तिष्कविद् कहते है कि पृथ्वी पर जितनी लाइब्रेरिया है अभी, अगर उपाय किया जाए तो एक आदमी के मस्तिष्क मे समा सकती है। एक आदमी अपने मे उतनी जानकारी समाविष्ट कर सकता है। तुम अपने मस्तिष्क का दो प्रतिशत से ज्यादा उपयोग करते ही नही। महान से महान प्रतिभाशाली व्यक्ति भी पद्रह प्रतिशत का उपयोग करता है, पच्चासी प्रतिशत ऐसे ही चला जाता है। हम सोच भी नही सकते कि जिस दिन कोई आदमी सौ प्रतिशत मस्तिष्क का उपयोग करेगा, उस दिन कैसी महाप्रतिभा का जन्म होगा। उसके सामने आइस्टीन छोटे टिमटिमाते दीये रह जाएगे। वह महासूर्य जैसा प्रगट होगा।

यह मस्तिष्क ही सूक्ष्म हो, ऐसा नही है, पूरा शरीर ही ऐसे ही सूक्ष्म तानेबाने से बना है। योगियो ने बडी मेहनत की और उनकी मेहनत बडी अनूठी है। क्योकि वैज्ञानिक के पास तो यत्र है जानने को, उनके पास कोई भी यत्र न था। और वैज्ञानिक के पास तो सुविधा है, प्रयोगशालाए हैं, निरीक्षण करने के उपाय है, चीर-फाड करने की विधि है, योगियो के पास कुछ भी न था। उन्होने न तो कभी किसी मुर्दे को चीरा-फाडा, न उन्होने कभी किसी दूसरे का निरीक्षण किया। उनका निरीक्षण बडा अनूठा है। वे तो भीतर जाग गये, और भीतर से निरीक्षण किया। बाहर से तो उनके पास कोई उपाय नही।

इस मकान को देखने के दो ढग है। एक तो बाहर तुम सडक पे खडे होकर इसे देखो, वह इसका बाहरी रूप है, बाहर का परकोटा है। और एक वह रूप है जो इस घर मे रहनेवाला भीतर से देखेगा। वैज्ञानिक बाहर से देख रहा है। वह नजर

सड़क से गुजरने वाले की है। वह घर का रहने वाला नही है। वह भीतर नही खडा है। बाहर से देखने वाला भी कहता है कि बडी विराट सूक्ष्मता है। तो जिन्होने भीतर से देखा है, और जिन्होने भीतर सजग होकर इस ताने-बाने को देखा है ये सात करोड तंतु जिस दिन तुम भीतर देखोगे, उस दिन तुम समझोगे कबीर क्या कहते हैं झीनी झीनी बिनी चदरिया !'

ढाका की मलमल कुछ भी झीनी नही है। तुम मस्तिष्क मे जैसी मलमल ले के चल रहे हो, कोई कारीगर कभी नही बुन पाया। बुन भी न पायेगा, क्योकि यह बडे मे बडे कारीगर की बुनावट है।

कबीर कहते हैं, उस साई को भी बुनने मे दस महीने लग जाते है, उस परमात्मा को भी बुनने मे एक चदरिया, एक आदमी का शरीर निर्मित करने मे, दस माह लग जाते हैं।

'झीनी झीनी बिनी चदरिया।

काहे के ताना काहे के भरनी, कौन तार से बिनी चदरिया!'

चकित है। भीतर इलहाम हुआ है। भीतर प्रकाश भर गया है। उस प्रकाश मे यह शरीर का ताना-बाना दिखाई पड रहा है। एक-एक सूक्ष्मता प्रगट हुई है। और कबीर विस्मय मे कह रहे है काहे के ताना काहे की भरनी! कौन-सा है ताना, कौन-सा है बाना! किस तार से बुना है इस चादरिया को! यह उनका चकित, विस्मय का भाव है।

जब भी कोई योगी भीतर जागता है, तो विस्मय से भर जाता है। विस्मय पहली घटना है। चकित हो जाता है, अवाक रह जाता है।

यह बाहर जो ससार तुमने देखा है, ना-कुछ है। इससे बडा ससार तुम अपने भीतर छिपाए बैठे हो। उसे तुमने देखा भी नही है। क्योकि उसे देखने के लिए भीतर थिर होने की जरूरत है। और भीतर होश को उठाने की जरूरत है। भीतर एक ज्योति बन जाए तुम्हारी चेतना, तब भीतर का घर प्रगट होगा। और निश्चित ही मैं कहता हू, मनुष्य-जाति के इतिहास मे किसी दूसरे व्यक्ति ने इससे बेहतर शब्द का प्रयोग नही किया है। यह जुलाहे ने ठीक चोट मारी

'झीनी झीनी बिनी रे चदरिया!

इगला पिंगला ताना भरनी, सुषमन तार से बिनी चदरिया।'

ये योगियो के पारिभाषिक शब्द है। सुषुम्ना, योगी कहते है, रीढ को—लेकिन सिर्फ रीढ को ही नही। रीढ उसका बाह्य आवरण है। रीढ के मध्य से एक अति सूक्ष्म ज्योति-धारा, रीढ के ठीक मध्य से अति सूक्ष्म ऊर्जा, विद्युत की भांति ऊर्जा, प्रवाहित है। और वही तुम्हारे शरीर के, तुम्हारे मस्तिष्क के जीवन का आधार है। तुम्हारा मस्तिष्क सात करोड सूक्ष्म तन्तुओ वाला, तुम्हारी सुषुम्ना का ही एक छोर है, रीढ का ही एक छोर है। वैज्ञानिक कहते हैं कि रीढ ही विकसित होके

मस्तिष्क बन गई है। तो तुम्हारा मस्तिष्क रीढ का ही एक छोर है।

इसे समझने की कोशिश करो।

तुम्हारे जीवन मे दो छोर हैं—शरीर के जीवन मे भी। एक छोर तो मस्तिष्क है, दूसरा छोर यौन-केंद्र है। इसलिए योगियो ने दो छोर माने है। एक को, जिसको वे मूलाधार कहते हैं, जो तुम्हारा यौन-केंद्र है, सेक्स-सेंटर है, और दूसरा, जिसको वे सहस्त्रार कहते है। सहस्त्रार का तुम्हे कोई पता नही है। रीढ के दो छोर है एक कामवासना और एक परमात्मा की प्रतीति—परमात्मा-वासना। एक तरफ काम, दूसरी तरफ राम। और इन दोनो के बीच जो प्रवाहित धार है ऊर्जा की, इनर्जी की, उसका नाम सुषुम्ना है। रीढ उसकी बाहरी खोल है। जैसे बीज के भीतर वृक्ष छिपा है, बीज बाहरी खोल है—ठीक ऐसे ही जिसको हम रीढ कहते हैं, इस रीढ के भीतर योगियो की सुषुम्ना छिपी है। और जैसे-जैसे तुम जागोगे, वैसे-वैसे यह ऊर्जा ऊपर की ओर प्रवाहित होती है। जितने तुम सोये रहोगे, उतना यह नीचे की ओर प्रवाहित होती है।

निद्रा का अर्थ है तुम्हारा जीवन सिर्फ कामवासना को ही जान पायेगा, तुम कोई और बात न जान पाओगे। तुम एक ही छोर से परिचित होओगे। वह छोर बिलकुल द्वार था पहला। तुम महल के बाहर सीढियो पर ही जीवन गवा दिये। तुमने समझ लिया, यही घर है, तुम वही रह गये। अधिक लोग पोर्च मे ही जीवन को समाप्त कर देते है, सीढियो के भीतर भी प्रवेश नही हो पाता, द्वार पर दस्तक भी नही देते।

जैसे-जैसे तुम जागोगे अब जागने के लिए फिर दो उपाय हो सकते है। एक उपाय पतजलि का है। वह उपाय है कि रीढ मे वह जो ऊर्जा है जीवन की, जिसको कुडलनी कहते है, उसे तुम ऊपर उठाओ। इसलिए शीर्षासन का उपयोग है। क्योकि शीर्षासन की अवस्था मे वह ऊर्जा सहज ही मस्तिष्क की तरफ गिरनी शुरू हो जाती है। आसन इसलिए उपयोगी है कि उन सबके माध्यम से चेतना पर दबाव डाला जाता है, ताकि ऊर्जा ऊपर की तरफ उठने लगे। इसलिए ब्रह्मचर्य का मूल्य है। क्योकि अगर ऊर्जा नीचे की तरफ बहती रहे, तो ऊपर की तरफ जाने को बचेगी नही। तुम नीचे का द्वार रोक देते हो, जैसे नदियो पर हम बाध देते है। नदियो पे बाध बाध देते है तो विराट विद्युत की ऊर्जा इकट्ठी हो जाती है। ऐसे ही बाध को बाधने का उपाय है ब्रह्मचर्य। एक तरफ से हमने द्वार बद कर दिया, तो ऊर्जा इकट्ठी होती है। जब ऊर्जा ज्यादा इकट्ठी हो जाती है तो उसे मार्ग चाहिए।

ब्रह्मचर्य हो, और साथ मे शीर्षासन हो, तो बधी हुई ऊर्जा मस्तिष्क की तरफ गिरनी शुरू हो जायेगी। ये उपाय शारीरिक हैं। पतजलि और हठयोग इस शारीरिक उपाय मे तुम्हे जगायेगे। जैसे-जैसे तुम्हारी ऊर्जा ऊपर की तरफ बहेगी, वैसे-

वैसे तुम सजग हो जाओगे।

दूसरा उपाय—कबीर, बुद्ध—उनका है। वह दूसरा उपाय यह है कि तुम जैसे-जैसे जागते जाओगे, वैसे-वैसे ऊर्जा ऊपर बढ़ने लगेगी। जैसे-जैसे तुम होश का उपयोग करोगे जीवन मे, चलोगे तो होश से, बैठोगे तो होशपूर्वक, उठोगे तो होशपूर्वक, बिस्तर पे सोने जाओगे तो होशपूर्वक, तब तक होश को सम्हालोगे जब तक शरीर नीद मे न डूब जाए, और धीरे-धीरे ऐसी घडी आयेगी कि शरीर तो नीद मे डूब जायेगा, होश सम्हला ही रहेगा। फिर नीद मे भी होश चलने लगेगा।

इसलिए कृष्ण कहते है, योगी तब भी नही सोता जब सब सो जाते हैं। इसका यह मतलब नही है कि वह बैठा ही रहता है, आखे खोले ही रखता है। वह भी सोता है—लेकिन उसका शरीर ही सोता है। उसके भीतर का साक्षी-भाव जगा रहता है।

तो जैसे-जैसे साक्षी-भाव बढेगा, वैसे-वैसे ऊर्जा ऊपर बढ़ेगी। अन्योन्याश्रित है। या तो ऊर्जा को ऊपर ले जाओ, तो साक्षी-भाव बढेगा।

लेकिन ऊर्जा को ऊपर ले जाना अति दुरूह है और उपद्रव का मार्ग है। और लबी साधना चाहिए, और शरीर का लबा प्रशिक्षण चाहिए। और अति लबी यात्रा है, एक जीवन मे पूरी भी नही हो सकती, क्योकि वह बैलगाडी से यात्रा करने जैसा है। इसलिए धीरे-धीरे हठयोग प्रयोग के बाहर हो गया। उसकी जगह राजयोग ने जगह ले ली। क्योकि राजयोग चेतना पर सीधा काम करता है। और चेतना शीघ्रता से गतिमान होती है। क्योंकि कोई शरीर की साधना की जरूरत नही है। चेतना की साधना बडी सहज है। सिर्फ तुम्हे होश ही साधना है। अगर तुम हठयोग साधना चाहो तो शरीर सर्वांगरूप से स्वस्थ होना चाहिए, जो कि आज मुश्किल है। सर्वांग स्वस्थ शरीर खोजना मुश्किल है। क्योकि सारी प्रकृति विकृति कर दी गई और सारा प्राकृतिक जीवन अस्त-व्यस्त हो गया है। सब अप्राकृतिक है। हवा अप्राकृतिक है, जो तुम श्वास से लेते हो।

वैज्ञानिको ने खोजा है कि बबई, टोकियो, न्यूयार्क की हवा इतनी ज्यादा विषाक्त गैसो से भर गई है, कि वे हैरान है कि आदमी उस हवा मे जिदा कैसे है! मर जाना चाहिए। लेकिन आदमी समायोजन कर लेता है। जीने की धारा धीमी हो जाती है, हर हालत मे अपने को समायोजित कर लेता है। जीने की धारा धीमी हो जाती, लेकिन मरता नही। जीने का ढग मदा-मदा हो जाता है, बेहोश-बेहोश हो जाता है, लेकिन मरता नही। चारो तरफ हवा विषाक्त है, क्योकि हठयोगियो को पता भी नही था कि सडक पे कारे होगी, ट्रेने दौड रही होगी, मोटर-साइकिले होगी—सब तरफ पेट्रोल जल रहा होगा और हवा से ऑक्सीजन धीरे-धीरे क्षीण हो जायेगी। ऐसी हालत आ गई है कि जल्दी ही, सिर्फ बहुत सपन्न लोग ऑक्सीजन को उपलब्ध कर सकेगे।

इस सदी के पूरे होते-होते हर आदमी को अपने चेहरे पर ऑक्सीजन की एक

मास्क ओढनी पडेगी—हर आदमी को। रूस मे उन्होने प्रयोग शुरू कर दिये हैं। अमरीका मे वे प्रयोग शुरू कर रहे है। क्योकि सदी पूरे होते-होते हवा से ऑक्सीजन विदा हो जायेगी। तो अपना-अपना ऑक्सीजन का डब्बा साथ लेकिन यह सिर्फ बहुत सपन्न लोग ही इसका उपयोग कर सकेगे। गरीब आदमी को तो मुश्किल होगी। जैसे गरीब आदमी को नल के पास क्यू लगा के खडा होना पडता है, पानी मुश्किल हो गया, ऐसे ही उसे, आज नही कल, हवा के लिए भी क्यू लगा के खडा होना पडेगा, जहा वे दो-चार ऑक्सीजन की गहरी श्वास ले ले, ताकि चौबीस घटे किसी तरह चल सके।

भोजन विषाक्त है। सब अप्राकृतिक है। क्योकि जो खनिज तत्व प्रकृति के चाहिए, वे सब खो गये, आदमी ने उनका उपयोग कर लिया और उनको वापिस नही डाला है। अब जो भी हम फर्टिलाइजर्स डाल रहे हैं, वे सब नकली और कृत्रिम है, और आदमी के बनाए हुए हैं। वे सब भोजन को विषाक्त कर रहे है। चारो तरफ अणु के प्रयोग चल रहे हैं, सारी दुनिया मे। वे सारी हवा को विषाक्त कर रहे है। सब जगह रेडियोधर्मी तत्त्व हर चीज मे प्रविष्ट हो गये हैं। कोई भी चीज अब शुद्ध नही है—हो भी नही सकती। ऐसी हालत मे हठयोग का तो कोई उपाय नही रहा। हठयोग बडी प्राकृतिक दुनिया की बात थी, जब सब प्राकृतिक था। उस प्राकृतिक दुनिया मे भी हठयोगी को कई जन्म लग जाते थे। वह लबी यात्रा है। क्योकि स्थूल मे जो चलेगा, वह बैलगाडी से चल रहा है।

सूक्ष्म का जो उपयोग करेगा, उसने ज्यादा त्वरित वाहन खोज लिये। इसलिए राजयोग ने धीरे-धीरे हठयोग को समाप्त ही कर दिया, उसकी पूरी जगह ले ली।

बुद्ध, कबीर, नानक, दादू सब राजयोगी हैं। और उन सबने हठयोग का विरोध किया है। क्योकि उससे अब कोई पहुच नही सकेगा, वह बात गई हो गई।

कबीर कहते है कि भीतर तुम जितने जागते जाओगे, उतनी ही ऊर्जा प्रवाहित होगी। वह ऊर्जा के प्रवाह का जो मार्ग है, उसका नाम सुषम्ना है। उसको कबीर सुषुम्ना कहते है। और सुषुम्ना तो बीच का मार्ग है और उसके दोनो तरफ दो नाडिया और है जिसका नाम इडा और पिगला है। वे दो नाडिया भी शरीर मे है, और उन दोनो नाडिया के भीतर भी जीवन-ऊर्जा प्रवाहित होती है। तुमने शायद ध्यान न दिया हो, और आधुनिक शरीर-शास्त्र ने बिलकुल ध्यान नही दिया है, लेकिन अब कुछ वैज्ञानिक उस तरफ उत्सुक हो रहे है। श्वास तुम लेते हो, तो कुछ देर श्वास बाए नथुए से चलती है, कुछ देर दाए से। जब बाए से श्वास चलती है, तो सारे शरीर की अवस्था भिन्न होती है और जब दाए से चलती है तो भिन्न होती है। योगियो ने इन दोनो श्वासो के द्वारो को इला और पिगला से जोडा है। और वे जुडे हैं।

जब तुम्हारी एक श्वास बाए चलती है, तो तुम्हारे जीवन की ऊर्जा, एक यात्रा-पथ

से गुजरती है, जब दायें से चलती है, तो दूसरे यात्रा-पथ से गुजरती है। योगियो ने इनके बहुत नाम दिये है। कोई सूर्य-नाडी, चद्र-नाड़ी। क्योंकि तुम्हारा एक नासापुट सूर्य की भाति है। उससे जब तुम श्वास लेते हो, तो तुम्हारे पूरे शरीर मे ऊष्णता व्याप्त होती है। तुम्हारा दूसरा नासापुट चद्र की भाति है। जब तुम उससे श्वास लेते हो तो सारे शरीर मे शांति व्याप्त होती है। तुम्हारा दाया स्वर सूर्य का, तुम्हारा बाया चद्र का है। इसलिए कभी गौर करना, अगर सिर मे दर्द हो, तो तुम दाए स्वर को बद कर देना और बाए स्वर से श्वास लेना। थोडी देर में तुम पाओगे, दर्द खो गया। क्योंकि बाया स्वर चद्र का है, शान्तिदायी है। अगर तुम शिथिल हो, सुस्त मालूम पड़ते हो, थके मालूम पडते हो, बाए स्वर को बन्द कर देना दाए स्वर से ही श्वास लेना। थोडी ही देर मे तुम पाओगे ऊर्जा प्रवाहित हो गई। शरीर ऊष्ण हो गया, सक्रियता आ गई। वह सूर्य का स्वर है।

इस पर आधुनिक शरीर-शास्त्र ने बहुत कम ध्यान दिया है, लेकिन नये कुछ वैज्ञानिक उत्सुक हुए हैं इसमे तो कुछ रहस्य है ही। जो व्यक्ति सुबह उठता है, और उठते वक्त उसका दाया स्वर चलता रहता है, वह पूरे दिन सक्रिय होगा। सुबह उठते वक्त जिसका बाया स्वर चलता रहता है, वह दिन भर सुस्त होगा। बाए स्वर वाला व्यक्ति रात मे ज्यादा जीवन्त मालूम पडेगा, रात देर तक जगेगा। रात उसके लिए दिन है। दाए स्वर वाला साझ होते ही सो जाने की तैयारी करेगा, ब्रह्ममुहूत मे अपने-आप उसकी नीद खुल जायेगी। दिन, उसका दिन है।

और हर व्यक्ति को अपनी प्रकृति खोज लेनी चाहिए। अन्यथा बडे उपद्रव पैदा होते हैं। क्योंकि जो सूर्य के स्वर वाले लोग हैं, वे ज्यादा सक्रिय हैं। स्वभावत जो उतने सक्रिय नही हैं, वे उनकी निन्दा करते हैं। स्वभावत जो उतने सक्रिय नही हैं, वे उनको कहते हैं आलसी हो, काहिल हो, सुस्त हो—उठो, काम मे लगो! वे कहेगे, ब्रह्ममुहूर्त मे उठो! आमतौर से पुरुष दाये स्वर वाले, स्त्रिया बाए स्वर वाली होती है—होना ही चाहिए। इसलिए भारत की पुरानी परपरा है कि पत्नी बाए बैठे। वह बाए स्वर का प्रतीक है। वह चन्द्रस्वरी है। रात, उसका दिन है। रात वह पूरी खिलती है। स्त्रिया सुबह जल्दी उठना पसन्द नही करती। उठना पडता है, क्योंकि 'पति परमात्मा' सो रहे हैं। लेकिन उनके स्वभाव के अनुकूल नही पडता। और उसके परिणाम घातक होते हैं।

मेरे अनुभव मे स्त्रिया सिर के दर्द से ज्यादा पीडित रहती हैं—भारीपन से, उदासी से। और उसका एक कारण, अनेक कारणो मे यह है, कि उन्हे जब उठना चाहिए उसके पहले वे उठती हैं। नैसर्गिक यही है कि पति ही सुबह की चाय बनाए।

अभी वैज्ञानिक भी इस शोध पर पहुच गये हैं। उन्होने दूसरे मार्ग से बात को समझा है। वे कहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति का चौबीस घटे मे दो घटे शरीर का तापमान नीचे गिर जाता है। वे जो दो घटे हैं, वही खास नीद के घटे है। उन दो

घटों मे जो सो लेगा, वह दिन भर ताजा रहेगा। और उन दो घटो मे जो जागेगा वह दिन भर परेशान रहेगा। वे दो घटे सभी के एक-जैसे नही है। एक-जैसे होते तो बडी आसानी थी। कानून बना देते कि तीन बजे से पाच बजे तक हर एक आदमी को सोना ही है। लेकिन वे एक जैसे नही है। किसी को दो और चार के बीच वे दो घटे आते हैं, किसी को पाच और सात के बीच आते है। ऐसे लोग भी हैं जिनको सुबह सात और नौ के बीच आते है। और वे दो घटे सबके भिन्न हैं। और आप उनका पता लगवा सकते हैं। क्योकि चौबीस घटे शरीर का आप तापमान रख कर देख ले, आपको पता लग जायेगा कि आपके घटे कब हैं। वे दो घटे तो सोना ही—चाहे ब्रह्ममुहूर्त हो या न हो। जो उन दो घटो मे सोयेगा, वह दिन-भर ताजा अनुभव करेगा। नीद पूरी हो गई। आठ घटे सोने की जरूरत नही है, वे दो घटे भी काफी हैं। अगर वे दो घटे चूक गये, तो तुम बारह घटे भी सोओ, तो भी तुम पाओगे कि कुछ हल नही हुआ। क्योकि दो घटे जब तापमान शरीर का नीचे गिरता है, तब पूरा शरीर शिथिल हो जाता है। तब सारी सक्रियता खो जाती है। तब तुम करीब-करीब जैसे मुर्दा हो गये उस वक्त न सपना आयेगा। उस वक्त गहनतम निद्रा होगी।

पर इन खोजियो को भी यह अनुभव मे आया कि पुरुषो के वे घटे पहले है, स्त्रियो के बाद मे हैं। अगर पुरुष का चार और छह के बीच, तीन और पाच के बीच है, तो स्त्रियो का आमतौर से छह और आठ के बीच, पाच और सात के बीच है। पश्चिम मे तो उन्होने सलाह देनी शुरू कर दी है कि स्त्रिया थोडी देर से उठे, देर तक जागे, तो हर्ज नही। पुरुष जल्दी उठे। लेकिन इसमे भी भेद है। सभी पुरुष एक जैसे नही है, सभी स्त्रिया एक जैसी नही। कई स्त्रिया तो पुरुषो से ज्यादा पुरुष है। कई पुरुष स्त्रियो से ज्यादा स्त्री है।

मुल्ला नसरुद्दीन कल ही मुझे मिलने आया। और उसने कहा कि माने या न माने, लेकिन पत्नी को घुटने चलवा दिया है। मैंने कहा, सच! उसने कहा, 'बिलकुल सच। इसमे रत्ती भर झूठ नही है।' तो मैंने कहा, उसमे कुछ बोली वह? उसने कहा, 'बोली क्यो नही! बोली कि खाट के बाहर निकलो नीचे से, तब बताऊ।' खाट के नीचे छुप गए थे पत्नी को घुटने के बल चलवा दिया है।

पुरुष हैं, जो स्त्रैण हैं। स्त्रिया है, जो पौरुषिक हैं। तब भेद है। हर व्यक्ति को अपना ही खोजना पडता है। और जैसे तुम्हारे अगूठे का निशान भिन्न है, तुम्हारे जीवन के सब निशान भिन्न हैं, किसी दूसरे से मेल नही खाते।

अभी मै शरीर-शास्त्र पर एक ग्रथ देख रहा था, तो उस शरीर-शास्त्री ने नवीनतम शोधो का उल्लेख किया है, कि न केवल अगूठे के चिह्न, हर व्यक्ति की किडनी दूसरे से भिन्न है। हर व्यक्ति का हृदय दूसरे से भिन्न है। हर व्यक्ति का हृदय दूसरे से भिन्न है। शरीर का एक-एक रोआ भिन्न है। प्रत्येक व्यक्ति एक अनूठी

प्रक्रिया है। परमात्मा ने बहुत झीनी-झीनी चादर ही नही बीनी है, बडी भिन्न-भिन्न चादर बीनी है।

परमात्मा की सृजनात्मकता अनत है। वह दोहराता नही। वह दुबारा तुम्हे बनाता नही, तुम्हारे जैसा फिर कभी नही बनायेगा। इसलिए तुम धन्यभागी हो। और अगर तुम इस धन्यभाग को समझ सको, तो तुम्हारे जीवन मे बडी शाति और बडे आनद का उदय हो जाए। तुम जैसा कभी परमात्मा ने किसी को नही बनाया! तुम जैसा फिर कभी नही बनायेगा। तो इस महान अवसर को ऐसा-ऐसा ही मत खो देना, जो फिर कभी नही आनेवाला। और तुम्हारे ऊपर उसका ध्यान है, क्योंकि तुम जैसा कभी नही बनाया, तुम जैसा फिर कभी कोई नही बनेगा। तुम बिलकुल अनूठे हो! इसलिए भूल के तुम नकल मत करना। राम जैसे बनने की, बुद्ध जैसे बनने की, कृष्ण जैसे बनने की—भूल के नकल मत करना। क्योकि परमात्मा सिर्फ यही चाहता है कि तुम, तुम जैसे ही पूरे बन जाओ, प्रमाणिक रूप से तुम हो जाओ। तुम्हारा फूल खिले। वैसा फूल किसी और के पास है भी नही। तुम अगर राम जैसे बनोगे तो नकली, कागजी—जापानी। तुम अपने ही जैसे बनोगे, तो ही वास्तविक, यथार्थ।

'काहे के ताना काहे के भरनी, कौन तार से बिनी चदरिया।
इगला-पिंगला ताना भरनी, सुषमन तार से बिनी चदरिया॥'

इधर रूस मे एक बहुत बडा प्रयोग हुआ है। किरिलियान नाम के एक फोटोग्राफर ने एक नई फोटोग्राफी खोजी। इस सदी मे होने वाली अत्यत महत्वपूर्ण खोजो मे से एक है। और उसने इतनी सूक्ष्म फिल्मे तैयार की हैं, इतनी सवेदनशील कि उससे सूक्ष्म शक्तियों के भी चित्र लिये जा सकते हैं। इसे थोडा समझ ले, क्योकि तभी यह इडा, पिंगला और सुषुम्ना की बात खयाल मे आ सकेगी। क्योकि ये इनर्जी-फील्ड हैं। ये वस्तुए नही है, ये विद्युत-क्षेत्र हैं।

किरिलियान की खोज आकस्मिक हुई। वह सिर्फ फोटोग्राफर था। लेकिन सूक्ष्मतम सवेदनशील फिल्म बनाने की उसकी धुन थी। एक दिन फोटो लेते वक्त, भूल से उसका हाथ कैमरा के सामने आ गया, और हाथ की तस्वीर आ गई। पर वह बडा हैरान हुआ। हाथ मे तीन अगुलिया तो ठीक थी, अगूठा ठीक था, एक छिंगली अजीब सी हालत मे थी, रुग्ण मालूम पडती थी। और अगुलिया बिलकुल ठीक थी हाथ मे, लेकिन चित्र मे एक रुग्ण मालूम पडती थी। और चित्र मे लगता था कि अगुली को कोई रोग लग गया है। छह महीने बाद अगुली को रोग लगा। और जब छह महीने बाद उसने चित्र लिया, और मिलाया, तो वे चित्र बिलकुल एक जैसे थे। तब उसे एक सूझ हुई कि कही ऐसा तो नही है कि बीमारी, इसके पहले कि शरीर मे प्रविष्ट हो, विद्युत-क्षेत्र मे प्रविष्ट होती हो। क्योकि छह महीने पहले चित्र बीमारी का आ जाये, और बीमारी छह महीने बाद हो, तो फिर उसने दूसरे प्रयोग

शुरू किये। एक द्वार खुल गया। उसने फूलो के, कलियो के चित्र लिये और फूल के चित्र आ गये। क्योकि अत्यत सवेदनशील फिल्मो का उपयोग किया उसने। यह फूल चार दिन बाद खिलेगा, लेकिन इसकी विद्युत-ऊर्जा पहले खिलती है। फिर उसी विद्युत-ऊर्जा के कारण इसकी पखुडिया खिलती हैं। वह विद्युत-ऊर्जा हमे दिखाई नही पडती, फूल दिखाई पडता है। और जब इसने चित्र मिलाये, तो यह चकित हुआ ये चित्र बिलकुल मेल खाते हैं! पहले विद्युत-ऊर्जा खिल जाती, तो ऊर्जा का एक फूल बन जाता है। फिर चार दिन बाद फूल खिलता है। और जब इसका चित्र और उस चित्र से मिलाया जाता है, तो वो बिलकुल एक जैसे हैं।

फिर तो किरिलियान ने पिछले तीस वर्षों मे बहुत प्रयोग किये। और उसने यह बात प्रमाणिक रूप से सिद्ध कर दी, कि शरीर से भी एक गहरा शरीर है, और वह गहरा शरीर विद्युत-ऊर्जा का है। और अगर हम विद्युत-ऊर्जा के चित्र लेने मे समर्थ हो जाए, तो जो घटना इस शरीर तक आने मे छह महीने का समय लेती है, वह वहा पहले ही घट गई होती है।

इसके बडे उपयोग है। जिस दिन यह परिपूर्ण विज्ञान बन जायेगा—किरिलियान की फोटोग्राफी—उस दिन दुनिया मे किसी आदमी को बीमार होने की जरूरत नही। क्योकि हम, बीमार होने के छह महीने पहले पकड लेगे कि अब बीमारी आने के करीब है। इलाज वही हो सकता है। आदमी को भी पता नही कि वह बीमार है। वह अभी बीमार है ही नही। बीमारी को सूक्ष्म से स्थूल तक आने मे छह महीने का वक्त लगता है। और तुम्हारा जो विद्युत-ऊर्जा का चित्र है, उसको पुराने योगियो ने तुम्हारा आभामडल कहा है।

किरिलियान भी पाता है कि रग मे फर्क है। जब आदमी स्वस्थ होता है, तो उसके शरीर के आसपास चार इचो तक फैला हुआ अलग रग का आभामडल होता है, जब बीमार होता है तो अलग रग का होता है, जब प्रसन्न होता है तो अलग रग का होता है, जब दुखी होता है तो अलग रग का होता है। तुम दुखी नही होते कि तुम्हारी विद्युत-ऊर्जा भी दुख के रग से भर जाती है। और जब तक विद्युत-ऊर्जा को न बदला जा सके, तुम सुखी न हो सकोगे। तुम्हारा स्थूल शरीर तो सिर्फ छाया है, असली शरीर तो भीतर छिपा है। उस असली शरीर को ही हमने 'इगला-पिंगला ताना भरनी, सुषमन तार मे बिनी चदरिया,' कहा है।

'आठ कवल दस चरखा डोले, पाच तत्त गुन तिनी चदरिया।'

वह जो भीतर का इनर्जी-फील्ड, ऊर्जा-क्षेत्र है, उसमे आठ कवल है आठ चक्र हैं। दस द्वार है इद्रियो के—'दस चरखा डोले।' पाच तत्त्व, पाच महातत्त्वो से वह बना है। तीन गुणों से उसकी रचना हुई है।

तो कबीर कहते हैं कि आठ कवल, जिनको हम चक्र कहते है, अगर ठीक से समझे । और उनको कवल कहने का कारण है। यह तो प्रतीक है। कभी नदी मे

आपने देखा, जब कोई भवर पडती है, तो चक्र मे पानी घूमता है! वैसे ही चक्र आपके शरीर की विद्युत मे बने हुए हैं, जहा ऊर्जा घूमती है—भवर! और उन भवरो का जो रूप है वह कमल से मिलता-जुलता है, जैसे कमल घूम रहा हो। और जब व्यक्ति अज्ञानी होता है, तो ऐसा होता है जैसे कमल नीचे की तरफ झुका हो—डडी ऊपर, कमल नीचे की तरफ झुका हो, मुरझाया हुआ। जैसे-जैसे ऊर्जा ऊपर की तरफ बहनी शुरू होती है, कमल की डडी सीधी होने लगती है, और कमल सीधा हो जाता है। बुद्ध को, विष्णु को, हमने कमल पे खडा किया है—खिला हुआ कमल, जिस पे वे खडे हैं! वह कमल उसी विद्युत-ऊर्जा का प्रतीक है। उनका पूरा कमल खिल गया है। उस पूरे कमल के खिल जाने मे उन्होने परम सत्य को पा लिया है। हमारे कमल झुके हुए हैं, जब तक हमारी ऊर्जा ऊपर नही बहती। हमारी ऊर्जा नीचे बहती है।

ऐसा समझो कि जैसे कमल हैं, और वर्षा हो रही है जोर से, तो वर्षा कमलो को झुका देगी। और नीचे की तरफ मुह कर देगी। जब तक तुम्हारे जीवन मे कामवासना हो रही है, गहन रूप से बरस रही है, तब तक ऊर्जा नीचे की तरफ बह रही है। सारे कमल झुके होगे। जिस दिन ऊर्जा ऊपर की तरफ बहेगी, उर्ध्व-गमन शुरू होगा—जिनको वेद ने उर्ध्वरेतस् कहा है—जब तुम उर्ध्वरेतस् बनोगे, कि तुम्हारी ऊर्जा ऊपर की तरफ जायेगी, तब कमल ऊपर की तरफ उठ जायेंगे, सब कमल खिलते जायेंगे! अन्तिम कमल, आठवा कमल जिसको कबीर कहते है, वह सहस्त्रार है।

यह गणना अलग-अलग है। कोई सात कवल गिनता है, कोई आठ कवल गिनता है, कोई नौ कवल गिनता है। कोई ग्यारह कवल गिनता है। यह गणना सभव है। यह इस पर निर्भर करता है कि तुम । कमल तो बहुत हैं। तुम्हारी ऊर्जा के रोए-रोए मे कमल हैं। तो जितना तुम्हे गिनना हो, जिस हिसाब से गिनना हो, तुम गिन सकते हो। फिर हर आदमी के यात्रा के पडाव भिन्न हैं। जैसे कि तुम यात्रा पर जाओ, कोई आदमी हर दस मील पे रुके, सौ मील की यात्रा हो तो हर दस मील पे रुके, दस पडाव बनाए। दूसरा आदमी पन्द्रह मील पे रुके, तो दस से कम पडाव बनाए। तीसरा आदमी बीस मील तक चलता हो और बीस मील पर रुके, तो पाच ही पडाव बनाए।

बुद्ध कहते हैं, छह कमल उन्होने छह ही पडाव बनाए होगे। वह जो अनन्त यात्रा है, उस पे वे छह जगह रुके होंगे। छह जगह अडचन पायी होगी। छह जगह उनको फूलो को खिलाना पडा होगा, तो छह। कबीर कहते हैं, आठ। इसमे कोई विवाद नही है। इसपे भारी विवाद चलता है, पडितो मे, कि कौन सही है। इसमे क्या अडचन है? मैं दस मील पे अपनी पडाव बनाऊ, मेरी मर्जी, मैं बीस पे बनाऊ, मेरी मर्जी। जहा मै रुकूगा, वहा मेरा पहला पडाव होगा।

ऐसे भी लोग है, जिन्होने कमलो की बात ही नही की, जैसे महावीर। लगता है उन्होने पडाव बनाए ही नही। जेट जम्प! ऐसा लगता है, उन्होने सीधे पहले केद्र से अतिम केन्द्र पर छलाग लगाई। यह भी सभव है। . यह भी सभव है। और महावीर जैसे व्यक्ति को सभव है। इसलिए हमने उनको नाम महावीर दिया है। नाम ही दिया है कि उनके पास महान ऊर्जा है, भारी ऊर्जा है!

ऊर्जा जितनी बडी हो, उतनी लबी छलाग हो सकती है—कही बीच मे पडाव बनाया ही न हो। तो उन्होने कमल की बात ही नही की, बीच के चक्रो की बात नही की। लेकिन इसका मतलब यह नही है कि वे बीच के चक्रो से नही गुजरे। तुम्हारी ट्रेन चाहे बीच के स्टेशनो पे रुके या न रुके, गुजरती तो है ही। तुम जक्शन से जक्शन रुको, मेल गाडी मे चलो, इससे कोई फर्क नही पडता। लेकिन जो आदमी ट्रेन से गुजर रहा है, फास्ट ट्रेन से, और बीच के स्टेशन पे रुकता नही, उसे बीच के स्टेशनो की चर्चा करने का कोई कारण नही। वह जक्शन टू जक्शन । वह एक जक्शन से दूसरे जक्शन की बात करेगा। फिर पैसेजर मे चलने वाले लोग हैं। कोई खराबी नही है पैसेजर मे चलने मे।

मेरे एक मित्र हैं, बहुत धनी, लेकिन हमेशा पैसेजर मे चलते है। वे कहते है, गरीब लोग चलते हैं, तेज गाडी मे, जिनके पास समय की कमी है। और उनकी बात भी मुझे जचती है, क्योकि वे कहते है, यात्रा का आनद ही क्या! हर स्टेशन पे वे उतरते हैं, पानी पीते हैं, भजिये खरीदते है, यह करते है, वह करते है। तो यात्रा का आनद ही क्या! गपशप करते हैं, मिलते-जुलते हैं। ट्रेन खडी है ।

एक बार मेरा उनसे साथ हो गया। तो जहा मैं बारह घटे मे पहुच जाता, तीन दिन लगा दिये उन्होने। मगर वे आदमी प्यारे है। उनके साथ तीन दिन भी तीन क्षण जैसे लगे। और मुझे भी लगा कि बात तो उनकी भी सच है। मर्जी है कौन कैसा चलता है। विवाद कुछ भी नही है।

इसलिए मेरे लिए इसमे कुछ फर्क नही पडता है कि कोई नौ कमल कहता है कि कोई दस कहता है, कि कोई ग्यारह कहता है, इसमे कोई फर्क नही पडता। कबीर कहते है, बिलकुल ठीक कहते हैं।

आठ कवल दस चरखा डोले । और दस द्वार हैं इद्रियो के। दस इद्रिया हैं पाच कर्म-इद्रिया, और पाच ज्ञान-इद्रिया। वे कहते है इन इद्रियो का चरखा है। वे प्रतीक तो जुलाहे के हैं। 'पच तत्त—पाच तत्व हैं। तीन गुण—रजस्, तमस्, सत्व। इन सबसे मिल के वह भीतर की चादर बनी है।

'साई को सीयत मास दस लागे, ठोक ठोक कर बिनी चदरिया।'

परमात्मा को एक-एक चादर बनाने में दस महीने लग जाते है।

'सोई चादर सुर नर मुनि ओढी, ओढी के मैली किनी चदरिया।

दास कबीर जतन से ओढी, ज्यो की त्यो धरि दीनी चदरिया॥'

परमात्मा को भी निर्माण करने में समय लगता है। क्योंकि जो निर्माण किया जा रहा है, वह इतना बहुमूल्य है! तुम अपने को कोई कीमत ही नही देते। परमात्मा पूरा अस्तित्व दस महीने तुम पे खर्च करता है तुम्हे बनाने मे। लेकिन तुम अपना कोई मूल्य ही नही समझते। तुम ऐसे जीते हो जैसे निर्मूल्य हो। तुम दो पैसे मे अपने को बेचने को तैयार रहते हो। तुम्हे पता ही नही कि कितनी बडी सपदा तुम्हे दी गई है। तुम उसे ऐसे ही बरबाद कर देते हो। तुम उसका कोई भी उपयोग नही कर पाते।

कबीर यहा एक बडी महत्वपूर्ण बात कह रहे है, सूक्ष्म है, और गौर से समझे। कहते हैं

'सोई चादर सुर नर मुनि ओढी' ।

तीन प्रतीक उन्होने चुने। सुर—स्वर्ग मे रहने वाला देवता। नर—साधारण मनुष्य और मुनि—त्यागीजन। इन सबने वही चादर ओढ़ी, लेकिन कबीर कहते है कि 'ओढी के मैली किनी चदरिया'—और इन तीनो ने मैली कर दी।

मुश्किल है समझना। समझे '

सुर का अर्थ है स्वर्ग मे रहने वाले देवता। देवता, भोग के शुद्ध प्रतीक हैं। वे सिर्फ भोगते हैं। स्वर्ग का अर्थ है भोगस्थल। वहा हमने कल्पतरु बनाए हैं, जिनके नीचे आदमी बैठता है और जो चाहता है, चाहा नही इधर कि पूरा नही हुआ उधर चाह और पूर्ति मे कर्म नही है। इसलिए स्वर्ग कोई कर्म-स्थली नही है, भोग-स्थली है। यही तो हमारी वासना है सबकी, कि ऐसा हो कि इधर मैं चाहू कि उधर पूरा हो जाए। बटन भी न दबाना पडे, उतनी देर भी न लगे। लेकिन यहा तो पृथ्वी पर बडी देर लगती है।

तुम एक बडा मकान बनाना चाहते हो तो कोई तुमने चाहा और पूरा नही हो जायेगा। शायद पूरी जिन्दगी तुम तडपोगे, परेशान होओगे, तब बन पायेगा। शायद जब तक बन पायेगा, तब तक तुम रहने योग्य ही नही रह जाओगे। जब बन जायेगा, तब तुम पाओगे जिन्दगी तो गई। तुम धन कमाओगे बडी कामनाओ, बडे सपनो से, लेकिन जब धन हाथ आयेगा, तुम पाओगे कि जो भोग सकता था वह तो कभी का खो गया। समय सब नष्ट हो जाता है। इसलिए हमारी अन्तिम कल्पना भोग की है। स्वर्ग, वहां वासना और पूर्ति मे समय नही जाता। यहा तुमने चाहा, वहा पूरा हुआ। इधर तुमने माग की, तत्क्षण पूरी हुई। यही तो अमीर होने का सुख है। गरीब और अमीर मे फर्क क्या है? गरीब चाहे तो उसी वक्त पूरा नही हो सकता, अमीर चाहे तो उसी वक्त पूरा हो सकता है। जितना उसके पास धन हो, उतनी उसकी वासना और पूर्ति मे दूरी कम होती जाती है। इधर उसने कहा कि एक बडा महल चाहिए, एक बडा महल हो जायेगा।

लेकिन कबीर कहते है, देवता भी मैली कर देते है। भोग से चादर मैली हो जाती है।

क्योकि भोगी का अर्थ है जो अपनी वासनाओ मे पूरी तरह तादात्म्य करके भटक गया। भूख लगी तो उसने समझा कि मैं भूख हू। वासना जगी तो उसने समझा कि मैं वासना हू। क्रोध उठा तो उसने समझा कि मैं क्रोध हू।

भोगी का अर्थ है वासनाओ के साथ जिसने अपने को इतना जोड लिया कि कोई फासला न रहा। स्वर्ग के देवता भी गिरेगे वापिस। स्वर्ग कोई अतिम अवस्था नही है। भारत ने एक अतिम अवस्था खोजी, जिसको वे कहते है मोक्ष। यह थोडा समझ लेने जैसा है, क्योकि दुनिया मे कही मोक्ष की धारणा नही है। नर्क है, स्वर्ग है, पृथ्वी है, मोक्ष एकदम भारतीय धारणा है—शुद्ध भारतीय! मगर भारतीयो ने मेहनत बडी की है। इसलिए हकदार थे वे खोजने के उस दिशा मे। जैसे विज्ञान ने पश्चिम मे मेहनत की है, वैसे भारत ने धर्म मे मेहनत की हैं। स्वर्ग को हम अतिम अवस्था नही मानते। उससे भी आदमी गिरेगा, क्योकि कब तक भोगोगे! भोग से ऊब पैदा होती है। इसलिए स्वर्ग अगर तुम जाओगे तो सभी देवताओ को जम्हाई लेते हुए पाओगे। ऊब पैदा होती है।

तुम सोचो, तुम जो चाहो, वह उसी वक्त मिल जाए, कितनी देर तुम भोग पाओगे? दस-बारह घटे? मुश्किल! तुम जो चाहो, उसी वक्त मिल जाए—तुम्हारी वासनाए कितनी देर चल पायेंगी? भोग उबा देगा। इसलिए पुराणो मे कथाए है कि देवता ऊब जाते है, पृथ्वी के लिए तरसते हैं। यहा एक फायदा है। यहा वासना उसी वक्त तृप्त नही होती, समय लगता है। और समय मे ही मजा है।

इसलिए तो कवि कहते हैं, 'इतजारी मे । वह जो प्रतीक्षा है । मिलने मे कुछ खास मजा नही, मिल गया फिर क्या करोगे? इतजारी मे, राह देखने मे, प्रतीक्षा करने मे, आ रही मजिल, आ रही, आशा मे—सारा मजा है। मिल जाने पर तो सब मजा खो जाता है। देवताओ को मिल गया है, भोगते है, लेकिन भोग के साथ तादात्म्य जुड जाता है। देवता कोई जागे हुए लोगो का नाम नही है। तुम इद्र से ज्यादा सोया हुआ आदमी न पा सकोगे। खोया है—शराब, राग-रग अप्सराए नाच रही हैं, और हमेशा परेशान है। हमेशा कथाओ मे उसका सिंहासन डोलता रहता है। कोई मुनि कही ध्यान कर रहे हैं, उनसे क्या लेना-देना! कही कोई मुनि तपश्चर्या कर रहे है, तत्क्षण इद्र का सिंहासन डोलने लगता है।

इन कहानियो का बडा महत्त्व है, बडा मूल्य है। इसका अर्थ यह है कि त्यागी और भोगी दोनो एक ही चीज के दो छोर हैं, जैसे कि एक ही तराजू के दो पलडे होते हैं। इस तराजू पे ज्यादा वजन रखो, यह पलडा डोलने लगता है। जब भी कोई मुनि ज्यादा त्याग करता है, इद्र घबराता है। उधर पलडा डोलता है—क्यो? ये दोनो एक ही चीज से जुडे हैं, एक तराजू के दो छोर है। क्योकि इस मुनि ने अगर ज्यादा त्याग किया तो भोग का अधिकारी हो जायेगा, इद्र बन सकता है। तो इद्र अपदस्थ हो सकते हैं। इद्र की वही दशा है, जो दिल्ली मे राजनीतिज्ञो की है।

इद्र हो कि इदिरा—फर्क नही पडता, सिंहासन डोलता ही रहता है। और वशिष्ठ और विश्वामित्र हो कि जयप्रकाश, एक ही तराजू के दो पलडे हैं। और इस तराजू पे वजन बढा कि दूसरा तराजू ऊपर उठा!

इसलिए कथा बडी महत्वपूर्ण है। कोई कथा व्यर्थ तो होती नही। अगर हम उसके मनोविज्ञान मे प्रवेश कर सके तो बडी महत्वपूर्ण है। भोगी हमेशा त्यागी से डरा रहेगा। क्योंकि त्यागी कर क्या रहा है, त्याग कर क्यो रहा है? त्यागी इसलिए सारा शोरगुल मचा रहा है, तपश्चर्या कर रहा है कि भोग का अधिकारी हो जाए।

तो भोगी और त्यागी मे बहुत फर्क नही है। भोगी और त्यागी एक ही सिक्के के दो पहलू है। उनकी कामना एक ही है। एक को मिल गया है, दूसरा मिल जाए, इसकी आशा मे जी तोड के लगा हुआ है। इसलिए त्यागी भी सपने तो भोग के ही देखता है। उसने यहा सारी स्त्रिया छोड दी हैं, अप्सराओ के सपने देख रहा है। उसने यहा भोजन छोड दिया, उपवास कर रहा है, लेकिन प्रतीक्षा कर रहा है सब स्वर्ग के भोजन मिष्ठान्न उपलब्ध होगे। यहा उसने शरीर को गला डाला, सुखा डाला, वहा स्वर्ण-काया की प्रतीक्षा कर रहा है, देव-काया की—देवताओ जैसा शरीर, जो कभी मुर्झाता नही, जो कभी बूढा नही होता। स्वर्ग मे उम्र बढ़ती नही। वहा लोग ठहरे ही रहते है। कम से कम, स्त्रिया कहते हैं सोलह पे ठहरी रहती है। कोई अप्सरा सोलह से बडी की है नही। अब कितना समय बीत गया, अभी भी वह सोलह की है। उम्र बढती नही। यहा भी स्त्रिया कोशिश तो बहुत करती है कि न बढे, लेकिन यह इस जमीन पर चलता नही।

मुल्ला नसरुद्दीन ने मुझे एक दिन कहा, 'अकेले बूढा होते-होते, अकेले-अकेले बहुत बुरा लगता है।' मैंने कहा, 'अकेले! तुम्हारी पत्नी जो है।' उसने कहा, 'पत्नी दस साल से उसकी उम्र बढी ही नही। हम अकेले ही बूढे हो रहे है।'

हर पति अकेला बूढा होता है। पत्नी तो ठहर चुकी होती है बहुत पहले। स्वर्ग मे उम्र बढती नही, शरीर गलता नही, रोग की कोई खबर नही। स्वर्ग मे कोई वैद्य है, आपने सुना? एलोपैथी या आयुर्वेदिक या हकीम—कोई भी नही। यहा तो बुद्ध भी हो, तो भी वैद्य की जरूरत पडती है। स्वर्ग मे कोई रोग नही, बीमारी नही, बुढापा नही—बस, भोग ही भोग है। सिर्फ स्वर्ग का रोग एक ही है कि वहा ऊब पैदा हो जाती है।

धनी आदमी ऊब जाता है। गरीब आदमी इतना ऊबा हुआ नही दिखाई पडेगा। धनी आदमी बिल्कुल ऊबा हुआ दिखाई पडेगा। उसकी जिंदगी मे अब कुछ बचा नही। क्याकि इन्तजारी टूट गई। अब कुछ इन्तजार करने को नही है, सब पा लिया। अब! अचानक सब ठहर गया! गति थी, दौड थी, सब रुक गया। अब कही जाने को न बचा। अब वह मुश्किल मे पड गया है। फिर वह तडपने लगता है—वापिस पृथ्वी पर उतर आने को।

कबीर कहते हैं कि चाहे देवता ओढे, चाहे मनुष्य, चाहे मुनि—सभी उसको मैला कर देते है। देवता भोग के कारण मैला कर देता है, मुनि त्याग के कारण मैला कर देते हैं।

कबीर का यह वचन बडा क्रातिकारी है। क्योकि कबीर यह कह रहे हैं कि तुमने अगर त्याग भी किया और बेहोशी से किया, तो वह भोग से भिन्न नही है। वह भोग के विपरीत भला हो, लेकिन भोग से भिन्न नही है। उसका स्वभाव एक ही है। और त्यागी और भोगी की नजर मे बुनियादी फर्क नही पडता। भोगी धन के पीछे पागल है, त्यागी छोडने के पीछे पागल है। लेकिन दोनो की नजर धन पे लगी है। भोगी कहता है मेरे पास दस करोड रुपये हैं, त्यागी कहता है मैंने दस करोड त्याग दिये हैं। लेकिन दस करोड की गिनती दोनो करते है। भोगी कहता है, सोना सब कुछ है। त्यागी कहता है सोना मिट्टी है। लेकिन दोनो सोने की चर्चा करते है। सोना अगर सच मे ही मिट्टी है तो चर्चा भी क्या करनी ? मिट्टी की कोई चर्चा क्यो नही करता ? अगर सोना सच मे ही मिट्टी है तो चर्चा क्या करनी ?

महाराष्ट्र मे एक फकीर हुआ। उस फकीर का नाम था राका। वह गरीब त्यागी आदमी था। लकडी काट के बेचता और जो बच जाता उससे अपना भोजन चलाता। साझ को वह भी बाट देता जो बच जाता। एक दिन वर्षा देर तक होती रही असमय, दो दिन तीन दिन बीत गये। तीन दिन तक भोजन न मिला। उसकी पत्नी भी थी, उसका नाम था बाका। राका पति, बाका पत्नी। चौथे दिन वर्षा रुकी, जगल गये। लकडी काट के लौटते थे, लकडी गीली थी, बिक भी न सकेगी, भूखे थे, थके थे। अचानक देखा पति ने, आगे चल रहा था, कि राह के किनारे स्वर्ण-अशरफियो से भरी हुई थैली पडी है। कुछ अशरफिया है, थैली खुल गई है। त्यागी आदमी था, जिसको कबीर 'मुनि' कहेगे। सोचा कि यह मिट्टी यहा क्यो पडी है, और किसी का मन मोह ले! तो उसने उसे गढे मे डाल के उसके ऊपर मिट्टी डाल दी। पत्नी तब तक पीछे से आ गई। उसने उससे पूछा, 'क्या कर रहे हैं?' तो उसने कहा, 'यहा कुछ सोना पडा था। सोना तो मिट्टी है। इसलिए उसको मैंने गढे मे डाल के उसके ऊपर मिट्टी डाल दी है।' पत्नी ने कहा, 'तुम्हे मिट्टी पर मिट्टी डालते शर्म नही आती। मिट्टी ही है तो फिर मिट्टी पर मिट्टी काहे के लिए डाल रहे हो ?

नही, जो कहता है सोना मिट्टी है, उसको अभी मिट्टी नही हुआ, नही तो कहने की कोई जरूरत ही नही।

त्यागी, भोगी दोनो एक ही जगह बधे है। दशाए विपरीत हैं, नजर एक तरफ। विरोध मे है त्यागी उसी के, जिसके पक्ष मे भोगी है। लेकिन दोनो की बेहोशी समान है। तुम बाईं तरफ करवट लेकर सो रहे, वह दाईं तरफ करवट लेकर सो रहा—फर्क नींद मे नही पडता। सो दोनो रहे है। सपना दोनो देख रहे है। पीठ

किये एक-दूसरे की तरफ, दोनो सो रहे हैं। नीद असली सवाल है। दोनो के मध्य मे मनुष्य है।

कबीर कहते हैं, त्यागी, भोगी दोनो नष्ट कर देते हैं चदरिया को। और बीच मे जो मनुष्य है, वह खिचडी जैसा है। सुबह त्यागी, दोपहर भोगी, शाम त्यागी, रात भोगी। वह चौबीस घटे मे कई दफा बदलता है। चौबीस घटे भी देर की बात हो गई।

उन्होंने अभी अमरीका मे एक छोटी-सी घडी बनाई है, और घडी मे डायल पर निक्सन की फोटो बनाई है और हर सेकेण्ड निक्सन की नजर बदलती है—उस घडी मे। मजाक है, लेकिन अच्छी चीज बनायी है। हर सेकेण्ड पर आख डोलती है। पर वह सब आदमी की तस्वीर है। हर सेकेण्ड पे तुम बदलते हो। भूख लगी तुम एकदम भोगी हो जाते हो, पेट भर गया, तुम एकदम त्यागी हो जाते हो, सभोग कर लिया, करवट लेके एकदम त्यागी हो जाते हो, ब्रह्मचर्य का विचार करने लगते हो। सोचते हो, सब बेकार, क्या रखा है इस सब मे! यह तुम कई बार कर चुके हो। सभोग के बाद विषाद न आये, ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है। सभोग के बाद ऊर्जा का क्षय होता है। तुम थके-हारे और कुछ पाते नही, और कितना सोचते थे, कितना सपना बाधते थे—यह मिलेगा, यह मिलेगा, यह मिलेगा! कुछ मिलता नही, विषाद से भर जाते हो।

सभोग के बाद हर आदमी ब्रह्मचर्य का विचार करता है। लेकिन कितनी देर? चौबीस घटे मे फिर ऊर्जा इकट्ठी होगी—भोजन से, हवा से, श्रम से। फिर भोजन ऊर्जा को बना देगा। चौबीस घटे बाद फिर वासना जगेगी, फिर स्त्री का विचार उठेगा। तब तुम बिलकुल भूल जाओगे कि चौबीस घटे पहले ब्रह्मचर्य बडा महत्वपूर्ण मालूम पडा था। अब स्त्री महत्वपूर्ण मालूम पडेगी। और यह वर्तुल घूमता रहा है सदा से। और तुम अनेक बार दोनो काम कर चुके हो। सभोग के बाद तुम सोचने लगते हो त्याग। फिर भूख जगती है, फिर तुम सोचने लगते हो भोग। दोनो के बीच मे--त्यागी और भोगी अतियां है—इन दोनो के मध्य मे खडा हुआ मनुष्य है। और मनुष्य बिलकुल खिचडी है, कॅनफ्यूज है। दोनो का समय बटा हुआ है।

तुम अगर अपना कैलेण्डर रखो, तो तुम बराबर लिख सकते हो सुबह त्यागी, दोपहर भोगी, फिर त्यागी, फिर भोगी, फिर मदिर चले गये, फिर दुकान आ गये, फिर दुकान पे बैठे, मदिर की सोचने लगे, फिर मदिर मे बैठे, दुकान की सोचने लगे। तुम पाओगे कि तुम दोनो का मिश्रण हो। जब दोनो शुद्ध त्यागी और भोगी नष्ट कर देते हैं तो तुम तो दोहरा नष्ट कर दोगे। तुम त्याग और भोग दोनो की धारणाओ से चादर को नष्ट कर दोगे। त्यागी बाए करवट सो रहा है, भोगी दाई करवट सो रहा है। तुम करवटे बदल रहे हो। तुम चादर बिलकुल ही नष्ट कर दोगे। वे कम से कम थिर हैं, अपनी-अपनी दिशा मे लगे हैं। तुम घूम रहो हो।

तुम्हारी उत्तेजित अवस्था इस सूक्ष्म चादर को बिलकुल ही नष्ट कर देगी।

इसलिए कबीर कहते हैं, 'सोई चादर सुर नर मुनि ओढी, ओढी के मैली कीनी चदरिया। दास कबीर जतन से ओढी, ज्यो की त्यो धरि दीनी चदरिया।'

लेकिन दास कबीर ने बड़े सम्हाल के ओढी, बडी सावचेतता से ओढी, बड़े जतन से, होश से ओढी, बड़े ध्यान से ओढी—और 'ज्यो की त्यो धरि दीनी चदरिया'—जैसी दी थी परमात्मा ने, वैसी ही वापस कर दी।

यह मोक्ष है। यह मुक्त की अवस्था है। तुम जो मिला है, उसे वैसा ही वापस कर दो बिना विकृत किए।

बच्चा पैदा होता है, साफ चादर ले के पैदा होता है। सब स्वच्छ, निर्दोष! फिर विकृति आनी शुरू होती, इकट्ठी होनी शुरू होती। बूढा मरता है खडहर की भांति, सब बरबाद! हाथ मे कुछ भी उपलब्धि नही। जो पास था, वह भी गवा के।

कबीर कहते हैं कि ज्ञानी भी मरता है, लेकिन ज्ञानी उसको बचाए रखता है, जो मिला था। उस चादर को वैसा ही निर्दोष रखता है।

कैसे रखोगे इस चादर को निर्दोष? कबीर गृहस्थ हैं, पत्नी है, बच्चा है, कमाते है, घर लाते है—फिर भी कहते है, दास कबीर जतन से ओढी। कला क्या है इस चदरिया को बचा लेने की? कला है होश। कला है विवेक। कला है जाग्रत चेतना। करो—जो कर रहे हो, जो करना पड रहा है। जो नियति है, पूरी करो। भागने से कुछ प्रयोजन नही। लेकिन करते समय कर्ता मत बनो। मदिर जाओ, प्रार्थना करो—कर्ता मत बनो। कर्ता परमात्मा को ही रहने दो, तुम काहे झझट मे बीच मे पडते हो। कर्ता एक—वही सम्हाले! तुम साक्षी रहो। तुम जैसे अभिनेता हो—जैसे एक पार्ट तुम्हे मिला है, एक रोल, ड्रामा के एक हिस्सा है, वह तुम्हे पूरा कर देना है।

जैसे तुम राम बने, रामलीला मे, तो जरूर तुम्हे रोना है। सीता चोरी जायगी, वृक्ष से पूछना है, 'कहा है मेरी सीता,' चीख-पुकार मचाना, सब करना है, लेकिन भीतर, भीतर न तुम्हारी सीता खोयी है, न कोई मामला है। अभिनय है। पर्दे के पीछे जा के तुम फिर गपशप करोगे, चाय पियोगे। रावण से चर्चा करोगे—पर्दे के पीछे। पर्दे के बाहर धनुषबाण ले के खडे हो जाओगे।

जीवन एक लीला है। अगर तुम जतन से चल सको, तो जीवन एक अभिनय है।

मेरे एक मित्र हैं, मनोविज्ञान के प्रोफेसर हैं। उनके घर मे मैं मेहमान था। उनका लडका, एक ही लडका है। नई-नई शादी की थी। वह भोजन नही कर रहा था। तो पत्नी बडी परेशान थी, डाटा-डपटा, फुसलाया सब उपाय किये, लेकिन वह नही कर रहा तो पति ने कहा, ठहर, थोडे मनोविज्ञान का उपयोग करना चाहिए। मनोविज्ञान के प्रोफेसर है। नये-नये पति, नये-नये पिता। तो मै भी देखने लगा कि क्या मनोविज्ञान का उपयोग करते है। तो उन्होने लडके से कहा कि देख, अपना कोट

पहन, टोप लगा, छडी हाथ ले, बाहर जा, समझ कि तू हमारा मेहमान है—अतिथि।

लडका बडा प्रसन्न हुआ। बच्चे हमेशा अभिनय मे बहुत रस लेते हैं। वही उनकी निर्दोषता है। बूढा होता तो कहता कि क्या अभिनय करना? क्या मतलब इससे? क्या सार? लेकिन बच्चा बडा प्रसन्न हुआ, जल्दी उसने कोट पहना, टोप लगाया, छडी हाथ ली, बडी तेजी से बाहर गया। पिता ने कहा, अब बाहर से आ के घटी बजाना, हम दरवाजे खोलेगे। मेहमान का तुम्हे पार्ट अदा करना है।

लडका गया, थोडी देर बाद उसके छोटे-छोटे जूतो की आवाज सीढियो पे सुनाई पडी। आ के उसने घटी दबाई, दरवाजा खोला। उसका स्वागत किया गया। पिता ने कहा कि आइये, आप हमारे मेहमान है। और ठीक वक्त पे आ गये, भोजन तैयार है। चलिए!

लडका गया। ड्राइग टेबल के पास हम सब पहुचे। लडके ने अपना एक कुर्सी पे टोप, अपनी छडी रखी। पिता ने कहा कि जो भी रुखा-सूखा है, मेहमान हैं आप, स्वीकार करिये! लडके ने कहा, 'क्षमा करिए, मै भोजन ले कर ही आया हू।'

जब अभिनय ही था, तो पूरा ही उसने किया।

जीवन एक अभिनय है। उससे ज्यादा उसे समझा कि भटके। मच बडी है, माना, बहुत पात्र है, माना—लेकिन जीवन अभिनय है। और तुम कर्ता मत बनना! इतना अगर जतन रख लिया तो तुम भी कह सकोगे—

'दास कबीर जतन से ओढी, ज्यो की त्यो धरि दीनी चदरिया।'

आज इतना ही।

दिनाक १६ नवम्बर, १९७४,
श्री रजनीश आश्रम, पूना

भक्ति का मारग झीना रे ।
नहि अचाह नहि चाहना, चरनन लौ लीना रे ।
साधन के रसधार में रहै निसदिन भीना रे ।।
राग में श्रुत ऐसे बसै, जैसे जल मीना रे ।
साईं सेवत में देइ सिर, कुछ विलय न कीना रे ।।

६

भक्ति का मारग झीना रे

कबीर एक महान समन्वय है एक संगम—जैसे प्रयागराज, एक तीर्थ—जहां जो भी श्रेष्ठ है, वह सभी संयुक्त हो गया है। गंगा, यमुना, सरस्वती तीनों वहां मिल गई हैं। ज्ञान, कर्म और भक्ति, तीनों का वहां मेल हो गया है।

कर्म तो दिखाई पड़ता है, भक्ति को छिपाना मुश्किल है। ज्ञान बहुत भीतरी धारा है। इसलिए तीर्थराज प्रयाग में गंगा-यमुना तो दिखाई पड़ती हैं, सरस्वती अदृश्य है। सरस्वती ज्ञान की देवी है।

इस बात को ठीक से समझ लें।

कर्म तो दिखाई पड़ेगा ही, क्योंकि कर्म का अर्थ ही है बाहर। भक्ति को छिपाना मुश्किल, जैसे किसी को प्रेम हो जाए तो प्रेम को छिपाना मुश्किल। इस दुनिया में सब चीजें छिपाई जा सकती हैं, प्रेम को छिपाना संभव नहीं है। प्रेमी के पैर का ढंग बदल जायेगा, आंख बदल जायेगी, एक नशा छा जायगा, एक मस्ती घेर लेगी एक राग प्रतिध्वनित होने लगेगा। उठेगा, बैठेगा, चलेगा—लेकिन कुछ बदल गया! कोई भी देख लेगा, अंधा भी पहचान लेगा। इसलिए प्रेमी कभी प्रेम को छिपा नहीं पाए। साधारण प्रेम नहीं छिपा पाए तो परमात्मा का प्रेम तो असंभव है। प्रेम तो ऐसे जलेगा जैसे अंधेरे घर में दीया जलता हो। दूर-दूर तक प्रकाश दिखाई पड़ेगा।

ज्ञान प्रगट है गंगा की भांति। कर्म प्रगट है गंगा की भांति। प्रेम, प्रगट और अप्रगट के मध्य में है, यमुना की भांति। ज्ञान की धारा बहुत भीतर है, वह सरस्वती है। इसलिए ध्यान को भर छिपाया जा सकता है। सच तो यह है कि ध्यान को प्रगट करना मुश्किल है।

इसलिए जिन्होंने सिर्फ ध्यान के मार्ग पर ही यात्रा की है, जैसे सूफी हैं, वे छिप कर रह सकते हैं। सूफियों का पता भी नहीं चलेगा, तुम्हारे पड़ोस में भी रहता हो तो भी पता नहीं चलेगा। पत्नी को पता नहीं चलेगा कि पति किसी ध्यान की धारा में डूबा हुआ है। क्योंकि सारा खेल बहुत गहरे में है, छिपाया जा सकता है वस्तुतः प्रगट करना मुश्किल है। प्रेम को छिपाना कठिन है। प्रेम को बताना भी

कठिन है, छिपाना भी कठिन है। वह ठीक मध्य मे है। कर्म प्रगट है। और कबीर तीनो हैं।

कबीर जीवन भर कर्म से कभी अलग न हटे। कर्म को उन्होने कभी छोडा नही। भक्त वे हैं। उनका पूरा जीवन कीर्तन की मस्ती से भरा हुआ जीवन है। सुबह से रात तक वे गाते ही रहते हैं। और वे गीत कुछ साधारण नही। वह गीत कठ से नही आया है। और उस गीत का जन्म बुद्धि और विचारो से नही हुआ है। वह गीत उनके प्राणो के प्राण से उठा है। उस गीत मे कविता कम है, छदबद्ध वह नही है। उसमे बडी भूल-चूके हैं। लेकिन उस गीत मे हृदय है। और हृदय ने कब छद माने है, कब नियम माने हैं! सब नियम तोड कर हृदय बहता है। हृदय तो ऐसा है, जैसे वर्षा मे पूर आ गई गगा, सब किनारे तोड कर बहती है।

बुद्धि सूखी है, जैसे गर्मी की गगा क्षीण हो जाती है, किनारो मे बध के बहती है। हृदय आपूर होकर बहता है।

तो कबीर गाते रहे जीवन भर। ये सारे गीत उन्होने बनाए नही, गाये हैं।

एक तो कवि होता है, जो बनाता है, जो श्रम करता है, जो सजाता है, भाषा को बिठाता है, व्याकरण, छद, नियम सबकी व्यवस्था करता है। और एक ऋषि है, जो सिर्फ गाता है। ऋषि भी कवि है, लेकिन कवि ऋषि नही है। ऋषि भी गाता है, लेकिन उसका गीत कोई बौद्धिक आयोजन, कोई व्यवस्था, भाषा, व्याकरण, छद नही है। उसका गीत तो सिर्फ हृदय मे आ गया पूर है। अपने भीतर नही रोक सकता, वह बाहर बहता है। उसका गीत उसकी मस्ती है।

कबीर जीवन भर गाते रहे। उस गीत मे उनकी भक्ति बही है। भक्ति को वे छिपा नही सके—कोई नही छिपा सकता। लेकिन ध्यान को वे भीतर सम्हाले रखे। उसका नाम जतन है। वह भीतरी घटना है। उसका बाहर के जगत से कोई लेना-देना नही। वह अत्यत एकात मे घटती है। कर्म मे तो तुम हो और सारा ससार है। भक्ति मे तुम हो और तुम्हारा प्रेमी परमात्मा है। ध्यान मे तुम बिलकुल अकेले हो। ध्यान मे परमात्मा भी नही है।

कबीर ने कहा है, 'हेरत-हेरत हे सखी, रहा कबीर हेराइ।' खोजते-खोजते खुद मैं खो गया। अब मेरा ही पता नही चलता कि कहा हू। क्या खोजने निकला था वह तो बात दूसरी है, जो खोजने निकला था, उसका भी अब पता-ठिकाना नही।

ध्यान मे ऐसी घडी आती है, जब तुम खोजने जो चले हो, वह तो मिलता नही, तुम खो जाते हो। लेकिन तुम्हारे खोते ही वह मिल जाता है। इसलिए एक बहुत बडा विरोधाभास, पैराडॉक्स है तुम कभी परमात्मा से न मिल सकोगे। क्योकि जब परमात्मा घटेगा, तब तुम न रहोगे। जब तक तुम हो, तब तक वह घट नही सकता। इसलिए मनुष्य का परमात्मा से कभी मिलन नही होता, परमात्मा का ही परमात्मा से मिलन होता है। मनुष्य तो खो जाता है राह मे। मनुष्य तो खोजते-

खोजते ही गल जाता है, पिघल जाता है। मिलने की घडी आते-आते तुम अचानक चौंक के देखोगे कि जो खोजने निकला था, वह कही रास्ते मे छूट गया। और जो पहुचा है मजिल तक, इसकी तो पहचान ही न थी कि यह भी मेरे भीतर है। और जो पहुचा है मजिल तक, यह तो सदा मेरे भीतर था, मजिल तक आने की कोई जरूरत न थी। जरा गर्दन झुका ली होती, तो अपने भीतर ही देख लिया होता।

मजिल भीतर है, परमात्मा भीतर है, खोजने वाले के खोने की कमी है। ध्यान मे तो बिलकुल अकेले हो। ज्ञान मे बिलकुल अकेले हो। ज्ञान की विधि ध्यान है। भक्ति की विधि प्रेम है। कर्म की विधि सेवा है।

क्राइस्ट, सेवा को सारा साधन माने। इसलिए ईसाइयत मे सेवा आराधना बन गई।

बुद्ध, ध्यान को सारी साधना का केन्द्र बनाए। इसलिए बुद्ध-धर्म मे सेवा, भक्ति दोनो खो गये, केवल ध्यान रह गया। कबीर तीनो हैं। मीरा हैं, चैतन्य है—वे अकेले भक्ति से जी रहे है।

इसलिए कहता हू कबीर तीर्थराज प्रयाग है, तीर्थों मे श्रेष्ठ तीर्थ है, क्योकि तीनो धाराए उनमे आ जाती हैं, और मिल जाती है। उनसे बडी सिन्थीसिस, उनसे बडा समन्वय घटित नही हुआ है। इसलिए कबीर को समझना भी मुश्किल है। क्योकि जहा तीन-तीन अनूठी धाराए आ के गिरती हो वहा बडी असुविधा हो जायेगी, तर्क काम न पडेगा। कभी कबीर यह कहते मालूम पडेंगे, कभी वह कहते हुए मालूम पडेगे। कभी कहेगे, कभी उसका विरोध करेगे। क्योकि जो कर्म के लिए सच है, वही भक्ति के लिए सच नही, और जो भक्ति के लिए सच है, वह कर्म मे बाधा बन जाता है। इसलिए कबीर जैसे व्यक्ति के पीछे, एक बडा रहस्य छूट जाता है, जिसको खोलने की चेष्टा चलती है सदियो तक, लेकिन खोला नही जा सकता।

आज का जो गीत है, वह भक्ति से सबधित है। पहले हम थोडा भक्ति को समझ ले, फिर इस गीत मे उतरे।

प्रेम हम जानते हैं, भक्ति से हमारा कोई सबध नही है। और प्रेम भी हम बहुत नही जानते है, कभी कण, क्षण। कभी थोडी-सी झलके उसकी जीवन मे उतरी है। कभी क्षण भर को ऐसा लगा है किसी के साथ कि हम खो गये। जहां भी खोने का अनुभव हो, समझना प्रेम। अगर खोने का अनुभव जीवन मे कभी न हुआ हो, समझना कि प्रेम से अछूते रह गये। और जो प्रेम से अछूता रह गया, वह भक्ति को न समझ पायेगा। क्योकि जो पास के सरोवर मे ही स्नान करने न गया, उसकी यात्रा सागर तक कैसे हो सकेगी! जिसने कभी खिडकी के बाहर ही न झाका, वह आकाश के नीचे कैसे जा सकेगा! जिसने सामान्य प्रेम को न जाना, वह असामान्य भक्ति को कभी न जान सकेगा।

इसलिए जीवन के द्वार खुले रखना! प्रेम कही से भी उतरे, उसे उतरने देना।

क्योंकि वह भक्ति की पहली झलक है। वह भक्ति की पहली किरण है। और अगर तुमने प्रेम के द्वार बद कर लिये तो तुम कितने ही मदिरो में सिर पटको, और मस्जिदो मे चीखो, और पुकारो, और गिरजाघरो मे गीत गाओ—तुम्हारे सब गीत, चीख-पुकार व्यर्थ है, कही भी वह सुनी न जा सकेगी। क्योंकि तुम्हारी सब चीख-पुकार तुम्हारे सिर से आयेगी। वह तुम्हारे हृदय से नही आ सकती। हृदय तो बद ही पडा रहा। वह बीज तो टूटा ही नही। वह तो अकुर ही तुम्हारे भीतर नही हुआ। तुम कहोगे, 'नही, प्रेम हमने किया है। पत्नी से हमारा प्रेम है, बच्चो से हमारा प्रेम है।' लेकिन थोडा गौर करके देखना, क्योंकि प्रेम की परिभाषा यही है कि जिसमे तुम खो जाओ। कभी ऐसा क्षण आया है जब पत्नी मे तुम खो गये? नही, सभी पतियो की चेष्टा है कि पत्निया उनमे खो जाए। सभी पत्नियो की चेष्टा है कि पति उनमे खो जाए। प्रेम दूसरे को अपने मे नही डुबाना चाहता, अपने को दूसरे मे डुबाता है। और जो अपने को दूसरे मे डुबाता है, वह दूसरे के लिए तो अनायास ही डुबाने का कारण बन जाता है।

तो तुम जिसे प्रेम कहते हो, वह प्रेम नही है। वह भी शोषण का एक ढग है। वह भी हिंसा का एक मार्ग है।

अगर तुम अपने प्रेमी पे कब्जा करना चाहते हो, तो तुमने प्रेम जाना ही नही। तुमने प्रेम का पहचाना ही नही। प्रेम कब्जा नही करना चाहता, कब्जा देना चाहता है। प्रेम मालिक नही होना चाहता, मालिक बनाना चाहता है। इसलिए तो कबीर बार-बार कहते है 'कहे दास कबीर!' वह जो 'दास' शब्द है, समझ लेना।

वह दास का अर्थ क्या है?

उसका अर्थ है कि प्रेम कब्जा देना चाहता है, वह दूसरे को मालिक बनाना चाहता है। तुम्हारा सारा प्रेम मालिक बनना चाहता है, इसलिए झूठा है। जरा-सी तरकीब और सब भूल हो गई। तुम दूसरे को दास बनाना चाहते हो। और प्रेम खुद दास बनना चाहता है।

प्रेम अति विनम्र है। प्रेम आक्रमक नही है। प्रेम तो निमत्रण है, आक्रमण नही। प्रेम तो बुलावा है। प्रेम तो अपने को मिटाने की तैयारी है। और तुम जब मिटाने को तैयार होते हो, तब दूसरा भी मिटने का भय छोड देता है। और जब तुम दूसरे पे कब्जा करना चाहते हो तो स्वभावत दूसरा भी तुम पे कब्जा करना चाहता है। प्रेमियो की यही तो कलह है। प्रेम मे तो कलह हो ही नही सकती। लेकिन प्रेमी निरतर लडते देखे जाते है। उनकी कलह का मूल आधार यही है कि वे एक-दूसरे को मिटाने मे लगे हैं। पत्नी कितना ही कहती हो कि वह दासी है, लेकिन चेष्टा उसकी मालकिन बनने की है। बाप कितना ही कहता हो बेटे के प्रति कि मेरा प्रेम है, लेकिन बाप बेटे मे खोने को तैयार नही है। बाप चाहता है, बेटा बाप का अनुसरण करे, बाप की छाया बने। बाप बेटे को मिटाना चाहता है 'मेरी आज्ञा

मैं जो कहू, वही ठीक हो तेरे लिये भी। मैं जो बताऊ वही मार्ग बने। मैं जो कहू वही तेरी दिशा हो। तू मेरे इशारे से चले।' तो बाप प्रसन्न है।

जब कोई तुम्हारे सब इशारे मान के चलता है, तब तुमने उसे अपने मे मिटा लिया। यह प्रेम नही है।

अगर बाप सच मे ही बेटे को प्रेम करता है, तो वह बेटे को कहेगा कि तू मेरे पीछे चलने की चिन्ता मत कर। तू, तू ही जा। मेरा सारा सहारा तेरे लिए, सारी शक्ति तेरे लिए, लेकिन तू मेरी छाया मत बनना। तू खुद बनना। तू स्वय होना। तू अपने ही जीवन की सुगन्ध को पाना। भला उस सुगन्ध को पाने मे तुझे मेरी आज्ञाए तोडनी पडे, क्योकि मेरी आज्ञाओ का क्या अर्थ! भला उस सुगन्ध को पाने मे तुझे मुझसे दूर हट जाना पडे। मेरे पास होने का और प्रयोजन भी क्या हो सकता है, अगर तेरी सुगन्ध न खिले!

बाप अगर प्रेम करता है तो बेटे मे खो जायेगा। बेटा अगर प्रेम करता है तो बाप मे खो जायेगा। पत्नी अगर प्रेम करती है तो पति मे खो जायेगी। लेकिन हम खोने से डरते हैं। खोने से ऐसा लगता है खो जायेगे, मिट जायेगे, तो हम बचेगे ही नही। अहकार प्रताडित होता है। अहकार बहुत भयभीत होता है कि खो गया अगर तो फिर क्या होगा! इसलिए अहकार ऐसे इन्तजाम करता कि प्रेम घट ही न पाए। ध्यान रखना, प्रेम के विरोध मे अहकार से बडी और कोई चीज नही है। घृणा प्रेम का विरोध नही है, प्रेम का अभाव है। अहकार प्रेम का विरोध है। क्योकि अगर प्रेम मिटना है, तो अहकार बचने की चेष्टा है मैं बचा रहा हू! इसलिए धीरे-धीरे अहकार के कारण हम मिटने के सब द्वार बन्द कर देते है। इस-लिए हमने प्रेम की जगह विवाह ईजाद किया है। क्योकि प्रेम खतरनाक है। विवाह सुविधापूर्ण है। विवाह एक कनवीनीयन्स है, एक सुविधा है। प्रेम एक उपद्रव है। और प्रेम मे सदा डर है कि चूके कि गये! खाई सदा पास है। और रास्ता बीहड है और साफ-सुथरा नही है। विवाह का रास्ता राजपथ है, सीमेंट कान्क्रीट का है। हजारो उस पे चल रहे हैं, आगे-पीछे बडी भीड है, सुरक्षा है। पुलिस चारो तरफ तैनात है। अदालते किनारे खडी हैं। मजिस्ट्रेट अपनी वेशभूषा मे सजे तैयार हैं।

विवाह सामाजिक सस्था है; प्रेम, व्यक्तिगत छलाग है। प्रेम मे तुम अकेले हो, विवाह मे पूरा जगत तुम्हारे साथ है। विवाह मे कुछ गडबड होगी तो अदालत मे तुम पूछताछ कर सकोगे। वकील सहारा बन सकेगे। कानून की किताबो मे रास्ते खोजे जा सकेगे।

प्रेम मे न कोई वकील साथ होगा, न कोई कानून की किताब होगी। प्रेम की दुनिया मे अब तक कोई किताब प्रवेश नही कर पाई, और किसी वकील को वहा कोई जगह नहीं है। प्रेम मे तुम निपट अकेले हो। अकेले होने मे डर लगता है।

और फिर प्रेम का मतलब ही मिटना है। और मिटने मे लगता है, जैसे मृत्यु हो

जायेगी। इसे ध्यान रखो।

तीन चीजो से मैं अनुभव करता हू, लोग डरे हुए हैं। सैकडो लोगो के जीवन की उलझनो को सुलझाते-सुलझाते तीन चीजें मैं निकाल पाया, जिनसे वे डरे हुए हैं। एक प्रेम .और जो प्रेम से डरा है वह परमात्मा से डर गया। क्योकि वह उसका आखिरी परिणाम है। दूसरा मृत्यु और जो मृत्यु से डर गया, वह जीवन से डर गया। क्योकि मृत्यु जीवन की अतिम घटना है, शिखर है, निष्पत्ति है, सारे जीवन का निचोड है। और तीसरा ध्यान। क्योकि ध्यान प्रेम और मृत्यु दोनो जैसा है। उसमे मरना भी होता है, और परमात्मा का पाना भी होता है, इसलिए सबसे ज्यादा खतरनाक ध्यान है। प्रेम से डरे कि परमात्मा का द्वार बद हुआ।

जब तुम सामान्य किसी स्त्री और किसी पुरुष के साथ भी न डूब के मिट सके, तो तुम इस विराट अस्तित्व के साथ कैसे डूब पाओगे ? तुम लडोगे, सघर्ष करोगे, तुम अपने को बचाओगे। और जितना तुम बचाओगे, उतना ही तुम पाओगे कि तुम कमजोर होते जा रहे हो। क्योकि किससे तुम लड रहे हो ? तुम अश हो इस विराट के, इससे तुम लड कैसे सकोगे ? तुम इसी से पैदा हुए हो। तुम एक लहर की भाति हो, लहर सागर से लडेगी कैसे ? तुम वृक्ष मे खिली हुई एक नयी कोपल हो, यह कोपल पूरे वृक्ष से सघर्ष कैसे करेगी ? और अगर सघर्ष भी करेगी तो क्या जीत सकती है ? हार निश्चित है। जो भी लडेगा, वह हारेगा। जो भी अपने को बचायेगा, वह मिटेगा।

जीसस ने कहा है, बचाया कि तुम खो जाओगे। खो गये कि फिर तुम्हारे मिटने का कोई उपाय नही है। हम समस्त से लड कैसे सकेगे ? जैसे मेरा हाथ मुझसे ही लडने लगे, तो हाथ जीतेगा कैसे ? हाथ पागल हो गया—हारेगा, मिटेगा, अपने ही श्रम से, अपने को ही नष्ट कर लेगा। विराट के साथ तो लीन होना पडेगा। सब सघर्ष छोड देना पडेगा। वहा तो शरण—कबीर कहते है कि वहा तो चरनन मे वहा तो चरणो मे विलीन हो जाना पडेगा।

उस विराट छलाग का पहला पाठ प्रेम है। लेकिन हम प्रेम से डर गये हैं। हमने विवाह का आयोजन कर लिया है। विवाह शुभ है अगर प्रेम के फूल की तरह आए, अगर वह प्रेम मे ही लगे। लेकिन विवाह अशुभ है, अगर वह आयोजन से आए, अगर व्यवस्था से आए।

बडी हैरानी की बात है—मा, बाप, परिवार, पडित, पुरोहित, समाज, पच, वे तय करते है। और जिनके बाबत वे तय करते है, उनसे भी कभी पूछते भी नही। वे जानते है कि उनसे पूछना खतरनाक है। क्यो ? क्योकि वे जानते हैं, वे अभी अनुभवी नही हैं। ध्यान रखो, अनुभव हमेशा प्रेम के विरोध मे होगा। अनुभवी का मतलब है अहकारी। गैर-अनुभवी का मतलब है निरहकारी।

बच्चे प्रेम मे पड सकते है, बूढे प्रेम मे नही पडते। इतना अनुभव हो गया है उन्हे,

और अहकार इतना अनुभव से भर गया है, कि अब ऐसी भूल वे नही कर सकते। और जिसे वे भूल कह रहे है, उन्हे पता पता नही, वह भूल नही है। उसको चूक कर ही, वे सब चूक गये हैं। क्योकि बडी-से-बडी कला मिटने की, पिघलने की कला है—इस तरह पिघल जाने की कि सीमा खो जाए, इस तरह पिघल जाने की कि मुझे पता ही न चले कि मैं हू।

प्रार्थना की पहली झलक प्रेम मे आती है। और परमात्मा की अतिम परिणति भी प्रेम मे ही होती है। भक्ति प्रेम का विस्तार है। लेकिन बीज हो तो विस्तार हो जाए। बूद हो तो सागर भी बन सकता है। बूद ही न हो तो क्या करे?

इसलिए पहले तो भक्ति के मार्ग पर जाने के क्षण मे सोचना कि जीवन मे प्रेम आया? अगर वह नही आया तो वह मार्ग भूल कर मत चुनना। क्योकि तुम्हारा सब प्रयास व्यर्थ होगा। वह बिना बीज के फसल करने जैसी बात है। तुम बैठे रहोगे और फसल न आयेगी। तुम चिल्लाओगे, कोई उत्तर न आयेगा। तुम मदिर मे सिर पटकोगे, सिर टूट जाये, लेकिन कुछ घटेगा नही, क्योकि बीज ही नही है।

जिनके जीवन मे प्रेम न आ पाया हो, भक्ति उनके लिए मार्ग नही है। उनके लिए ध्यान, उनके लिए कर्म—लेकिन भक्ति नही। क्योकि ध्यान बिना प्रेम के भी हो सकता है। तुम अकेले हो, दूसरे से कुछ सबध जोडना नही है। भक्ति तो आत्यतिक सबध है। ध्यान सब सबधो का तोडना है। दोनो बिलकुल विपरीत दिखाई पडते है, लेकिन परिणाम एक है।

प्रेम को समझ लेना।

प्रेम का सूत्र है डूबना, मिटना, पिघलना, अपने को खोना। और जब यह खोना किसी एक व्यक्ति के साथ नही बल्कि समस्त के साथ हो जाये, तो भक्ति। भगवान कोई व्यक्ति नही है। भगवान तो समष्टि है, सबका नाम भगवान है। जब तुम्हारा प्रेम ऐसा विराट हो जाए कि चाहे चट्टान हो, चाहे वृक्ष हो, चाहे आदमी हो, चाहे जानवर हो, जहा तुम आख डालो, वहा भगवान दिखाई पडने लगे, जहा तुम्हारी आख जाए, वही तुम उसे मौजूद पाओ, जब तुम्हारा प्रेम ऐसा सघन हो जाए कि पत्ते-पत्ते मे उसकी ही झलक मिलने लगे और कण-कण मे उसकी धुन सुनाई पडने लगे—तब भक्ति है।

पर प्रेम का पाठ सीख लेना जरूरी है।

मेरे देखे, यह ससार एक पाठशाला है, जहा हम परमात्मा के लिए तैयार होते हैं। यह ससार परमात्मा के विरोध मे नही है, यह उसकी तैयारी है। और इस ससार के सारे सबध उस आत्यतिक सबध की पूर्व-व्यवस्थाए है। ऐसा होना ही चाहिए, क्योकि ससार अगर परमात्मा के विरोध मे हो, परमात्मा अगर ससार के विरोध मे हो, तो ससार बच ही कैसे सकता है! इसके होने का आधार ही खो जायेगा। इसलिए जिन लोगो ने सिखाया है कि परमात्मा को पाना है तो ससार के विरुद्ध हो

जाओ, उन्होने गलत सिखाया है। ससार के विरुद्ध होने से परमात्मा नही मिलेगा, ससार के अतिक्रमण से परमात्मा मिलेगा। और इन दोनो बातो मे बडा भेद है।

अतिक्रमण का अर्थ है ससार के ऊपर उठ जाओ। वह विपरीत जाना नही है। ससार का अनुभव जितना सघन होगा, उतने ही तुम ऊपर उठने लगोगे। जैसे-जैसे तुम प्रेम मे उतरोगे—ससारिक प्रेम मे—वैसे-वैसे तुम पाओगे कि ससार खोता जाता है और परमात्मा प्रगट होता जाता है। अगर तुम एक व्यक्ति के भी प्रेम मे ठीक से डूब जाओ, तो वही व्यक्ति थोडे दिनो में खो जायेगा और दरवाजा बन जायेगा, और उस दरवाजे से तुम पाओगे परमात्मा की पगध्वनि सुनाई पडने लगी। लेकिन तुम एक के भी प्रेम मे नही खो सकते, तुम बडे कठोर हो। तुम्हारा हृदय बिलकुल पत्थर की तरह हो गया है। तुम प्रेम की बातचीत भी करते हो, कविता भी गुन-गुना लेते हो, लेकिन सब सिर मे होती है बातचीत, हृदय से कही कोई कपन नही उठता, हृदय अछूता ही रह जाता है, तुम्हारी बुद्धि का ही सारा उपक्रम होता है। और जब तक हृदय न छू जाए, जब तक हृदय आप्लावित न हो जाए, जब तक हृदय मे रसधार न बहने लगे, जब तक हृदय मे तुम्हे अनुभव न होने लगे, कि एक नया कपन, एक नयी सिहरन पैदा हो गई है ।

यह जो धडकन है हृदय की, इस धडकन के पीछे छिपी एक और धडकन है, उसे तुमने नही सुना। यह धडकन तो सिर्फ खून की चाल से पैदा होती है। एक और धडकन है, जो प्रेम की चाल से पैदा होती है। सदा से, अलग-अलग लोगो मे, पृथ्वी की अलग-अलग जातियो मे, अलग-अलग सस्कृतियो मे, एक-दूसरे से बिलकुल अपरि-चित अनजान, लेकिन जब भी प्रेम की बात उठती है, जब भी प्रेम की चर्चा होती तो लोग हृदय पर हाथ रख लेते। इस सबध मे कोई भेद नही है। यह हैरानी की बात है। हर चीज मे भेद है, सिर्फ इस एक सबध मे मनुष्य-जाति मे कोई भेद नही है। निश्चित हां, यह हृदय पे हाथ रख लेना कोई सास्कृतिक और सामाजिक घटना नही हो सकती—अस्तित्वगत, एक्जिस्टेशियल होगी, क्योकि सामाजिक होती तो भेद होते।

हर चीज मे भेद है। ऐसी जातिया हैं जहा हा' के लिए सिर को ऊपर-नीचे हिलाया जाता है। ऐसी जातिया है जहा 'हा' के लिए दाए-बाए हिलाया जाता है। ऐसी जातिया है जहा 'ना' के लिए हम दाया-बाया हिलाते हैं। ऐसी जातिया हैं जहा 'ना' के लिए हम ऊपर-नीचे हिलाते हैं। निश्चित ही वह सिर का हिलाना सास्कृतिक, सामाजिक सिखावन है, वह अस्तित्वगत नही है।

छोटी-छोटी चीजो मे फर्क हैं। मैंने बहुत खोज की, एक ही चीज मे फर्क नही है—और वह है जब भी प्रेम की बात उठे, तो लोग हृदय पे हाथ रख लेते हैं। यह हृदय पर हाथ रखना अस्तित्वगत है। किस हृदय पे हाथ रखते है? अगर हम शरीर-शास्त्री से पूछे तो वह कहेगा तुम पागल हो, यहा कुछ भी हृदय जैसा है नही,

सिर्फ फेफडे है, और पम्पिग, खून को पम्प करने की व्यवस्था, पम्पिग स्टेशन है, और तो कुछ वहा है नही। और यह जो धडकन है, यह धडकन तो सिर्फ खून की गति से पैदा हो रही है। इस हृदय की बात ही नही है, यह तो फेफडा ही है। लेकिन इस हृदय के ठीक भीतर छिपा हुआ एक और हृदय है। जब तुममे प्रेम की रसधार बहती है, तब उसकी धडकन सुनी जाती है। कबीर उसी हृदय की बात कर रहे हैं। लेकिन वह रसधार बहती तब है, जब अहकार की चट्टान टूट जाती है। अहकार की चट्टान ही उस हृदय के द्वार पर रखी है। उसकी वजह से ही दूसरी धडकन तुम सुन नही पाते हो।

अब हम इन सूत्रो मे प्रवेश करने की कोशिश करे।

'भक्ति का मारग झीना रे।'

कहते है कबीर कि भक्ति का जो मार्ग है, बहुत नाजुक है, बहुत डैलीकेट है। होगा ही। कर्म का मार्ग सबसे ज्यादा स्थूल है—भूखे को रोटी दो, बीमार का पैर दाब दो, गरीब की सहायता करो, असहाय की सेवा मे लगो। कर्म का मार्ग सबसे ज्यादा स्थूल है। इसलिए पश्चिम मे क्रिश्चियेनिटी का इतना प्रभाव पड सका। क्योकि पश्चिम की पकड बहुत स्थूल है, मैटीरयलिस्टिक है। जितना ज्यादा पदार्थ-वादी व्यक्ति होगा, उतना ही ज्यादा कर्म का मार्ग निकट मालूम पडेगा। क्योकि पदार्थ के सबसे ज्यादा करीब कर्म है। कर्म जैसे तुम्हारे घर का पहला द्वार है।

करो, लेकिन जो भी करो, उसे परमात्मा को सर्मपित करके करो। इसलिए क्रिश्चियेनिटी बहुत प्रभावी हुई। आधी दुनिया आज ईसाइयत के साथ है। उसका कारण भी साफ है। क्योकि ईसाइयत की सारी प्रक्रिया कर्म की है। दूसरे धर्मों को भी ईसाइयत मे प्रतियोगिता करनी पडती है। इसलिए वे भी कर्म की थोडी-थोडी बाते करते है, लेकिन जमती नही बात क्योकि उनके प्रयोग ज्यादा गहरे और सूक्ष्म है और उनसे मेल नही खाते।

हमने कभी सोचा ही नही कि सन्यासी जा के गरीब के पैर दबायेगा। यहा तो गरीब ही सन्यासी के पैर दबाता रहा है। सेवा हम सन्यासी की करते रहे है। सन्यासी से हमने सेवा की अपेक्षा नही की। हम सोच ही नही सकते कि बुद्ध और महावीर अस्पताल मे मरीजो की सेवा कर रहे है। मरीज करने भी न देगे। बगावत हो जायेगी उनके खिलाफ। हट जायेग, भाग जायेगे मरीज कि हमारी सेवा यह कैसे हो सकता है! क्योकि बुद्ध और महावीर, अन्तिम जो गहरे से गहरा तत्व है ध्यान, वहा खडे हैं।

ध्यान सूक्ष्म है, अति सूक्ष्म है। कर्म स्थूल है अति स्थूल है। दोना के मध्य मे नाजुक भक्ति है। लेकिन भक्त की भी बहुत प्रभावना नही हो सकी। क्योकि भक्त गाता है, नाचता है, मस्त है। लेकिन तुम्हारी मस्ती से दूसरे को क्या मिलेगा? भूखे को रोटी नही मिलेगी। बीमार का इलाज नही हो जायेगा। इसलिए दोनो

मार्ग ज्ञान और भक्ति के धीरे-धीरे धूमिल हो गये। और एकदम स्थूल जो है, सबसे ज्यादा स्थूल जो है, कर्म का मार्ग, वह सामने रह गया।

गीता पर हजारो टीकाए हैं—कोई एक हजार से ऊपर। सबने स्थूल टीका लोकमान्य तिलक की है, लेकिन बडी प्रभावी हुई, इस मुल्क को खूब प्रभावित किया, क्योकि कर्म पर लोकमान्य का जोर है। शकर की सबसे ज्यादा सूक्ष्म है, क्योकि ज्ञान पर जोर है। रामानुज की डेलीकेट है, नाजुक है—भक्ति पर जोर है। लेकिन रामानुज और शकर सब फीके पड गये, लोकमान्य की व्याख्या बडी प्रभावी हो गई।

भारत भी धीरे-धीरे स्थूल की तरफ गिरा है। अब हमको भी वही दिखाई पडता है जो पदार्थ है। अब हम भी पदार्थ से ज्यादा कुछ नही देख पाते। सूक्ष्म को देखने की हमारी क्षमता भी कम हो गई है। नाजुक से हमारे सबध टूट गये हैं। नाजुक को समझने के लिए एक सास्कृतिक ऊचाई चाहिए, एक परिष्कार चाहिए।

मुल्ला नसरुद्दीन ने एक शास्त्रीय सगीतज्ञ को निमत्रित किया था—ख्यातिलब्ध शास्त्रीय सगीतज्ञ था। बडी कठिनाई से उपलब्ध था। सब पास-पडोसियो को निमत्रित किया था। जब सभा बैठ गई, सगीत शुरू होने को हुआ, तो सगीतज्ञ ने बडे आदर भाव से पूछा कि मुल्ला, आप कौन-सा राग पसद करते हैं?

मुल्ला ने कहा, 'राग-वाग कोई भी चलेगा। अपना प्रयोजन तो पडोसियो को परेशान करने से है।'

शास्त्रीय सगीत बडी नाजुक बात है। लेकिन अगर समझ मे न आता हो तो सिर्फ परेशानी पैदा होती है।

अब भक्त परेशानी पैदा करता है, समझ मे नही आता। अगर भक्त आपके बीच खडा हो, तो या तो आप समझेगे पागल है, बुद्धि खराब हो गई। अब भक्त से हमारे सबध नही जुडते। क्योकि हम इतने नीचे तल पे खडे हैं कि वहा से वह नाजुक फूल दिखाई नही पडता। आखे पहचान नही पाती। अगर चैतन्य वापस लौट आए, और तुम्हारे गाव मे नाचते हुए गुजरे, मीरा आ जाए और गीत गाए तुम्हारी गली मे, तो तुम बहुत रस पा न सकोगे।

कठिन है, क्योकि तुम यह न देख पाओगे कि कहा से यह घटना घट रही है! चैतन्य जब गा रहे हैं और नाच रहे है, तो उस समय भी बगाल मे लोगो ने कहा कि यह लपट है तो अब तो बडी मुश्किल है। अब तो तुम समझोगे कि मालूम होता है प्रभुपाद का शिष्य है, कृष्णा-काशयसनैस मे सम्मिलित हो गया है।

चैतन्य को समझने के लिए भाव-दशा चाहिए। भाव विचार नही है। विचार तो तुम शास्त्र से पा सकते हो, विद्यालय मे सीख सकते हो। लेकिन भाव एक अनुभव है, अगर हो तो हो, न हो तो न हो! भाव का अर्थ है कि तुमने भी उसे जाना है, एक झलक तुम्हे भी मिली है, तुम भी उसे जिये हो। न सही उतना गहरा, न सही उतने दूर गये हो, लेकिन नदी मे उतर कर दो हाथ तुमने भी तैरने के मारे

हैं, तुम्हे भी तैरने का पता है कि क्या है।

विचार उधार हो सकता है, भाव कभी उधार नही हो सकता। भाव अनुभव हो तो हो, नही हो तो न हो। कितना ही कहो कि तैरने मे बडा आनद है, बडा पुलक है तैरने का, बडा रहस्य है—और तुम कभी नदी मे नही उतरे, तुम कहोगे, होगा! तुम सोचोगे, इसमे होगा क्या, ज्यादा से ज्यादा पानी मे हाथ-पैर मारने से हो क्या सकता है! लेकिन तुम्हे खयाल ही नही, जो तैरने वाले के अनुभव मे आता है, वह पानी मे हाथ-पैर मारना नही है, वह पानी और स्वय के बीच एक लय-बद्धता पैदा करना है। और जब तैरने वाला सच मे ही शिखर पे पहुचता है तैरने के, तो तैरना समाप्त ही हो जाता है। नदी ही सारा काम करती है। वह नदी पर ही तिरता है, तैरता नही है। उसे कोई श्रम नही करना होता। एक लयबद्धता नदी के प्राण के बीच और उसके बीच हो जाती है। नदी के देवता से उसकी पहचान हो गई। अब जैसे नदी का देवता ही उसे उठा के चलता है। अब कोई सम्हालता है उसे। नदी उसे डुबाती नही, नदी उसकी दुश्मन नही है। एक गहरी मैत्री हो गई है।

अगर तुम कभी नदी मे नही उतरे, तो तुम्हे ज्यादा से ज्यादा इतना ही दिखाई पड सकता है कि यह आदमी हाथ-पैर फेक रहा है इससे फायदा क्या! व्यायाम है। हम घर पे ही कर लेगे। अपने बिस्तर पे लेट कर हाथ-पैर फेक लेगे। तो उतना ही व्यायाम होगा, ज्यादा भी हो सकता है। तो झझट क्यो लेनी! खतरा क्यो मोल लेना!

लेकिन तुम्हे पता नही जो तैरने वाले के भीतर घट रहा है। अगर तैरने की प्रक्रिया ठीक हो, विचार खो जाते है, नदी की धार के साथ एक लीनता जुड जाती है। नदी ले जाने लगती है। तैरने वाला धीरे-धीरे अपनी अस्मिता को छोड देता है, नदी की धार का अग हो जाता है, जैसे वह भी नदी है, तिरता है। और उस तिरने मे जो आनद की प्रतीति होती है, वह प्रतीति तुम्हे वह दे नही सकता, न बता सकता है। वह कितना ही कहे।अगर तुम्हे थोडा अनुभव हुआ हो तो सतो ने कहा है गूगे का गुड। गूगे को गुड दे दो, स्वाद तो उसे आ जाता है। बोल वह नही सकता। लेकिन छोडो गूगे को। तुम तो गूगे नही हो, तुम्हे गुड दे दें, तुम्हे तो स्वाद आ जायेगा। तुम बोल भी सकते हो, बोलोगे क्या? और जिसने कभी मिठास न जानी हो, जिसने कभी मीठा अनुभव न किया हो, उसे तुम कितना कहो मीठा है मीठा है मीठा है—शब्द सुनाई पडेगा, लेकिन शब्द मे कोई अर्थ तो होगा नही, क्योकि अर्थ तो अनुभव मे आता है।

मिठास एक प्रतीति है।

कबीर ने कहा है, गूगे केरी सरकरा।

सभी गूगे है भाव के सबध मे। विचार के सबध मे, मुखर, भाव के सबध मे, गूगे। तुम नही जान सकते कि क्या भाव-दशा है। अगर प्रेम का थोडा अनुभव हुआ

हो, तो भक्ति का मार्ग कितना नाजुक है, बारीक है, झीना है, सूक्ष्म है, वह तुम्हे खयाल मे आ सकेगा।

नाजुक का क्या अर्थ हो सकता है? झीने का क्या अर्थ होता है? झीने का अर्थ होता है जिसे सभालने मे बडा यत्न करना पडे। तुमने सगीतज्ञो को देखा होगा, इसके पहले कि वे अपना सगीत शुरू करे, घडी आधा घडी साज को बिठाने मे लगाते हैं। नासमझ तो उसी मे ऊब जाते हैं कि यह क्या लगा रखा है। कही हथौडी से ठोंकते हैं, कही तार खीचते हैं, कही कुछ करते हैं। लेकिन वे क्या कर रहे हैं? वे साज को एक नाजुक हालत मे ला रहे हैं, जहा सगीत सभव हो सकेगा। वे तारो को उस जगह बिठा रहे हैं, जहा न तो वे ज्यादा कसे होगे, और न ज्यादा ढीले होंगे। क्योकि तार बहुत ढीले हों तो सगीत को चोट नही पडती। अगर तार बहुत कसे हो तो टूट ही जायेंगे। तो तार ऐसे होने चाहिए कि न ढीले, न कसे—ठीक मध्य मे। और जहा तार ठीक सम हो जाते है, वही सम्यक्त्व पैदा हो जाता है। वही सगीत का जन्म है। और ऐसे ही जीवन की कला है भक्ति।

भक्ति ठीक मध्य मे पैदा होती है। ज्ञान भी एक अति है। कर्म भी एक अति है। कर्मठ एक अति पर जीता है—स्थूल। ज्ञानी दूसरी अति पर जीता है—सूक्ष्म। भक्त मध्य मे जीता है। उसे साज को बहुत बिठाना पडता है। नाजुक है।

कबीर कहते है, 'भक्ति का मारग झीना रे। नहिं अचाह नहि चाहना ' न तार बहुत कसे, न तार बहुत ढीले।

'नहिं अचाह, नहिं चाहना, चरनन लौ लीना रे।

इस बात को हम समझ ले, ध्यान से सुन ले।

'नहि अचाह नहि चाहना '

दो अतिया है। एक चाह है—वासना, और एक अचाह है—निर्वासना। और कबीर कहते है, 'भक्ति का मार्ग अति झीना रे—' दोनो के मध्य मे। चाही तो भोगी है—वह, जो चाह रहा है, चाहना से भरा है, यह चाहिए, वह चाहिए—मागता चला जा रहा है। उसे समझ लेना हमे कठिन नही है। हमारा भी अनुभव वही है। चारो तरफ वही लोग है, उनकी ही भीड है, उनका बाजार है, उनकी दुकाने है, उनके मदिर हैं। वे माग रहे है। वे कहते हैं, यह मिल जाये। वह मिल भी नही पाता कि उनकी माग आगे बढ जाती है। और वे कहते है यह मिल जाये ! वे याचक ही बने रहते है। वे कभी मालिक नहीं हो पाते। वे भिखारी ही बने रहते है कभी सम्राट नही हो पाते। देने का तो मौका ही नही आता, मागने से ही फुर्सत नही हो पाती। दान का तो सवाल ही नही उठता, खुद ही भूखे है, अभी खुद ही का 'ाम अधूरा है।

ऐसा हुआ, कबीर के जमाने मे एक फकीर था फरीद। फरीद के गाव के लोगो ने उससे कहा, 'अकबर तुम्हे बडा सम्मान देता है, कभी आओ। इतना तो तुम

कह दोगे, तो काम हो जायेगा ! गाव मे एक मदरसा चाहिए, एक स्कूल चाहिए। तुमने कहा कि हो जायेगा।'

फरीद का भक्त था अकबर। तो फरीद ने कहा, 'अच्छा जाऊगा।' और फरीद गया भी। जब पहुचा तो सुबह ही सुबह का वक्त था। उसके लिए कोई रोक-टोक न थी महल मे, उसे सीधा ले जाया गया। अकबर अपनी निजी मस्जिद के भीतर नमाज पढ रहा था, फरीद पीछे जा के खडा हो गया। अकबर की नमाज पूरा होने के करीब थी, तब उसने दोनो हाथ ऊपर उठाए—याचक की भाति, एक भिक्षु की भाति—और कहा, 'हे परमात्मा, मेरी सपदा को बढा, मेरे साम्राज्य को बडा कर !

फरीद तत्क्षण लौट पडा। किसी के लौटने की आवाज सुन के सीढ़ियो पर अकबर ने लौट के देखा, नमाज पूरी हो गई थी, भागा हुआ आया। फरीद वापस लौट रहा है। और फरीद कभी आया नही था। अकबर ही जाता था सदा। लेकिन फरीद ने सोचा, जब मागना हो, तो जाना चाहिए। पैर पकड लिये अकबर ने, और कहा कि 'आये और लौट चले, कुछ भूल हुई, कुछ मुझसे गलती हो गई ?' फरीद ने कहा, 'न, भूल तुमसे नही हुई, भूल मुझसे हुई। मै तुमसे मागने आया, और मैंने पाया कि तुम तो अभी खुद ही माग रहे हो। नही, तुम्हे मैं गरीब न बनाऊगा। वह मदरसा महगा पड जायेगा। और फिर मैंने सोचा कि जिससे तुम माग रहे हो, तो उससे हम सीधा ही माग लेगे। बीच मे और एक भिखारी को क्यो लेना ? और अब तक मैने समझा था कि तुम एक सम्राट हो, वह मेरी भ्राति टूट गई।'

जब तक माग है, तब तक कोई सम्राट नही हो सकता। तब तक तुम दोगे कैसे ? दोगे भी तो तुम सौदा करोगे, दोगे तो पाने के लिए दोगे। दोगे भी तो ज्यादा मिले, उसकी व्यवस्था से दोगे। तुम्हारा दान भी इनवेस्टमेट होगा। उसमे कुछ पाने की आकाक्षा होगी।

चाह से भरा हुआ आदमी भिखारी है—यह साफ है। इसके कारण, जिन्होने यह समझा कि चाह से भरा हुआ आदमी भिखारी है, उन्होने चाह छोड दी, वे अचाह मे चले गये। जैसे बुद्ध, जैसे महावीर, उन्होने सारी चाह छोड दी। उन्होने कहा मागना ही छोडेगे, तभी तो यह भिखमगापन मिटेगा। बात बिलकुल सीधी है, तर्कयुक्त है, साफ है। मागने वाले का मार्ग सीधा-साफ है। और न मागने वाले का भी मार्ग सीधा-साफ है छोड दी चाह, नही रखी कोई वासना। तो महावीर और बुद्ध सम्राट हो गये। उन जैसे सम्राट खोजना कठिन है। सिकदर, नेपोलियन, अकबर जैसे भिखारी खोजना कठिन है। महावीर, बुद्ध जैसे सम्राट खोजना कठिन है। उन्होने चाह ही छोड दो। उन्होने बात ही बद कर दी, वह द्वार ही बद कर दिया। मागे ही नही, तो एक साम्राज्य का उदय हुआ। वे अपने-आप मे पूर्ण हो गये।

लेकिन कबीर कहते हैं, 'भक्ति का मारग झीना रे।

बडी नाजुक बात है।

'नहिं अचाह नहिं चाहना, चरनन लौ लीना रे।'

—न तो हम चाह रखते हैं, और न हम अचाह रखते है। हम परमात्मा के सामने ऐसे खडे होते हैं, जैसे कोई चाह न हो, और जैसे चाह भी हो। परमात्मा के सामने हम ऐसे खडे होते है कि हम मागते तो कुछ भी नही, लेकिन खडे भिखारी की तरह होते हैं। मागते तो कुछ भी नही, क्योकि मागा कि परमात्मा से सबध छूट गया। तब तुम जो माग रहे हो, वह ज्यादा महत्वपूर्ण चीज हो गई, परमात्मा गौण हो गया। परमात्मा साधन हो गया, जो तुमने मागा वह साध्य हो गया। हम परमात्मा के सामने ऐसे खडे होते हैं जैसे भिखारी हैं और चाह हमारी जरा भी नही। तो हम ऐसे भी खडे होते हैं, जैसे सम्राट हैं। अचाह भी है, क्योकि हम कुछ माग नही रहे। लेकिन हम चाह वाले की तरह भी खडे हैं, क्योकि हम ऐसे झुके हैं जैसे सारा ससार माग रहे हो। मागते नही और भिखारी की तरह खडे होते हैं। सम्राट की तरह होते है, हाथ मे भिक्षापात्र होता है। इसलिए 'भक्ति का मारग झीना रे।

भक्त न तो मागता है, और न यह कहता है कि मैं अचाह को उपलब्ध हो गया हू। न तो वह यह कहता है कि मैंने सब चाह छोड दी, और न वह यह कहता है कि मेरी कोई चाह है। इसे थोडा सोचे।

भिखारी और सम्राट—दोनो एक साथ! उसे कुछ भी दे दिया जाये तो कोई फर्क न पडेगा, ऐसा सम्राट, रत्ती भर भी जुडेगा नही, जितना था उतना ही रहेगा। और खडा ऐसे है जैसे सारी चाह उसी की है, सारा ससार परमात्मा को ही माग रहा है, मागा उसने रत्ती भर नही है। मतलब यह हुआ जैसे सम्राट भिक्षा-पात्र हाथ मे लिये खडा हो। भिक्षा-पात्र इसलिए कि परमात्मा के सामने खडे होने का ढग सम्राट का नही हो सकता। उसके सामने खडे होने का ढग भिखारी का ही हो सकता है। उसके सामने तुम कैसे अकड के खडे होओगे सम्राट की तरह? इसलिए तो महावीर और बुद्ध दोनो ने परमात्मा को इनकार कर दिया कि वह है ही नही। क्योकि जब तुम सम्राट की तरह खडे हो तो परमात्मा कैसे हो सकता है? इसलिए महावीर और बुद्ध की व्यवस्था मे कोई परमात्मा नही है। कोई परमात्मा का प्रश्न ही नही उठता। तुम स्वय ही परमात्मा हो, बात खत्म हो गई। और तुम मदिर जाते हो, मस्जिद जाते हो—तुम मागने जाते हो। अगर हिंदू के मदिर मे तुम्हे न मिले, तुम हिंदू ही सही, और कोई कह दे कि फला पीर, कि फला मुसलमान फकीर कि फला मुसलमान फकीर की कब्र, वहा मिल सकता है, तो तुम चोरी-छिपे वहा भी जाते हो। हिंदू भी बने रहते हो, मुसलमान फकीर की मजार पे भी पहुच जाते हो। मागने वाले का क्या भरोसा, उसकी क्या आस्था! भिखमगे की कोई आस्था होती है! जहा मिलेगा, वहा जायेगा। इस घर मिला तो ठीक, नही तो दूसरे घर मे मागेगा।

मागने वाले की न तो कोई आस्था है, न तो परमात्मा स कोई प्रयोजन है।

वह जो मागता है, अगर कोई कहे कि नास्तिक हो जा, इस शर्त पर मै देता हूं, तो वह नास्तिक हो जायेगा। वह कहेगा, 'छोडो, परमात्मा से क्या लेना-देना! हम तो इसीलिए जाते थे तुम जाते थे कि मुझे स्वास्थ्य मिल जाये, बीमारी दूर हो जाये। परमात्मा दूर न कर पाया। और कोई कहता है कि हम तुझे एक दवा देते हैं और ठीक हो जायेगा, लेकिन आज से परमात्मा को छोड दे। तुम कहोगे, हम बिलकुल तैयार हैं, हम पहले से तैयार हैं।'

परमात्मा प्रयोजन ही नही था। हम मागने गये थे। आशा थी कि वह मिल जायेगा। मिल जाता तो हम धन्यवाद देते, नही मिलता, तो हम नाराजगी भी जाहिर करते हैं।

दुनिया मे असली आस्तिक खोजना मुश्किल है। भीतर तो तुम सभी नास्तिक हो। आस्तिक तो तुम बने हुए हो, क्योकि तुम्हारी चाह है, और तुम्हे लगता है परमात्मा मे शायद मिल जाए। शायद हो ।

मेरे एक मित्र हैं—बूढे आदमी! नास्तिक रहे जीवन भर। बडे ख्यातिनाम व्यक्ति है। लेखक हैं, कथाकार है। एक दिन अचानक उनके घर से उनका लडका भागा हुआ आया और उसने मुझे कहा कि पिताजी एकदम बीमार हैं और आपको याद किया। हार्ट-अटैक का दौरा पडा था। दौरा तो चला गया था, लेकिन बहुत कप गये थे। हाथ-पैर मे कपन था। मैं जब पहुचा तो राम, राम, राम, राम, धीरे-धीरे कह रहे थे। मैं बहुत हैरान हुआ, क्योकि वे तो नास्तिक हैं। मैंने उनका सिर हिलाया। मैंने कहा, 'क्या कर रहे हो? मरते वक्त भ्रष्ट हो रहे हो?' उन्होने कहा, 'छोडो भी। वह बात मत उठाओ। पता नही हो ही भगवान।'

मरते वक्त आदमी भयभीत हो जाता है। सोचता है, पता नही, हो ही! फिर वे कहने लगे, 'हर्ज भी क्या है? न हुआ तो कोई हर्ज नही। हुआ तो हमने नाम ले लिया।'

तो भगवान भी तुम्हारा हिसाब है, वह भी तुम्हारे भय का ही रूप है। तुम्हारा भगवान यानी तुम्हारा भय। जब तुम भयभीत होते हो तब तुम याद करते हो, जब तुम निर्भय होते हो, बिलकुल भूल जाते हो। जब तुम सुखी होते हो, याद ही नही आती। जब तुम दुखी होते हो, एकदम राम-राम रटने लगते हो। नही, तुम नास्तिक हो। आस्तिकता तुम्हारी होशियारी, चालाकी का नाम है। आस्तिकता तुम्हारे हृदय का फैलाव नही है, तुम्हारे तर्क की ही व्यवस्था है। जब जरूरत हुई, तब तुम आस्तिक, जब तुम निश्चिन्त हो, तब तुम नास्तिक।

मुल्ला नसरुद्दीन एक नाव से यात्रा कर रहा था। और भी लोग थे। अचानक तूफान आया और नाव डूबने लगी। तो लोग चिल्लाने लगे। किसी ने कहा, हे भगवान, मुझे बचा ले, तो मैं इतने रुपये दान कर दूगा। किसी ने कहा कि मुझे बचा ले तो एक गाय दान कर दूगा। किसी ने कहा, मुझे बचा ले तो मैं यह कर दूगा,

वह कर दूगा । लोग ऐसा किये जा रहे थे। तभी नसरुद्दीन चिल्लाया कि ठहरो, ज्यादा आगे मत बढो, किनारा करीब है। और सब भूल गये, ये जो दान वगैरह कर रहे थे। सब अपना बिस्तर-सामान बाधने मे लग गये ।

वह हम सब दुख मे याद करते हैं। जब किनारा करीब दिखाई पडता है, क्या लेना भगवान से! वह तो डूबती नाव मे सहारा था। जब नाव किनारे लगने लगी तो क्या प्रयोजन!

हम मागते हैं तो भगवान के द्वार जाते हैं। फिर हमारे बीच ऐसे लोग हुए, बुद्ध और महावीर जैसे, जिन्होने मागना छोड दिया। देखा कि मागने मे सिवाय कष्ट के कुछ भी नही। चाह कही तो नही ले जाती, नये-नये नर्क निर्मित करती है। जितना चाहोगे उतना विषाद आता है। चाह की एक बडी खूबी है। अगर पूरी हो जाये तो भी दुख, अगर पूरी न हो तो भी दुख। अगर पूरी हो जाये, तो तुम अचानक पाते हो कि जिस चाह के लिए इतने सपने सजोये, इतने इद्रधनुष जिसके आसपास बाधे, इतने फूलो का सेहरा रखा—और कुछ भी न निकला! जब निकली बात तो कुछ भी न निकली। खोदा पहाड, निकली चुहिया। मिल जाये, तो हमेशा ऐसा लगेगा कि इतना पहाड खोद के इस चुहिया के लिए परेशान हो रहे थे। अगर न मिले तो तुम दुखी, क्योकि तुम सोचते हो, पता नही मिल जाती तो क्या न मिल जाता!

एक पागलखाने मे एक मनोवैज्ञानिक अध्ययन करने को गया। तो सुपरिटेडेट उसे घुमाने लगा। एक कमरे मे एक आदमी चीख मार-मार के रो रहा था, और हाथ मे एक तस्वीर लिए छाती से लगाए था। तो उस मनोवैज्ञानिक ने पूछा कि इस आदमी को क्या हो गया है? तो सुपरिटेडेट ने कहा कि यह जो तस्वीर लिये हुए है यह इस औरत को प्रेम करता था, और यह औरत इसे मिल नही सकी, यह पागल हो गया। अब यह तस्वीर छाती से लगा के पीटता रहता है, रोता रहता है, चिल्लाता रहता है। उसके बगल मे ही दूसरी सीखचो मे बद आदमी देखा, कि वह अपने बाल नोच रहा है। और तस्वीर वह भी अपने हाथ मे रखे है। वह उसे काटता है, फेकता है, दीवाल पे मारता है, लात से दबाता है। पूछा, इसको क्या हो गया? उस सुपरिटेडेट ने कहा, इसको वह औरत मिल गई। ये दोनो उसके प्रेम मे थे। एक को नही मिली, वह पागल हो गया। और यह इनको मिल गई, इसलिए ये पागल हो गये है।

चाह पूरी हो तो पागल, चाह पूरी न हो तो पागल। चाह सब तरह से दुख देती है। मिले तो विषाद आ जाता है कि कुछ भी न मिला। न मिले तो विषाद बना रहता है, कि न मिल पाया। चाही दुखी रहेगा। वासना से भरा हुआ दुखी रहेगा। जिसको यह दिखाई पड गया, जिसने थोडा जीवन को समझने की कोशिश की जिसको यह समझ मे आ गया, उसने चाह छोड दी, वह अचाह को उपलब्ध हो गया, निर्वासना को उसने सूत्र बना लिया।

ये दोनो बाते सरल हैं।

कबीर कहते हैं, 'भक्ति का मारग झीना रे'। मागना कुछ भी नही है, फिर भी मागने वाले की तरह खडे है। हो गये हैं सम्राट, मागने को कुछ भी नही, फिर भी दास की तरह झुके है।

'नही अचाह नही चाहना, चरनन लौ लीना रे।' न तो मागते है कुछ, न माग है कुछ, लेकिन चरनन मे, चरणो मे प्रेम को लगा दिया है।

'चरनन लौ लीना रे' बस, चरणो को पकडे है।

तुम चरण को पकडते हो—कुछ मागना हो तो। जब मागना ही नही तो चरण किसलिए पकडना!

इसलिए कबीर कहते है, नाजुक है मार्ग। मागना कुछ भी नही, और चरण को पकडे हुए है। लेकिन जो भी इस अद्‌भुत घटना को उपलब्ध हो जाता है—मागना कुछ भी नही और चरण को पकडे हुए हैं, थे सम्राट, भिक्षापात्र लिए झुके हैं—उसे बहुत कुछ मिलता है। सब बिना मागे मिलता है। बिना मागे मोती मिले! बिना मागे चारो तरफ बरसा होने लगती है। क्योकि यह आदमी तो सम्राट है, और दास की तरह झुका है।

महावीर को तुम झुका न सकोगे। महावीर घुटने के बल, हाथ जोड के प्रार्थना न कर सकेगे। प्रार्थना का कोई सबध ही महावीर से नही। जब मागना ही नही है कुछ तो झुकना क्या? पागल हो गये हो, झुकने की क्या जरूरत? लेकिन तर्क तुम समझो तो एक ही है। मागना है तो झुको, तर्क था। अब मागना नही है तो मत झुको, वही तर्क है।

यह कबीर अतर्क्य है। इसलिए भक्त मे ज्यादा अतर्क्य आदमी खोजना कठिन है। भक्त एक पैराडॉक्स है, एक विरोधाभास है। उसमे दो विपरीत मिल रहे है। वह दोनो के मध्य मे है। एक तरफ से महावीर—एक सम्राट, दूसरी तरफ से एक साधारण भिखारी—दोनो एक साथ।

'नहिं अचाह नहिं चाहना, चरनन लौ लीना रे।'

और यह जो चरनन मे, चरणो मे लवलीन होना है, चरणो मे डूब जाना है—यह क्या है?

तुम अगर झुको, तो शरीर ही झुकता है, अहकार तो भीतर खडा ही रहता है वह कभी नही झुकता। उसका ही झुकना झुकना है। शरीर के झुकने का तो कोई मतलब नही। और जैसे ही अहकार झुकता है, वैसे ही तुम लवलीन होने लगते हो, वैसे ही एक नई मस्ती, और एक नया रग भीतर पैदा होने लगता है। इसलिए ज्ञानी को रूखे-सूखे तुम पाओगे। महावीर मे कोई कविता पैदा होने वाली नही, कोई गीत भी पैदा नही होने वाला। महावीर नाचेगे भी नही। तुम सोच भी नही सकते कि महावीर नाच रहे है। चैतन्य नाचेगे, मीरा नाचेगी।

भक्त तो गीला होगा, आर्द्र होगा, डूबा होगा। ज्ञानी सूखा होगा। ज्ञानी मरुस्थल-जैसा होगा, जहा हरियाली है ही नही। अन्तिम अवस्था वह भी पा लेगा। उसने भी पा ली है। लेकिन होगा मरुस्थल जैसा। भक्त तो एक झरना होगा, जो गाता ही रहता है। ज्ञानी चुप होगा। ज्ञानी मौन होगा। भक्त सगीत से भरा होगा उसकी चुप्पी मे भी गीत होगा, उसके गीत मे भी चुप्पी होगी। वह मध्य मे है। वह बोलेगा तो सगीत होगा, वह चुप रहेगा तो भी सगीत सुना जा सकेगा। उसके रोए-रोए से एक धुन बजती रहेगी।

'साधन के रसधार मे रहै निसदिन भीना रे।'

वह गीला होगा, जैसे कोई नदी से स्नान करके निकला हो—सद्य स्नात! ऐसा भी न होगा—जैसे हर वक्त रसधार मे डूबा हुआ है!

'साधन के रसधार मे रहै निसदिन भीना रे।' और साधन यानी भक्ति। साधन यानी कीर्तन। साधन यानी नामस्मरण। साधन यानी जप। साधन यानी परमात्मा के चरणो मे सदा लगे रहना। ऊपर कुछ भी करे, भीतर उसी की धुन बजती रहे। बाजार जाए, काम करे, भीतर उसी की धुन बजती रहे। और प्रतिपल अनुग्रह का भाव बना रहे। और प्रतिपल लगे कि परमात्मा ने जो दिया है, वह जरूरत मे ज्यादा है, वह मेरी पात्रता मे ज्यादा है। मागने का सवाल कहा? और जब बिन मागे मिल रहा हा, तो मागना नासमझी है। जब उसने जीवन दिया है, जब उसने प्रेम का धडकता हुआ हृदय दिया है, और जब उसने जीवन के आनन्दित होने के इतने-इतने आयाम दिये है, तब और मागने को क्या है! उसे प्रतिपल धन्यवाद देता रहे!

सूफी फकीर हुआ, बायजीद। एक रास्ते से गुजरता था अपने भक्तो के साथ। एक पत्थर मे पैर मे चोट लग गई। वही झुक के बैठ गया। पैर से खून बहने लगा। उसके हाथ जुड गये और सिर आकाश की तरफ उठ गया। भक्तो ने कहा कि 'यह क्या कर रहे है? हम तो समझे कि आप इसलिए झुके कि पैर मे से खून निकल रहा है, चोट लग गई। पर हम देखते है कि आप प्रार्थना कर रहे हैं।' बायजीद ने कहा, 'तुम्हे उसके राजो का पता नही। अगर आज वह न बचाता तो फासी होनी थी। और फासी को टाल के उसने सिर्फ पैर मे जरा-से पत्थर की चोट कर दी। और वह भी उसकी कृपा है, याद्दाश्त दिलाने को।'

अगर भक्त के जीवन मे कष्ट भी हो, तो भी वह धन्यवाद देता है। अभक्त के जीवन मे सुख भी हो, तो भी शिकायत करता है। क्योकि अभक्त को कितना ही सुख मिले, वह हमेशा सोचता है और ज्यादा मिल सकता था इतना ही? और भक्त को कितना ही दुख मिले, वह सदा सोचता है और ज्यादा मिल सकता था इतना ही? दोनो के देखने के ढग, दृष्टिया अलग-अलग है। दोनो के ढग ऐसे हैं कि अभक्त सदा दुखी रहेगा और सदा नर्क मे जियेगा, और भक्त सदा स्वर्ग मे रहेगा, सदा सुखी रहेगा। और तुम जब सुख मे रहना सीख जाते हो तो सुख बढता

है। जब तुम दुख मे रहना सीख जाते हो तो दुख बढ़ता है। स्वर्ग और नर्क आदतें हैं। और आदतें बड़ी मुश्किल से छोड़ती हैं पीछा।

'साधन के रसधार मे रहे निसदिन भीना रे।
राग मे श्रुत ऐसे बसै, जैसे जल मीना रे।।'

जैसे मछली पानी मे है, ऐसे ही उस राग मे सारे शास्त्र और सारा सत्य छिपा हुआ है।

'राग मे श्रुत ऐसे बसै, जैसे जल मीना रे।'

और जिसने भक्ति का वह राग पा लिया, वह धुन बजने लगी जिसके भीतर, और जो मस्त हो गया, जिसने पी ली वह शराब, जो उस नशे मे डूब गया। वह पायेगा कि जैसे नदी मे मछलियां है ऐसे उस राग मे सारा सत्य छिपा है। जो श्रुतियों मे लिखा है, शास्त्र जिसका गीत गाते है वह सब वहां छिपा ही हुआ है उस रसधार मे।

'साई सेवत मे देइ सिर कुछ विलय न कीना रे।

बस, करना एक काम है, और वह यह है, कि परमात्मा की सेवा मे सिर दे देना।

'साई सेवत मे देइ सिर, कुछ विलय न कीना रे।'

यह जो अंतिम वचन है, इसके दो अर्थ हो सकते है। दोनों महत्वपूर्ण है। दोनों समझ लेने चाहिए।

'साई सेवत मे देइ सिर' परमात्मा की सेवा मे

साईं स्वामी का अपभ्रंश है। तो जो परमात्मा है, जो स्वामी है उसको देने मे बस एक ही काम है करने को—सिर दे देना है। सिर का अर्थ है बुद्धि। सिर का अर्थ है विचार। सिर का अर्थ है तर्क। सिर का अर्थ है धारणाएं शब्द। इन सबके संग्रहीत तत्त्व का नाम है सिर। यह जो खोपड़ी है, वह देने मे काम न चलेगा, इसे तो कोई भी काट के रख दे सकता है। लेकिन तुम अगर खोपड़ी काट के भी रख दो तो भी तुम्हारी खोपड़ी मे विचार चलते रहेंगे। तुम्हारी खोपड़ी हिंदू की रहेगी, मुसलमान की रहेगी, ईसाई की, जैन की रहेगी। खोपड़ी काटने मे बहुत कुछ न होगा। इस खोपड़ी को काटने का सवाल नही है। यह तो सरल काम है। यह तो बहुत-से आत्महत्यारे कर लेते है। इसमे कुछ अड़चन नही है। लेकिन यह खोपड़ी तो रहे बाहर मे भीतर से चली जाए। न विचार उठे, न तर्क उठे, न धारणा बचे न पक्षपात रह जाए। तुम भीतर मे बिलकुल खाली हो जाओ। जब उसकी ही मर्जी तुम्हारी मर्जी है, तब इस खोपड़ी की जरूरत क्या है? इसकी जरूरत तो इसलिए है कि तुम सोचते हो कि तुम असुरक्षित हो, इन्सिक्योरिटी है, तुम्हे अपना इंतजाम खुद करना है। इसलिए इसकी जरूरत है। इसलिए सोचो विचारो, रास्ता बनाओ। लेकिन जब वही खोज रहा है तुम्हारे लिए रास्ता, जब वही बना रहा है तुम्हारे लिए मार्ग जब वही तुम्हारी श्वासों को चला रहा है—तब तुम पूरा ही

क्यो नही छोड देते उसी पर?

एक राह से एक सम्राट गुजर रहा था, और एक सूफी फकीर भी था। सूफी फकीर को रास्ते पर पैदल चलते देख कर उस सम्राट ने कहा, कि तुम आ जाओ और मेरे रथ मे बैठ जाओ। वह आ के बैठ गया। लेकिन सम्राट को बडी हैरानी हुई कि वह सिर पे जो पोटली लिए था, अब भी सिर पे लिए हुए है। उस सम्राट ने कहा, 'पोटली नीचे क्यो नही रख देते? दिमाग खराब है क्या?' तो उस फकीर ने कहा कि नही, दिमाग आप ही जैसा है। इसलिए नीचे नही रख रहा हू कि आपने मुझे ही बिठा लिया, यही क्या कम है! और रथ पे और वजन बढाना ठीक नही।

सम्राट ने कहा कि मुझे शक हो ही रहा था तुम्हारे ढग से कि तुम्हारा दिमाग खराब है। और तुम कहते हो, तुम्हारे जैसा! जब तुम रथ पे बैठे हो, तो तुम सिर पे रखो अपना बोझ, अपनी पोटली, या रथ पे रखो—क्या फर्क पडता है? हर हालत मे बोझ रथ पर है। फकीर ने कहा 'तो तुम समझदार मालूम पडते हो। तो फिर इस सिर को ऊपर क्या रखे हो? जब परमात्मा सब ले जा रहा है, जीवन उठता है, लीन होता है इतने अनत प्रकारो मे लहरे उठती है बिखरती है, जब सब उसके रथ पे चल ही रहा है, तो तुम यह सिर क्यो रखे हुए हो? मैं तो सिर्फ पोटली रखे हू सिर पर, तुम वह सिर क्यो रखे हुए हो? और निश्चित, मेरी पोटली मे तुम्हारे सिर का वजन ज्यादा है।'

सिर ही तो वजन है। सिर के अतिरिक्त और कोई वजन नही है। और जिसने सिर को उतार के रख दिया, वह निर्भार हो गया, उसे पख मिल गये। फिर वह उड सकता है—मुक्ति के अनत आकाश मे।

तो कबीर कहते है, 'साई सेवत मे देइ सिर और चीजो से काम न चलेगा। लोग बडे चालाक है। लोग जाते है मदिर मे, और नारियल फोड आते है। नारियल प्रतीक है खोपडी का, और लगता भी खोपडी जैसा है बाल, दाढी, मूछ, आखे लोग बडे होशियार है।

कबीर कहते है, 'साई सेवत मे देई सिर, वे नारियल रख आते है! नारियल सिर जैसा लगता है, उसे रख आते है। सिदूर लगा देते है मदिर मे, वह खून जैसा लगता है। लेकिन खून से ही पूजा हो सकती है। खून से पूजा का अर्थ है कुछ प्राण से दो। सिदूर लगाने से क्या होगा? लेकिन लोग कुशल है। उन्होने सब्स्टीट्यूट खोज लिये है। उन्होने परिपूरक निकाल लिये है खून को बचाओ, लाल रग का टीका लगा दो, सिदूर लगा दो। सिर को बचाओ, नारियल को चढा दो! और नारियल भी मदिर मे लोग सडे ले जाते है। मदिर के नारियल अलग ही बिकते हैं बाजार मे। क्योकि वे फिर-फिर आ जाते है, सर्क्युलेशन मे रहते है, वर्षों चलते हैं। कई लोग उसको चढा चुके। नारियल भी तुम्हारा नही, वह भी बासा है।

चढ चुका कई दफा, उतर चुका कई दफा—वह घूमता ही रहता है, सर्क्युलेशन मे। वही मदिर के बाहर दुकान रहती है, वह पुजारी का ही भाई-भतीजा चलाता है। तुम चढा आए, रात दुकान मे पहुच गया। सुबह फिर बिक गया, रात फिर दुकान मे पहुच गया। भीतर बिलकुल सड जाता है।

खोपडी चढाने की बात है। पहले तो तुम नारियल खोज लेते हो, वह भी फिर सडा, वह भी बासा, और चढाया हुआ दूसरो का।

नही, परमात्मा के द्वार पर तुम्हारी प्रामाणिकता चाहिए। उधार, बासा, पराया, वहा कुछ भी न चलेगा। तुम ही अपने को ले के आओगे तो स्वीकृत हो सकते हो।

'साईं सेवत मे देइ सिर, कुछ विलय न कीना रे।'

और यह जो अतिम आधा हिस्सा है, इसके दो अर्थ हो सकते है। एक अर्थ कि जरा भी देरी न की, जरा भी विलब न किया—और साईं की सेवा मे सिर को चढा दिया। यही भक्ति का मार्ग है—कुछ देरी न की, कुछ विलब न किया। बिना विलब! इसे थोडा सोच ले।

मेरे पास लोग आते हैं। सन्यास का विचार करते है। उनसे मैं कहता हू, सन्यास के दो ढग हैं। एक तो विचार कर-करके लेना, तब विलब होगा। विलब भी होगा और सन्यास का मजा भी खो जायेगा। क्योकि जितना तुम विचार करोगे, और जितना तुम अपनी बुद्धि को समझाओगे, तर्क दोगे, पक्ष-विपक्ष मे सोचोगे, और बुद्धि ने अगर निर्णय दिया कि हा, ले लो, तो यह सन्यास बेकार है। क्योकि यह बुद्धि का निर्णय है। और बुद्धि के निर्णय से बुद्धि को कोई हटा नही सकता। और सन्यास का प्रयोजन ही इतना है कि बुद्धि हट जाए। तो अगर तुमने सोच-सोच के लिया, तो अर्थ ही खो जाता है।

एक दूसरा ढग है छलाग का कि तुम ले लो, तुम सोचो मत। बुद्धि को एक तरफ रख दो, और तुम ले लो। अगर तुम बुद्धि को एक तरफ रख के लेते हो, तो सन्यास लेते ही क्राति शुरू जाती है, रूपातरण शुरू हो जाता है। लेने मे ही रूपा-तरण शुरू हो जाता है। क्योकि तुमने बुद्धि से पूछा नही। पहली दफा तुमने कुछ किया बिना बुद्धि के। पहली बार बिना बुद्धि के, बिना तर्क के, बिना सोचे-विचारे, तुम अनजान मे गये, अधेरे मे गये, अज्ञात मे गये।

तो एक तो है बिना बिलम्ब किये छलाग। उस छलाग का मूल्य है। वह छलाग है। अगर तुमने बिलम्ब किया और सब तरफ से नाप-जोख की, सीढी लगाई, फिर सीढी से उतरे, सुगमता से पहुच गये—बात ही खो गई! क्योकि उसी छलाग मे तो सारा राज था, उसी छलाग मे तो सिर कटता। इसलिए तर्क से जो धर्म के पास आता है, वह धर्म के पास कभी आ ही नही पाता। अतर्क्य! तर्क का कोई सवाल ही नही है, यह तो पागलो का काम है। यहा बुद्धिमानो को प्रवेश नही है। बुद्धिमान तो बाहर ही रह जाते। उनकी बुद्धि ही उनके लिए उपद्रव हो जाती है।

पागल छलांग लगा जाते हैं। यह तो मस्तो का काम है। यह तो उनका काम है जो व्यवसायिक नही हैं, जो जुआ पर दाव लगाना जानते हैं। यह जुआरियो का काम है।

एक तो व्यवसायी चित्त है, जो सोचता है, सोचता है, विलय करता है, विलम्ब करता है, पोस्टपोन करता है—कल लेगे, परसो लेगे। सब तरफ से व्यवस्था जमा लेगे, सोच लेगे सब तरफ से, पूछ लेगे, पता लेगे—कि ठीक होगा लेना कि नही ठीक होगा लेना, हजार-हजार लोगो से सलाह ले लेगे, फिर। इस सब मे ही, लेने का सारा अर्थ खो जायेगा।

सन्यास एक छलाग है—निर्बुद्धि की। उसी छलाग मे सिर गिर जाता है।

तो पहला तो अर्थ है कि कुछ विलय न कीना रे।' जरा भी विलम्ब न किया, जरा भी समय न जाने दिया। समझे और छलाग लगा ली।

दूसरा अर्थ है—'साईं सेवत मे देइ सिर, कुछ विलय न कीना रे—' साईं की सेवा मे, परमात्मा की सेवा मे सिर चढा दिया, और फिर भी कुछ खोया नही—पाया। 'कुछ विलय न कीना रे। सिर भी चढा दिया और फिर भी कुछ खोया नही, पाया—और डरे थे नाहक कि खो जायेगा।

बडी हैरानी की बात है। तुम्हारे पास कुछ है भी नही, फिर भी तुम डरे हो कि खो जायेगा। है क्या जिससे तुम भयभीत हो कि खो जायेगा? छलाग मे बाधा क्या है? तुम्हारे पास कुछ होता तो डर भी ठीक था, कुछ है भी नही। और अगर कुछ है तो सब ऐसा है कि जो खो ही जाये तो अच्छा है। दुख है, चिन्ता है, तनाव है, अशान्ति है। सम्पदा के नाम पर कुछ भी नही, विपत्तिया बहुत है। सोच किसलिए रहे हो सिर को चढाने मे? लगता है, कुछ खो जायेगा। तुम उस नगे आदमी की तरह हो, जो नहाता नही, क्योंकि नहायेगा तो कपडे निचोडेगा कहा, सुखायेगा कहा! कपडे है ही नही, वह आदमी नगा है, मगर इसी भय से कि अगर नहाऊगा तो कपडे कहा सुखाऊगा, कहा निचोडूगा, नहाता ही नही।

तुम्हारे पास कुछ होता खोने को तो भी बात अर्थपूर्ण थी। मगर तुम कभी लौट के विचारते भी नही कि क्या है मेरे पास। डरते हो देखने मे, क्योंकि खाली अपने को देख के पीडा होगी, सताप होगा। पूरी जिन्दगी व्यर्थ निकल गई है। कोई उपलब्धि नही है। कोई किनारा नही मिला, कोई मजिल करीब नही आई है। भीतर तुम बिलकुल खोखले हो। लेकिन तुम उस खोखलेपन को देखने मे डरते हो, क्योंकि देखोगे तो भय लगेगा। तुम यहा-वहा भटकते रहते हो, उस तरफ कभी नजर नही करते। और सोचते रहते हो कि लेगे, सोचेगे, कही कुछ खो न जाए!

नही, कुछ खोने का तुम्हारे पास नही है। और जैसे ही तुम सिर दे दोगे, वैसे ही तुम पाओगे कि सब जो तुमने चाहा था और मागा था, उस सबकी वर्षा हो गई।

जीसस ने कहा है जो देगा, उसे मिलेगा, जो बचायेगा, वह खो देगा। और जीसस ने कहा है जिनके पास है, उन्हे और दिया जायेगा, और जिनके पास नही

है, उनसे और भी छीन लिया जायेगा। बडा कठिन वचन है, मगर बडा सार्थक है। क्योकि तुम्हारे पास वही बढेगा, जो है। अगर दुख है तो जगत मे कोई चीज रुकती नही, हर चीज बढती है। खयाल रखना। अगर दुख है तो दुख बढेगा। अगर प्रेम है तो प्रेम बढेगा। अगर क्रोध है तो क्रोध बढेगा। जगत मे कोई चीज रुकती नही, बढती है। हर चीज विकासमान है। अगर तुमने देर की तो तुम्हारे पास जो है, वह बढ रहा है। तुम्हारा नर्क बडा होता जा रहा है।

जीसस कहते हैं, जो देगे उन्हे मिलेगा, जो बचायेगे वो खो देगे। क्योकि बचाने को है ही क्या तुम्हारे पास ? तुम नर्क को ही बचाओगे। तुम स्वर्ग को बिलकुल खो दोगे। तुम अपने को बचाओगे, तुम परमात्मा को बिलकुल खो दोगे। और दूसरा वचन कहता है कि जिनके पास है, उन्हे और दिया जायेगा। अगर परमात्मा तुम्हारे पास है तो ओर परमात्मा, और परमात्मा मिल जायेगा। क्योकि जो तुम्हारे पास है, वह बढेगा। और जिनके पास नही है, जीसस कहते है कि उनके पास जो है, वह भी छीन लिया जायेगा।

साई सेवत मे देई सिर, कुछ विलय न कीना रे।

दे तो दिया सिर, सब दिया और खोया कुछ भी नही, सब पा लिया। जैसे बूद सागर मे गिरती है तो इस तरफ से तो बूद हो जाना समाप्त हो जाता है, लेकिन उस तरफ से सागर हो जाती है। खोती क्या है ? बूद होना खोती है, सागर होना पाती है। जैसे ही कोई अहकार को खोता है, बूद खो जाती है और ब्रह्म हो जाता है, सागर हो जाता है। क्षुद्र खोता है, विराट मिलता है।

तुम बचा क्या रहे हो ? तुम किस क्षण के लिए सोच रहे हो ? किसलिए देर है? और क्यो विलम्ब ?

जो करने जैसा लगता हो कबीर कहते है, 'साई सेवत मे देइ सिर, कुछ विलय न कीना रे।' जरा भी विलब की जरूरत नही है, इमिजियेट, तत्क्षण समझ आए छलाग ली जा सकती है। और जो तत्क्षण छलाग लेगे व ही पायेगे। जिन्होने जरा भी स्थगित किया, वे चूक जाएगे। क्योकि स्थगित किया कि क्षण खो जाता है। द्वार करीब आता है, स्थगित किया कि दूर जाता है। मौका पास आता है, स्थगित किया कि दूर जाता है। जब मौका पास आए और जब लगे कि समझ के लिए साफ हो गया

समझ का अर्थ बुद्धि नही है। समझ का अर्थ तुम्हारी समग्रता है। जब तुम्हारे पूरे प्राण को प्रतीत हो कि ठीक है उस क्षण को मत चूकना। उस क्षण को तुम बहुत-बहुत जन्मो तक चूके हो। उस क्षण विलब न करना। उस क्षण सिर को दे ही देना। खोओगे तुम कुछ भी नही। बूद खोयेगी सागर उपलब्ध होता है।

आज इतना ही।

दिनाक १७ नवम्बर, १९७४,
श्री रजनीश आश्रम, पूना

घूघट का पट खोल रे, तोको पीव मिलेंगे ।
घट घट मे वह साईं रमता, कटुक वचन मत बोल रे ।।
धन जोवन को गरब न कीजै, झूठा पचरग चोल रे ।
सुन्न महल में दियना बारिले, आसन सों मत डोल रे ।।
जागू जुगुत सो रगमहल मे, पिय पायो अनमोल रे ।
कह कबीर आनन्द भयो है, बाजत अनहद ढोल रे ।।

७

घूंघट के पट खोल रे

कबीर के पद के पहले, कुछ बाते समझ ले।

एक तो --और अत्यत आधारभूत--कि परदा आपकी आख पर है, परदा परमात्मा पर नही। और परदा आपने ही डाला है, किसी और ने नही। किसी और ने डाला होता तो आप उठाने मे समर्थ न हो सकते थे, फिर कोई और ही उठाता। और परदा अगर परमात्मा के ऊपर होता, तो भी आप उठाने मे समर्थ न हो सकते थे। क्योकि परमात्मा विराट है, उसका परदा भी विराट होता, आपकी सामर्थ्य के बाहर होता। परदा आपकी आख पर है, और आपने ही डाला है। यह पहली प्राथमिक बात समझ लेनी चाहिए। इसलिए कबीर 'घूघट' का उपयोग करते है।

घूघट व्यक्ति स्वय ही डालता है और अपनी ही आख पर डालता है। और यही आसान भी है। क्योकि अपनी आख छिप गई कि सब छिप गया। हिमालय को छिपाना हो तो बहुत बडे परदे की जरूरत पडे। छोटा-सा घूघट, आख बद हो गई हिमालय खो गया। सरल भी यही है। फिर खुद ने ही डाला है, इसलिए जब चाहे जब मर्जी हो, उठा ले। कोई रुकावट भी नही है, कोई बाधा भी नही है--स्वय के अतिरिक्त। इस बात को जितना गहरा उतर जाने दे भीतर, उतना अच्छा है। क्योकि साधारणत हम सोचते है, सत्य के ऊपर परदा है, तब तो यात्रा बहुत कठिन हो जायेगी। कमजोर आदमी कर भी पायेगा, इसकी कोई आशा रखनी उचित नही है। और सत्य के ऊपर परदा हो, तो तुम लाख उपाय करो, उठा कैसे पाओगे! और सत्य के ऊपर परदा हो तो एक बार किसी ने उठा दिया तो सभी के लिए उठ जायेगा। विज्ञान और धर्म का फर्क और फासला यही है।

आइस्टीन एक सत्य को खोज लेते है, तो फिर हर पीछे आने वाले वैज्ञानिक का विज्ञान के विद्यार्थी को वो सत्य नही खोजना पडता--परदा उठ गया! फिर तो आप पढ ले किताब मे, काफी है। जो श्रम आइस्टीन को वर्षों करना पडा होगा, एक साधारण-से विद्यार्थी को घटो करना पडता है।

बुद्ध ने परदा उठा दिया, कबीर ने परदा उठा दिया, अब आपको करने की जरूरत ही क्या है?--जरा-सा समझ लेना है, बात खत्म हो गई। विद्यालय मे पढाई

हो सकती है---विज्ञान की, धर्म की नही। क्योकि बुद्ध ने जो परदा उठाया, वो अपनी आख का परदा था। वो कोई सत्य का परदा नही उठा दिया था, नही तो सभी के लिए उठ जाता, फिर कोई अज्ञानी होता ही नही जगत मे। फिर जैसे आइ-न्स्टीन का सिद्धात किताब मे लिख जाता है, लोग पढ लेते है, खोजने की कोई जरू-रत नही रह जाती, वैसे ही बुद्ध का सिद्धात भी किताब मे लिख जाता।

यह जान के तुम्हे हैरानी होगी कि शास्त्र विज्ञान मे हो सकता है, धर्म मे नही। धर्म मे कैसे शास्त्र होगा? दूसरे के उठाए, तुम्हारा परदा तो उठेगा नही। और दूसरे ने जो देखा है, वह तुम्हारा दर्शन कैसे बनेगा? तुम्हारी आख पर जब तक परदा है, बुद्ध कितना ही परदा उठा दे, कुछ भी न उठेगा। वो उनकी आख का परदा है। इसलिए धर्म मे कोई परपरा नही निर्मित हो मकती। ट्रेडीशन धर्म की हो ही नही मकती। और दुख की यही बात है कि उसकी बडी परपराए बन गई है।

शास्त्र धर्म का हो ही नही सकता। लेकिन धर्म शास्त्र है। धर्म दूसरे से सीखा ही नही जा सकता, उसे खुद ही खोजना पडता है। लेकिन फिर भी हम दूसरे से सीखते है। और इसलिए सब झूठ हो गया है। धर्म के आसपास जितना झूठ इक-ट्ठा हो गया है, उतना किसी चीज के आसपास झूठ नही है। क्या कारण होगा? और धर्म, जो कि सत्य की खोज है, उसके आसपास इतना झूठ क्यो इकट्ठा हो गया? इतने शास्त्र, इतने सिद्धात, इतने दर्शन, इतनी धारणाए, इतने प्रत्यय धर्म के आसपास क्यो इकट्ठे हो गय?---इस मौलिक बात को भूल जाने के कारण कि परदा, घूघट है, तुम्हारी आख पर है। हर आदमी को फिर से उठाना पडेगा। और हर आदमी को नये सिरे से उठाना पडेगा। किसी दूसरे के उठाए तुम्हे कुछ फर्क न पडेगा।

बुद्ध जागेग देख लेगे, खो जायेगे---उनका दर्शन भी उनके साथ खो जायेगा उनकी दृष्टि भी उनके साथ खो जायेगी। तुम जागोगे देखोगे, पहचानोगे, तुम्हारे जीवन मे अनहद आनद का ढोल बजेगा, लेकिन किसी और को सुनाई नही पडेगा, तुमको ही सुनाई पडेगा। तुम्हारे जीवन मे अनत प्रकाश का अवतरण होगा, लेकिन तुम्हारे पडोस म भी कोई बैठा हो, उसको पता नही चलेगा। पत्नी को भी पता नही चलेगा कि पति के हृदय मे प्रकाश की किरण उतरी। बेटे को पता नही चलेगा कि बाप जाग गया। तुम्हारे चारो तरफ लोग बैठे रहे, किसी को शका भी न होगी कि तुम जाग गये। क्योकि परदा तुमने अपनी आख का उठाया है, उनकी आखा का नही। और दूसरे की आख का परदा उठाया ही नही जा सकता।

यह परदा बाहरी नही है---यह दूसरी बात समझ ले। यह परदा बाहरी होता तो कोई झटक के दूसरा उठा देता। यह नीद बाहर की होती तो हिला-डुला के कोई भी तुम्हे जगा देता। यह नीद भीतर की है। कितना ही हिलाओ-डुलाओ, शरीर ही हिलेगा-डुलेगा, तुम्हारी चेतना नही। और यह परदा भीतर है। यह घूघट साधा-

रण घूघट नही है, जो स्त्रियो की आखो पे पडा रहता है। उसे तो कोई भी उठा सकता है। यह परदा, यह घूघट भीतर की आख पर है, जिसको हम तीसरी आख कहते हैं।

यह इतने भीतर है कि दूसरा तो प्रवेश ही नही कर सकता। तुम ही जब चाहोगे, तुम ही जब भरोगे आतुरता मे, तुम्हारी ही अभीप्सा जब तुम्हे आन्दोलित करेगी, तुम ही जब जीवन की व्यर्थता को देखोगे, और तुम्ही जब देखोगे परदे के कारण कितनी दीवालो मे टकराना पडता है, सब तरफ से जीवन लहूलुहान हो गया है, इस परदे के कारण द्वार मिलता ही नही, द्वार भी दीवाल हो जाती है, इस परद के कारण जीवन मे सिवाय कलह के, दुख के, नर्क के, कुछ और नही होता, ऐसा क्षण आता ही नही जब तुम कह सको, आनन्द भयो रे! एक क्षण भी जीवन मे ऐसा नही आता, जब तुम नाच उठो, और तुम कहो, धन्यभागी हू कि जो भी मैंने दुख भोगे, वह इस एक क्षण मिले आनन्द के लिए, पर्याप्त थे, कोई हर्जा नही हुआ, कोई नुकसान नही हुआ। खूब पा लिया मैंने, वो दुख ना-कुछ थे। अगर उतने दुख फिर झेलने पडे तो मैं तैयार हू इस एक क्षण आनन्द के लिए। लेकिन ऐसा कुछ भी नही होता।

नही होता इसलिए कि न तो तूफान चल रहा हो बाहर तो तुम्हारा घूघट हट सकता है, न आग लग जाए बाहर तो तुम्हारा घूघट जल सकता है। भूल-चूक मे भी, दुर्घटना मे भी, तुम्हारा घूघट हिलेगा नही। भीतर है और इन आखो पर है।

एक भीतर की दृष्टि है, उसके खुलते ही सारा जीवन बदल जाता है।

एक बाहर की दृष्टि है, वह खुली भी रहे तो भी काम चलता है—जीवन नही बदलता। वह बन्द भी हो जाये, तो भी काम चल जाता है। अन्धा भी काम चला लेता है, आख वाले भी काम चला लेते हैं। इन आखो से गहरी भी एक आख है वही खुलती है, जब हम किसी को व्यक्ति को कहते है बुद्ध हो गया, जिन हुआ, जागा, होश पाया। और तब सब रूपातरित हो जाता है! क्योंकि जब तुम भीतर जागते हो, तो तुम्हारी सारी सृष्टि बदल जाती है। तुम जो देखते हो, तुम्हारे कारण ही देखते हो।

मुल्ला नसरुद्दीन को एक रात पकडा गया। काफी पी गया था। काफी झूम-झटक की सिपाही से, गाली-गलौज की। मगर वह उसे घसीट कर कोतवाली ले गया। कोतवाली म भी घुसा तो बहुत नाराज था और कहा कि यह क्या बदतमीजी है, मुझे किसलिए यहा लाया गया है? वो जो इन्स्पैक्टर था कोतवाली मे, उसने कहा, 'शराब के लिए लाया गया है।' उसने कहा 'अरे, तब बात और!' प्रसन्न हो गया 'फिर कब शुरू करेंगे?'

शराब मे डूबा हुआ आदमी, जो अर्थ भी देखेगा शब्दो मे, वो भी उसका अपना होगा। शराब की अभीप्सा, आकाक्षा से भरा हुआ आदमी, इतना बेहोश है, कि

वो जो सुनेगा, उसमे से भी अपना ही अर्थ निकालेगा। अर्थ भी उसका मूर्च्छित का अर्थ होगा। अर्थ भी उसका अपना ही होगा। स्वाभाविक यही है।

तुम जो देखते हो, वो वही नही है जो है। तुम वही देखते हो जो तुम देखना चाहते हो। तुम वही सुन लेते हो जो तुम सुनना चाहते हो। तुम वही खोजते हो जो तुम खोजना चाहते हो। किसी दिन उपवास कर लो, फिर उसी रास्ते से गुजरो जिससे रोज गुजरे थे जो दुकाने मिठाई की कभी नही दिखाई पडती थी, वो पहली दफा दिखाई पडेंगी। वही दिखाई पडेगी, बाकी सब खो जायेगा। रेस्टारेन्ट्स् हॉटेल्स्, मिठाई की दुकान, चाय की दुकान, वो सब प्रगाढ हो कर दिखाई पडेगी।

एक सात दिन उपवास कर लो, फिर निकलो तुम्हे बाजार मे जूते की दुकान, कपडे की दुकान दिखाई पडनी बद ही हो जायेगी, सिर्फ तुम्हे भोजन की ही सामग्री की दुकाने दिखाई पडेगी। क्योकि तुम्हारी चेतना यहा भीतर भूख से भरी है। भूख देख रही है, अब तुम नही देख रहे हो। तो दृष्टि सृष्टि है।

बडी पुरानी कहानी है। महाराष्ट्र मे सत हुए, रामदास। उन्होने राम की कथा लिखी। वे लिखते जाते, और रोज लोगो को सुनाते जाते। कहते हैं, कथा इतनी प्यारी थी कि खुद हनुमान भी उसे सुनने आते थे। छिप के बैठ जाते भीड मे। जब हनुमान सुनने आए तो बात कुछ राज की ही होगी, क्योकि हनुमान ने तो कथा खुद ही देखी थी। अब कुछ इसमे देखने जैसा नही था। लेकिन रामदास कह रहे थे, तो बात ही कुछ थी, कि खुद देखने वाला मौजूद जो था चश्मदीद गवाह, वो भी यह कहानी सुनने आता था। लेकिन एक जगह हनुमान को बरदाश्त न हुआ। क्योकि हनुमान का ही वर्णन हो रहा था। और रामदास ने कहा, हनुमान गये अशोक-वाटिका मे, लका मे। और उन्होने देखे कि चारो तरफ सफेद फूल खिले है। हनुमान ने कहा, 'ठहरो। सुधार कर लो। फूल लाल थे, सफेद नही थे।' रामदास ने कहा कि कौन नासमझ बीच मे सुधार करवा रहा है? तब हनुमान ने अपने को प्रगट कर दिया। उन्होने कहा कि अब प्रगट करना ही पडेगा कि मै खुद ही हनुमान हू, जिसकी तुम कथा कह रहे हो। और मै कहता हू कि वहा फूल लाल थे, सफेद नही। रामदास ने कहा, 'कोई भी हो, चुप बैठो! फूल सफेद थे।

झगडा बहुत बडा हो गया। और तब एक ही उपाय था कि अब राम के पास जाया जाए। हनुमान ने कहा, 'तो चलो राम के पास। वे जो कह दे वही निर्णय। क्योकि यह हद हो गई! मैं खुद चश्मदीद आदमी मौजूद हू और कह रहा हू कि मैंने फूल देखे! तुम मेरी कथा कह रहे हो—और वो भी हजारो साल बाद कह रहे हो। और एक छोटी-सी बात पे जिद कर रहे हो। क्या बिगडना है, कि तुम फूल लिख दो कि लाल थे?'

पर रामदास ने कहा, 'बिगडने का सवाल नहीं, जो सच है, सच है। फूल सफेद थे।

झगडा राम के पास गया और राम ने हनुमान से कहा, 'तुम चुप रहो। राम-

दास जो कहते है, ठीक कहते है। तुम उस समय इतने क्रोध मे थे, आखे खून से भरी थी, तुम्हे लाल दिखाई पडे होगे। रामदास को कोई, कोई क्रोध नही है। वो दूर तटस्थ भाव मे देख रहा है। फूल सफेद ही थे। मुझे भी पता है।'

जब तुम क्रोध से देखोगे तो चीजे और हो जायेगी। स्वभावत, जब तुम लोभ से देखोगे तो चीजे और हो जायेगी। जब तुम वासना, कामना से भर के देखोगे, तो चीजो मे एक सौदर्य आ जायेगा, जो है ही नही। देखने वाला अपने को ही फैला के देखता है। इसलिए तुम्हारी दृष्टि ही तुम्हारी सृष्टि हो जाती है। जब तुम बदलोगे और तुम्हारी दृष्टि बदलेगी, तत्क्षण सारी सृष्टि बदल जायेगी। जहा तुम्हे बहुमूल्य दिखाई पडा था वहा कचरा दिखाई पडेगा। जिसे तुमने असार समझ के छोड दिया था, हो सकता था वहा सार दिखाई पडे, और जिसे तुमने सार समझ के छाती मे लगा रखा था वहा तुम्हे असार दिखाई पडे।

जीवन, तुम्हारी दृष्टि का फैलाव है। और जिसके भीतर की दृष्टि सोयी हो, वो ऐसा है जैसे भीतर है ही नही। सब सोया है। उस भीतर की दृष्टि के सोने के कारण तुम जीवन के भीतरी अगो को नही देख पाते। बाहर की आख बाहर को ही देख सकती है। भीतर की आख भीतर देखेगी। तुम देखते हो मुझे, लेकिन अगर बाहर की आख से देखते हो, तो तुम मेरे शरीर को देखोगे, तुम मुझे न देख पाओगे। अगर तुम भीतर की आख से देखते हो, तो ही मुझे देख पाओगे। तब यह शरीर सिर्फ घर रह जायेगा, ऊपर के वस्त्र, और भीतर के चैतन्य का आविर्भाव होगा। अगर तुम सिर्फ कानो से सुनते हो बाहर के, तो तुम मेरे शब्द सुन पाओगे, और अगर भीतर का कान तुम्हारा जागा हो, तब तुम मेरे अर्थ को समझ पाओगे। क्योकि शब्द तो खोल है, शरीर है, अर्थ, आत्मा है।

तुम जितने गहरे हो, उतना ही गहरा तुम देखोगे, उतना ही गहरा तुम सुनोगे, उतना ही गहरा तुम्हारा सारा अनुभव होगा। तुम अगर छिछले हो, तो अनुभव बहुत गहरा न हो पायेगा।

झेन कथा है कि एक सद्गुरु अपने शिष्य के पास गया। वो शिष्य बाहर ही बैठा था। सद्गुरु ने पूछा, 'सत्य क्या है?' उस शिष्य ने मुट्ठी बाध के बताई। सद्गुरु वापस लौटने लगा और उसने कहा कि पानी बहुत उथला है, बडे जहाज यहा न रुक सकेगे। शिष्य बडा दुखी हुआ, और उत्तर तो उसने बहुत सोच-समझ के दिया था। वही तो भूल हो रही थी। उसने सुन रखा था, कि जब यह गुरु लोगो से कुछ पूछता है, तो यह शब्दो मे उत्तर नही चाहता। और उसने पुरानी कहानी सुन रखी थी कि फला शिष्य के पास गया तो उसने मुट्ठी बाध के बता दी और इसने कहा, कि ठीक। क्योकि मुट्ठी बाधने का मतलब है एक, पाच नही, एक पच तत्व नही, एक तत्व, पाच इद्रिया नही, एक आत्मा। सो, सुन रखी थी कहानिया तो उसने भी मुट्ठी बाध के बताई। लेकिन वो मुट्ठी झूठी थी, उसके भीतर

एक नही था। उस मुट्ठी मे पाच थे। क्योकि मुट्ठी उतनी ही गहरी हो सकती है, जितना उसका अनुभव था। वह जानता तो इतना था कि पाच सच है। एक की बात तो सुनी थी, उधार थी, बासी थी, अपनी न थी। तो गुरु ने कहा, यह जगह बहुत उथली है, और बडे जहाज यहा न रुक सकेगे। बडा पीडित हुआ शिष्य, बडा दुखी हुआ।

वर्षों के बाद गुरु फिर आया। उसने फिर मुट्ठी बाधी। गुरु ने कहा, 'खूब ! खूब खुदाई की। पानी खूब गहरा कर लिया ! अब जहाज रुक सकता है।'

देखने वालो को बडी हैरानी हुई, क्योकि दोनो बार एक ही बात हुई थी—वो मुट्ठी बाधी गई थी, पहली दफे भी और दूसरी दफे भी। लोगो ने गुरु से पूछा कि हम कुछ समझे नही, रहस्य कर दिया, पहेली बना दी। पहली बार भी इस शिष्य ने यही मुट्ठी बाधी थी। इसके लिए बीस साल बाद दुबारा आने की जरूरत थी ?

गुरु ने कहा इस बार मुट्ठी मे पाच नही, एक है। तब मुट्ठी मे पाच थे। मुट्ठी दिखती थी बधी है, भीतर खुली थी। अब मुट्ठी बाहर ही नही बधी है, भीतर भी वध गई है। अब इसकी मुट्ठी मे अर्थ है। अब यह मुट्ठी प्रतीक नही है, अनुभव है।

शब्द तो वही हैं, प्रतीक वही हैं, लेकिन जैसे ही तुम बदल जाते हो, तुम्हारे शब्दो का अर्थ बदल जाता है, तुम्हारे जीवन के ढग, तुम्हारे जीवन की सुरभि बदल जाती है। सब कुछ वैसा ही रहता है, फिर भी कुछ भी वैसा नही रह जाता। सब कुछ ऊपर-ऊपर वैसा ही होगा। तुम कभी बुद्धत्व को उपलब्ध हो जाओगे, कभी तुम्हारे भीतर का कबीर भी जागेगा ही। आखिर कितनी देर लगाओगे ! सब ऊपर-ऊपर ऐसा ही होगा, जैसा आज है—दुकान जाओगे, घर काम करोगे, बच्चो का पालन-पोषण करोगे, भूख लगेगी, खाना खाओगे, नीद लगेगी, सोओगे, सब ऊपर-ऊपर वैसा ही होगा—पहली मुट्ठी ! लेकिन भीतर-भीतर सब बदल जायेगा—दूसरी मुट्ठी ! तुम बदल जाओगे। और तुम्हारे बदलने के साथ जीवन के सारे अर्थ, और जीवन का सारा काव्य, जीवन की सारी प्रतीति बदल जायेगी।

जब भीतर की आख खुलती है, तब तुम्हे पदार्थ दिखाई नही पडता है, या, पदार्थ दिखाई पडता है, तो पारदर्शी हो जाता है। पदाथ के भीतर जो छिपा है परमात्मा, वो दिखाई पडता है। पदार्थ उसकी पारदर्शी खोल हो जाती है।

ये दो बाते खयाल मे रख ले।

परदा सत्य पर नही, अपनी ही आख पर है, इसलिए घूघट किसी और ने नही डाला। कोई और डालेगा तो आदमी सदा के लिए परतत्र हो जायेगा। क्योकि जब वो उठाना चाहेगा, तब उठेगा। लेकिन मनुष्य की आत्मा परम स्वतत्र है। यही उसकी गरिमा है। तुमने ही डाला है। भटके हो तो तुम, भटके हो तो जान के, भटके हो तो बूझ के ! अगर गलत भी गये हो, तुम ही गये हो ! और इसलिए सुगम है कि तुम ठीक मार्ग पर आ जाओ। जिस दिन चाहोगे, उसी दिन आ जाओगे।

दूसरी बात यह ऊपर की आखो पर घूघट नही है, घूघट भीतर की आख पर है। इनको खयाल मे रखें, फिर कबीर के इन सूत्रो मे उतरे।

'घूघट के पट खोल रे, तोको पीव मिलेंगे।'

कबीर के लिए परमात्मा प्रिय है, प्रीतम है, पिया है।

सत्य को जब प्रेम की आख से देखा जाता है, तो सत्य फिर एक रूखी-सूखी दार्शनिक धारणा नही होती, फिर सत्य प्रियतम होता है। फिर वही प्यारा होता है, बाकी कुछ भी प्यारा नही रह जाता। और जहा भी वो होता है, वो सभी प्यारा हो जाता है।

तो एक तो यह बात खयाल ले ले कि सत्य को अगर तुमने एक रूखी-सूखी धारणा की तरह खोजना चाहा जैसे विज्ञान की खोज है, वह रूखी-सूखी खोज है। उससे खोजी भीगता नही। उससे खोजी वही का वही रहता है। उससे खोजी के जीवन मे रूपान्तरण नही आना है, आर्द्रता नही आती, गीलापन नही आता। खोजी रूखा ही बना रहता है।

एक दार्शनिक खोजता है सत्य को, तर्क जुटाता है, बडे सिद्धातो के जाल खडे करता है, सब तरह की परीक्षाए करता है विचार से—उसका जीवन भी रूखा-सूखा रह जाता है। वह ऐसा वृक्ष है, जिस पे हरे पत्ते कभी नही लगते, जिसमे कभी फूल नही आते। वो सूखी शाखाए है, जिनमे कुछ नही लगता। शास्त्र का ढेर बढता जाता है, शब्दो के जाल बढते जाते है, और भीतर के प्राण सूखते जाते हैं। अगर तुम दार्शनिक के शब्द भी सुनो, तो भी तुम्हे रेगिस्तान का स्वाद देंगे। सब सूखा, तप्त! उनमे कभी भी तुम्हें जीवन की हरियाली न उठती हुई मालूम पडेगी।

कबीर दार्शनिक नही हैं—कबीर प्रेमी है। उनके शब्दो मे बडा रस है। और वो रस खबर देता है कि भीतर की किसी रसधार मे डूब के वे शब्द आए है। इस-लिए हमने तो ऋषि को कवि कहा है। सस्कृत मे ऋषि और कवि दोनो शब्दो का एक ही अर्थ है। धीरे-धीरे हमे दो अर्थ करने पडे। क्योकि ऐसे लोग भी है, जिन्होने बिना सत्य को जाने भी कविताए लिखी है। कविताए कितनी ही प्यारी हो उनकी उनमे कोई आत्मा नही है। भीतर वे खाली है। ऊपर काफी रग-रौनक है, भीतर प्राण नही हैं। घर बहुत सुदर है, निवासी नही है। देह बिलकुल ठीक है, लेकिन प्राण-पखेरू उड चुके है, या कभी थे ही नही।

पश्चिम मे मुर्दे को भी लोग ले जाते है तो खूब सजा के ले जाते है। स्त्री मर जाती है तो भी उसके होठ पे लिपिस्टिक लगा देते है, आख की पलको पे काजल लगा देते है, गाल पर लाली लगा देते है मरी हुई स्त्री, बडी जीवित मालूम पडती है।

कवियो की कविताए ऐसी ही है, वहा भीतर कुछ आत्मा नही है, ऊपर काफी रग-रौनक है। इसलिए अक्सर एक बात खयाल रखना, किसी कवि की कविता

पसद आ जाए तो भी कवि को खोजने मत जाना। नही तो कवि को देख के बडी निराशा होगी। कविता तो बडी ऊची मालूम पडती थी, और कवि बिलकुल साधारण मालूम पडेगा कोई ऊचा नही, कोई गहराई नही। कविता पसद आ जाए तो कवि के पास मत जाना। क्योकि वहां व्यक्ति नही है। वहा सिर्फ एक कौशल है, एक तकनीक है। वह आदमी लय, छद, शब्द, भाषा का ज्ञाता है, और उनको इस भांति बाध सकता है कि एक सगीत का भ्रम पैदा हो जाए। लेकिन सब ऊपर-ऊपर है—लाश पर लगा हुआ लिपस्टिक है, लाश की आखो पे लगा हुआ काजल है। और स्त्री बिलकुल सुदर मालूम पडती है। और ऐसी लगती है कि अभी-अभी कश्मीर से यात्रा करके लौटी है। लेकिन भीतर सब मृत है। भीतर कोई जीवित नही है। इस स्त्री के प्रेम मे मत पड जाना। इस स्त्री को सिवाय दफनाने के और कोई उपाय नही है।

कविता के प्रेम मे अगर कभी आ जाओ तो कवि को खोजने मत जाना, नही तो मुश्किल मे पडोगे, क्योकि कवि को देखने से कविता भी व्यर्थ हो जायेगी।

उर्दू मे बडे शायर हुए है, और उन्होने बडी ऊचाई की बाते कही हैं, लेकिन, उन आदमियो की तलाश मे मत जाना। तुम उनको अपने से गया-बीता पाओगे। ऋषि और कवि मे यही फर्क है। कवि को तुम हमेशा उसकी कविता से छोटा पाओगे, ऋषि को हमेशा तुम उसकी कविता से बडा पाओगे। तुम जब ऋषि को खोजने जाओगे, उसके गीत को सुन कर, तब तुम्हे पता चलेगा कि गीत तो ना-कुछ था, और अगर हम गीत मे ही प्रसन्न हो के रह जाते, तो एक अवसर खो जाता। यह जिससे गीत निकला है, वह तो अनत है, वह गीत तो सिर्फ इसकी एक लहर थी, और वह ना-कुछ था।

एक दफा तुम कबीर को देख लोगे, तो कबीर के वचनो मे कुछ भी पता नही चलेगा, इस आदमी को तो पीछे ही छोड आए वो वचन। सागर पीछे छूट गया है, और एक हलकी-सी बरखा का झोका तुम्हारे पास आ गया था, एक छोटी-सी बदली तुम्हारे घर पर आ कर बरस गई थी—ऐसी थी कविता। और यह तो महासागर है—जिससे ऐसी अनत बदलिया उठ सकती हैं और अनत घडो पे बरस सकती हैं।

ऋषि हमेशा पाता है कि जो उसने कहा, वो छोटा हो गया—जो वो कहना चाहता था, उससे।

ऋषि के पास सत्य है। सत्य शब्दो से बडा है। जब भी सत्य शब्दो मे लाया जाता है तो जैसे एक सकरी जगह मे बडे आकाश को कोई समाने की कोई कोशिश करता हो। बडा कठिन है। और ऋषि के शब्दो मे जो आनद की पुलक है, वो केवल शब्दो का सार-सवार नही है। वो जो आनद की पुलक है, वो जो जहा से शब्द आये हैं, जिस हृदय से जन्मे हैं, उसकी पुलक की थोडी-सी खबर है। जैसे इक फूलो

से भरे बगीचे से हवा का एक झोका गुजर जाए, तो फूलो की थोडी गध साथ ले जायेगा—राह पर चलते हुए राहगीर को भी वो झोका घेर लेगा, उसे भी थोडी फूलो की गध मिल जायेगी। वो फूलो की गध सिर्फ पास किसी बडे बगीचे की खबर है। वो हवा के झोके मे जो थोडी-सी शीतलता है, वो पास किसी सरोवर की झलक है।

कबीर ऋषि है। कविता के ढग से उन्होने जो कहा है, वो कविता से ज्यादा बडा है। और जब कवि देखता है जगत को तो सत्य रूखा नही रह जाता, रसपूर्ण हो जाता है। काव्य जीवन को देखने का वही ढग है, जिस ढग से प्रेमी प्रेयसी को देखता है। और तुम्हे शायद उसकी प्रेयसी बिलकुल ना-कुछ मालूम पडे, लेकिन प्रेमी को वही सब कुछ मालूम पडती है। प्रेमी प्रेयसी को देखता ही नही, सृजित करता है।

कही खलीलजिब्रान ने एक वचन लिखा है कि प्रेमी अपनी प्रेयसी मे वही देखता है, जो अगर परमात्मा की मर्जी पूरी होती तो वो स्त्री होती। प्रेमी अपनी प्रेयसी मे वही देखता है, जो स्त्री की अनत सभावना है, वो उसे आज देखता है, जो वो कल हो सकती है—अगर परमात्मा की मर्जी पूरी हो पाए। वह उस फूल को नही देखता है जो सामने है, वो उस फूल को देख सकता है जो हो सकता है इस फूल मे। वह सारी सभावनाओ को मौजूद देखता है। वो सारे भविष्य को वर्तमान देखता है।

बाप अपने बेटे मे वही देखता है—वो नही, जो है। इसलिए तो लोग परेशान होते है। हर बाप अपने बेटे की चर्चा कर रहा है। और लोग कहते है, बद भी करो! क्योकि लोगो को उस बेटे मे कुछ भी दिखाई नही पडता और बाप को सब कुछ दिखाई पडता है। और हर बाप को दिखाई पडता है अपने बेटे मे। और फिर बेटे साधारण निकल जाते है।

बाप को क्या दिखाई पडता है बेटे मे? बाप को वो दिखाई पडता है जो बेटा अगर ठीक-ठीक बढे तो होगा, उसे उसका पूर्व-दर्शन होता है। लेकिन बेटा अगर भटक जाए, तो नही हो पायेगा। और बेटे भटक जाते हैं। बाप झूठा साबित होता है। लेकिन बाप ने जिस प्रेम की आख से देखा था, वो हो सकता था।

हर मा अपने बेटे मे श्रेष्ठतम को देखती है। वो श्रेष्ठतम हो सकता है। वो सभावना है। यह ककड-जैसा दिखाई पडने वाला बेटा, थोडे ही निखार से, थोडे ही छैनी के प्रयोग से हीरा बन सकता है, लेकिन बनेगा या नही, यह नही कहा जा सकता।

प्रेम उसे देख लेता है, जो अगर सब ठीक बीते तो, तुम हो सकते। घृणा वो देख लेती है, जो अगर सब गलत हो जाए तो तुम हो जाओगे। घृणा तुममे नर्क को देख लेती है। प्रेम तुममे स्वर्ग को देख लेता है। घृणा तुम मे शैतान को देख लेती है। प्रेम तुम मे भगवान को देख लेता है।

साधारण प्रेम मे भी ऐसी झलक मिलती है। वो सिर्फ तुम्हारी कल्पना ही नही है। वो प्रेम की आख है, जो छिपे को उघाड लेती है, जो दबे को प्रगट कर लेती

है, जिसके सामने गुप्त अपने द्वार खोल देता है, रहस्य खुल जाता है। लेकिन जब कोई सारे जगत को प्रेम से देखता है, जब कण-कण को प्रेम से देखता है, जब रत्ती-रत्ती इस जगत की तुम्हें अपनी प्रेयसी या प्रेमी बन जाती, तब जिस विराट का उदय होता है, वही परमात्मा है।

इसलिए कबीर परमात्मा को 'पीव' कहते हैं, 'प्यारा' कहते हैं, 'प्रियतम' कहते हैं। कबीर के लिए सत्य रूखा-सूखा, धारणा नही—प्रियतम है। विश्व और मनुष्य के बीच जो सबध है, वो तर्क का नही, प्रेम का है। इसलिए दार्शनिक जिसे उपलब्ध नहीं कर पाता, उसकी झलक कवि को मिल जाती है। और कवि को झलक ही मिलती है, ऋषि उसके साथ एक हो जाता है।

'घूघट के पट खोल रे, तोको पीव मिलेगे।'

और आख तुम्हारी घूघट से दबी है।

क्या है घूघट?

बुद्ध का एक वचन है कि तुमसे बडा तुम्हारा कोई मित्र नही, और तुमसे बडा तुम्हारा कोई शत्रु भी नही। क्योंकि तुम अगर पीठ करके चलो, तो अपने ही सबसे बडे शत्रु साबित होओगे। और तुम अगर सत्य की तरफ उन्मुख होकर चलो, तो तुम ही अपने सबसे बडे मित्र हो जाओगे।

क्या है घूघट?

तुम जीवन के प्रति पीठ करके चल रहे हो। तुम भगोडे हो, पलायनवादी हो, एस्केपिस्ट हो! तुम किसी तरह जीवन से बचना चाहते हो साक्षात नही करना चाहते—वही घूघट है।

समझने की कोशिश करे।

जहा भी जीवन होता है, वही से तुम बचने की कोशिश करते हो—और फिर भी तुम परमात्मा को पाना चाहते हो! परमात्मा महाजीवन का नाम है। पर क्यो आदमी जीवन से बचता है? कुछ भय है। एक तो भय है कि जीवन हमेशा प्रतिपल अपरिचित और अनजान मे ले जाता है, अज्ञात और अज्ञेय मे ले जाता है। जीवन बधी हुई लीक नही है कोल्हू के बैल की भाति नही है कि तुम एक ही परिधि मे चक्कर काटते रहते हो। जीवन एक आदत नही है, पुनरुक्ति नही है। जीवन प्रतिपल नया हो रहा है। और नये से तुम डरते हो, क्योंकि पुराने से तुम परिचित हो, नये से अपरिचित हो, पुराना जाना-माना है, तुम उसे भलीभाति पहचानते हो। तुम पुराने के साथ जी लिए हो, नये का पता नही। सुख-दुख भोग लिए हो।

यह हैरानी की बात है तुम पुरानी बीमारी को भी पसद करोगे नये स्वास्थ्य के मुकाबले। क्योंकि नये से भय लगता है पता नही क्या हो! बचपन से ही नये से भय लगता है। और सारा समाज सिखाता है नये से भय। अजनबी आदमी पास बैठ जाए तो तुम तत्क्षण उसका नाम पूछते हो 'कहा जा रहे हो? क्या करते हो?

क्या धर्म है?' क्यो पूछते हो, पता है? इसलिए कि जब तक अजनबी है तब तक भय है। पता लग जाये कि ठीक है, हिन्दू धर्म मानता है हम भी हिंदू, तुम भी हिंदू—परिचित हुए। 'बाल-बच्चे हैं?' क्योंकि बाल-बच्चे वाले आदमी का ज्यादा भरोसा! 'काग्रेसी हो कि कम्युनिस्ट?' काग्रेसी ही है, चलो ठीक है!

हम व्यवस्था बना रहे हैं, उससे परिचित होने की।

ट्रेन मे आदमी प्रवेश नही हुआ कि लोग उससे पूछना शुरू कर देते हैं। अगर वो आदमी जवाब न दे, या अनर्गल जवाब दे, तो तुम शकित हो जाओगे कि खतरा है, कि चेन खीच दो ट्रेन की, पुलिस को खबर करो! अगर वह आदमी कहे कि हा, हिंदू या मुसलमान हिंदू ही हू, तो सदेह पैदा करेगा। क्योकि इसमे सोचने की क्या बात! कि तुम पूछो कितने बच्चे हैं और वो सोचे और गिनती करे, तो वो आदमी खतरनाक है! पता नही बिस्तर उठा ले जाए, सामान चुरा ले, जेब काट ले! भरोसे का नही है। अजनबी को हम जल्दी से परिचित बनाना चाहते हैं।

मुल्ला नसरुद्दीन एक ट्रेन मे सवार था। और डब्बे की छत की तरफ आख एक टकटकी लगा के देख रहा था। दूसरा आदमी जो उसके पास बैठा था, वो थोडी देर मे शकित हो ही गया। उसने एक-दो दफा बात-चीत चलाने की कोशिश की, खासा-खखारा, मगर वो एक टक देखता रहा। उसने पूछा भी, 'आप कहा जा रहे है?' मुल्ला ने कोई जवाब न दिया। 'कहा से आ रहे है?' उसने जरा जोर से पूछा कि हो सकता है आदमी बहरा हो। तो भी कोई जवाब न दिया। वो एक टक लगाये त्राटक ही करता रहा। आखिर उस आदमी ने कहा, 'भाई साहब! आपका मफलर खिडकी के बाहर उडा जा रहा है! नसरुद्दीन ने कहा कि तुम चुप क्यों नही बैठते? तुम्हारी सिगरेट से तुम्हारा कोट जल रहा है, मैं तो कुछ नही बोला!

यह आदमी थोडा सदेह पैदा करेगा, यह थोडा डर पैदा करेगा। तुम शाति से अखबार भी न पढ पाओगे इसके पास बैठ के, इसी-इसी की याद आयेगी। तुम्हे जगह बदलनी ही पडेगी।

अजनबी डराता है—क्यो? परिचित भले लगते है—क्यो? भय है! और हम चाहते हैं सुरक्षा। हम चाहते हैं जाना-माना एक घेरा। इसलिए तो जगल मे जाने मे तुम डरते हो, बगीचे मे जाने मे डर नही लगता। बगीचा जाना-माना है, आदमी का बनाया हुआ है, परिचित है। सीमा है उसकी। रास्ते है। भटकने का कोई कारण नही है। जगल मे न रास्ते हैं, न सीमा है, भटकने की पूरी सुविधा है। परमात्मा का बनाया है, और विराट है। इसलिए तो आदमी धीरे-धीरे-धीरे आदमी की बनाई हुई धारणाओं मे जीने लगा, वो बगीचो की भाति हैं।

सत्य मे जाने से डर लगता है, वह परमात्मा का विराट जगल है। वहा तुम बचोगे, लौट पाओगे?—कहना मुश्किल है। लौटोगे तो तुम ही लौटोगे?—यह भी कहना मुश्किल है। वहा जो गया, वह वही तो नही लौटता है, जैसा जाता है।

हमने बुद्ध को जाते और लौटते देखा। हमने महावीर को जाते और लौटते देखा। उन सबसे हम भयभीत हो गये है। हम पूजा कितनी ही करे, जा के महावीर के सामने कितना ही सिर पटके, लेकिन हम भयभीत हो गये है। क्योकि जिन लोगो को हमने उस अनन्त के रास्ते पे जाते देखा और वे लौटे, हमने पाया कि वे बिलकुल दूसरे हो गये। उनका हमसे कोई तालमेल न रहा। उनसे हमारे सब सबध टूट गये। वे हमारे लिए बडे से बडे अजनबी, आउटसाइडर से हो गये।

वो बुद्ध और महावीर की पूजा भी हमारी एक तरकीब है—परिचय बनाने की। उनसे इस तरह हम परिचय बनाते हैं। हम कहते है, आप तीर्थंकर हो, बिल्कुल ठीक, चौबीस तीर्थंकर होते है, आप चौबीसवे हो। हम अपने गणित मे बिठा रहे है। अब कोई कह दे हम पच्चीसवे है, झगडा शुरू! क्योकि चौबीस से ज्यादा हो ही नही सकते! हम खाचा बना रहे है। हम जो अज्ञात उतरा है महावीर मे, उसके लिए भी व्यवस्था दे रहे हैं तर्क और गणित की। हम कबूतरो के खाने मे उनको बिठा रहे है कि 'ठीक, तुम यहा बैठ जाओ, चौबीसवे तीर्थंकर बिलकुल ठीक! तुम इस-इस तरह आचरण करो, क्योकि तीर्थंकर ऐसा आचरण करता है! तुम इस तरह उठो, इस तरह बैठो, क्योंकि यह तीर्थंकर का ढग है!' जब वे हमारे ढाचे मे बिल्कुल हमे बैठे हुए मालूम पडेगे हम निश्चित हो गये, अब कोई डर न रहा।

डर की वजह मे हम पूजा करत है। पूजा हमारा परिचय बनाने का ढग है। तो जिन-जिनको हम पहले गाली देते है उन-उनकी पीछे पूजा करते है। जिन-जिन के खिलाफ हम लडते है, फिर धीरे-धीरे हम उनके साथ राजी हो जाते है, परिचय बना लेते है। और तब तक वो बेचारे जा चुके होते है। फिर उनकी मूर्तियो को रख के हम पूजा करते हैं। लगता है, अभी तक हम डरे है।

मैने एक कहानी सुनी है। सुना है कि ईश्वर बहुत थका था एक दिन। एक दिन क्या, वह रोज ही थकता होगा। इतना विराट गोरखधधा है, थकता ही होगा! इतने-इतने उपद्रव है! तो उसके एक नौकर ने, एक दास ने सलाह दी कि आप ऐसा करो, कुछ दिन छुट्टी पे चले जाओ। और बहुत दिन स आप पृथ्वी पे भी नही गये। एक दस-पन्द्रह दिन के लिए विश्राम करना अच्छा होगा।' तो उसने कहा कि नही, पृथ्वी पे जाने का मन नही है। क्योकि दो हजार साल पहले गया था विश्राम करने, और एक यहूदी लडकी मेरी के प्रेम मे पड गया। अभी तक लोग उसकी चर्चा कर रहे हैं। एक लडका मेरा पैदा हो गया था वहा—जीसस। वह छोटा-सा प्रेम का मामला था। छुट्टी पे गया था। और लोग अभी तक चर्चा कर रहे है और किताबे लिखे जा रहे है और कोई कहता है कि 'कुआरी मेरी' से पैदा हुआ जीसस, और कोई कुछ कहता है, कोई कुछ कहता है। वो बकवास अभी तक उन्होंने बद नही की। तो वहा तो नही जाना चाहूगा।

क्या होता है?

दो-दो हजार साल तक लोग क्यो व्यर्थ की चर्चा चलाते है? अभी तक हम जीसस के साथ परिचित नही हो पाए, इसलिए चर्चा चलानी पडती है। अभी तक यह आदमी बेबूझ है। अभी तक इसके कई कोने अज्ञात हैं। अभी तक हम इसे पूरा का पूरा समझने मे सफल नही हो पाये। अभी भी कुछ न कुछ हिस्से ऐसे हैं, जो हमे अधेरे मे ले जाते मालूम पडते हैं, इसलिए चर्चा जारी है। नई थीसिस, नये शोध-ग्रथ, नये शास्त्र लिखे जाते है। जीसस पे कोई लाखो किताबे लिखी गयी है। और लोग लिखते ही चले जाते है। ऐसा लगता है कि यह आदमी हल नही हो पायेगा।

महावीर पे इतनी किताबे नही लिखी जाती। क्योकि महावीर का जीवन सीधा-साफ है। हम उनसे परिचित हो गये। सच तो यह है कि महावीर के सबध मे बहुत लिखने को है ही नही। थोडे-से तथ्य है और उनको हमने चुकता कर लिया। इसलिए उन्ही-उन्ही को जैन बार-बार लिखे जाते है। कुछ है भी नही उनमे लिखने को और।

लेकिन जीसस ज्यादा बेबूझ मालूम पडता है, क्योकि किसी भी खाचे मे बिठाना मुश्किल है। वेश्या के घर मे ठहर जाता है। चोर के साथ रुक जाता है। जुआरी और शराबियो के साथ दोस्ती बना लेता है। इसका कुछ भरोसा नही। शुरू से ही कहानी गडबड हो जाती हे। ऐसी मा से पैदा हो जाता है, जो कुआरी है। उपद्रव शुरू हुआ, और अत तक चलता जाता है। कुआरी मा से पैदा होता है। और फासी तक बहुत सैन्सेशनल है। सारी कथा! और सारी कथा मे कोने है, जो कि अछूते रह गये है, जिनको कि समझना मुश्किल है।

महावीर को हमने निपटा लिया है, सीधा-सादा जीवन है! हमने उन्हे एक ढाचे मे बिठा दिया है। राम को हमने एक ढाचे मे बिठा दिया है, सीधा-सादा जीवन है। कृष्ण को हम नही बिठा पाए। इसलिए गीता पर टीकाए लिखी जाती है। और कृष्ण पे चर्चा जारी रहेगी।

हमारी पूरी कोशिश हे कि हमारी जानकारी मे बडा जगत न हो। जहा-जहा हम पाते है, हमारी जानकारी से बडा है, वही हम ठिठक जाते हैं। और ध्यान रहे, जानकारी मे बडा है। तुम्हारा जानना है ही क्या? जानने को अनन्त शेष है।

और तुम अगर अनजान अपरिचित से भयभीत हो, तो तुम सत्य को कभी भी न जान पाओगे। इसलिए हम घूघट डाल लेते है। जो-जो हमारी जानकारी के बाहर पडता है, उसको हम घूघट मे परदा कर लेते हे। हम घूघट के भीतर अपनी दुनिया को सम्हाल लेते है, जो हमारी जानकारी है, हमारी सीमा है। घूघट के बाहर उसको डाल देते है, जो हमारी सीमा के बाहर ह।

मनसविद कहते है, इसीलिए हमारे भीतर चेतना दो हिस्सा मे खण्डित हो गई ह एक जिसको चेतन, काशयस कहते है, दूसरा अचेतन, जिसको अनकाशयस कहते है। उन दोनो के बीच मे जो परदा ह, वही घूघट है।

चेतना तो एक है। लेकिन हमने उसके छोटे साफ-सुथरे हिस्से को, जगल के एक कोने को साफ कर लिया है। झाड काट दिये, सीमा बना ली, फेंसिंग लगा दी। छोटा-सा हिस्सा, दसवा हिस्सा हमने अपनी चेतना का, साफ-सुथरा कर लिया है। वहा नीति है, धर्म हैं, आदर्श हैं, सिद्धान्त हैं, शास्त्र है, गुरु है, मदिर, पूजा, प्रार्थना —वहा हमने सब जमा दिया है। उससे नौ गुना बडा अनन्त विस्तार वाला भीतर अचेतन है उसके और इस चेतन के बीच हमने परदा डाल दिया, ताकि न वो दिखाई पडे क्योकि हमारे भी तर्क वही हैं जो शुतुर्मुर्ग दुश्मन को आता देख के रेत मे सिर को छिपा के खडा हो जाता है और सोचता है, जो दिखाई नही पडता वो है नही। यही तो हम भी कहते हैं कि कहा है परमात्मा, पहले दिखाओ, तब हम मानेगे! जो दिखाई पडता है, वह है, जो नही दिखाई पडता है, वो नही है! शुतुर्मुर्ग बिल्कुल नास्तिक है, पक्का! वह सिर को छिपा लेता है रेत मे। वो कहता है, न दुश्मन दिखाई पडता, न हो सकता है। हो तो दिखाओ!

अचेतन का डर है हमे, तो हमने परदा कर लिया। और हम साफ-सुथरी जमीन मे रहते है। कभी-कभी अचेतन धक्के देता है। कभी-कभी कही से घूघट सरक जाता है। कही से व्यवस्था टूट जाती है। तो उस आदमी को हम पागल कहते है कि यह आदमी पागल हो गया। लेकिन हमे पता नही कि वह पागल हो ही इसलिए गया है कि उसकी जानकारी की सीमा मे अज्ञात प्रवेश कर गया।

मैं एक किताब पढ रहा हू एलीवेसेल की—एक यहूदी विचारक। दूसरे महायुद्ध मे जर्मनी मे उसके मा-बाप, भाई-बहन सब मारे गये। अकेला वह किसी तरह बच निकला—छोटा-सा लडका! तो वो अपनी यात्रा का वर्णन कर रहा है कि जब उन्हे एक यात्रा के ट्रेन मे, एक शिबिर मे ले जाया गया, जहा सभी को जला दिया जाना है । सब शकित हैं, लेकिन कोई उपाय नही है भागने का। और लाखो लोग हिटलर ने जलाए। उसने बडी-बडी भट्ठिया बनवाई, ऐसी भट्ठिया कभी नही बनाई गई। तैमूर, चगेज सब बचकाने साबित हो गये। क्योकि उसने ऐसी भट्ठिया बनवाई, जिसमे दस हजार लोग एक साथ डाल दो और राख हो जाए, एक सैकेड मे। विद्युत की भट्ठिया! ट्रेन उस तरफ बढ रही है। सब लोग परेशान है, लेकिन आदमी अपने को किसी तरह आश्वासन देता है कि कुछ-न-कुछ हो जायेगा, कोई चमत्कार होगा, आज्ञा रद्द हो जायेगी, ऐसा होगा, वैसा होगा ! लोग चर्चा कर रहे है और बन्द कारागृह जैसी ट्रेन मे जा रहे हैं।

एक स्त्री पागल हो गई। एक छोटा बच्चा और स्त्री, वे दोनो है, वो पागल हो गये। वह बेटा तक उसे समझाने की कोशिश करता है कि 'मा, घबडाओ मत, जल्दी पिता जी से मिलना होगा। चिल्लाओ मत, रोओ मत, जल्दी ही सब ठीक हो जायगा!' और वह स्त्री बार-बार चीखती है कि 'देखो, लपटे दिखाई पड रही हैं! देखते हो चिमनी आकाश मे उठी है!' लोग एकदम घबडा के, यह जान के कि वो पागल है,

खिडकी से झाक के देखते हैं। न कोई चिमनी है, न कोई लपटे उठी जा रही है, न कोई लपटे दिखाई पड रही है। फिर उसको लोग डाटते हैं कि तू चुप रह। पर उसका पागलपन बढता जाता है। फिर लोग उसे मारते हैं, चुप करने को। उसे कितना ही मारते हैं, लेकिन वह खिलखिला के हसती, वो कहती 'तुम मुझे कितना ही मारो, लेकिन चिमनी है, लपटे उठ रही है, हजारो लोग जल रहे है! तुम्हे बास नही आती?' लोग डरके मारे सूघते भी है, लेकिन कोई बास नही है। फिर लोगो के पास एक ही उपाय है—जब भी वो चिल्लाती, क्योकि वो उनके भीतर के भय को भी जगाती और अचेतन उनका भी चेतन मे प्रवेश करता है। वो भी घबडा तो रहे हैं खुद पता नही क्या होने को है! और यह औरत एक और मुसीबत हो गई। यह घाव को छूती है बार-बार। तो वो उसके सिर पे डडो से मारते है। वह जब बेहोश हो जाती तो चुप रहती है, और जब होश मे आती है, तब वो फिर खिल-खिला के हसती है और कहती है कि देखो सचेत हो जाओ, भाग खडे होओ, अभी वक्त है! मगर धीरे-धीरे लोग समझ गये कि वो पागल है, उसकी बातो पे कोई ध्यान देने की जरूरत नही।

तीसरे दिन सुबह ट्रेन जब स्टेशन पे जा के लगी शिबिर मे और लोगो ने बाहर देखा, तो चिमनी जल रही है, और लपटे उठ रही है। और ठीक जैसा वर्णन वो स्त्री कर रही थी, वैसी ही लपटे है, वैसी ही चिमनी है। और वह पागल थी! और वो सब होश मे थे!

पागल को अक्सर वो बाते दिखाई पडनी शुरू हो जाती है जो तुम्हे दिखाई नही पडती। और पागल को अक्सर भविष्य झाकने लगता है, जो तुम्हे नही झाकता। और पागल को ऐसे सत्य उद्‌भूत होने लगते है, जो तुम्हे नही होते। लेकिन कोई पागलो पे ध्यान नही देता।

नई शोधे यह कहती है कि दुनिया मे जितने पागल है उनमे से नब्बे प्रतिशत पागल वस्तुत पागल नही है, उनके चेतन और अचेतन के बीच का परदा टूट गया है। और सारा मनोविज्ञान इतनी ही कोशिश करता है कि परदे का फिर से बना दे, तो वो फिर सामान्य आदमी हो जाए। परदा तो उठाने को कबीर भी कहते है। तो दुनिया मे परदा उठाने के दो ढग है।

एक तो यह है कि परदा तुम्हारी समझ के बिना उठ जाए, तो तुम पागल हो जाओगे, अगर तुम्हारी समझ के साथ उठ जाए तो तुम परमहस हो जाओगे। अगर परदा अपने-आप किसी तरह सरक जाए तो अचेतन टूट पडेगा तुम्हारे चेतन पर। अधेरा भर जायगा तुम्हारी रोशनी से भरे घर मे। तुम्हारी सब सीमाए अस्त-व्यस्त हो जायेगी, भूकप आ जायेगा। तब तुम विक्षिप्त हो जाओगे। और अगर होशपूर्वक, जुगत से तुम खुद ही घूघट को उठाओ—होशपूर्वक, जान के, समझपूर्वक एक-एक कदम उठाओ—तो तुम विमुक्त हो जाओगे। विक्षिप्त या विमुक्त—दो

घटनाए घट सकती हैं परदे के टूटने से। शायद इसलिए हम डरते भी हैं कि घूघट को उठाया और कही पागल हो गये ।

मैंने जो ध्यान की विधिया खोजी हैं, वो सब ऐसी हैं जिनमे तुम जुगत से परदा उठा सको। वो सब समझपूर्वक पागल होने की विधिया है।

मेरे पास लोग आते हैं, वो कहते है, 'यह क्या पागलपन करवा रहे हैं।' मैं उनको कहता हू, 'जान के ही करवा रहा हू। यही तुम्हारा भय है कि पागल न हो जाओ। तो मै तुम्हे जान के करवा रहा हू ताकि तुम जान के पागल हो सको, जान के वापिस लौट सको। जान के चेतन मे आ जाओ और जान के अचेतन मे चले जाओ, बीच का घूघट उठाने की कला तुम्हे आ जाए। फिर तुम कभी पागल न हो सकोगे।'

इसलिए परमसतो मे और पागलो मे थोडा-सा तालमेल होता है। और अक्सर लोगो को वो पागल मालूम पडते है—अक्सर पागल मालूम पडते हैं। एक बात का तालमेल होता है कि दोनो मे घूघट उठ गये। पागल का अचेतना मे उठ गया है, परमहस का जान बूझ कर उठाया गया है। इसलिए दोनो मे एक बात समान है कि दोनो के घूघट हट गये हैं।

अगर तुम पागल होने से बचना चाहो तो परमहस होने के अतिरिक्त और कोई उपाय नही है। क्योकि तुम जहा खडे हो वहा किसी भी दिन घूघट टूट सकता है। तुम ठेठ बीच मे खडे हो। और तुम अगर अनजाने गिर गये पागलपन मे तो तुम्हे वापिस लाना बहुत असभव है। इसके पहले कि पागलपन प्रवेश हो जाए, तुम खुद ही जाग जाओ और पागलपन मे से गुजर जाओ। होशपूर्वक जो पागलपन से गुजर जाता है, वह परमहस हो जाता है। होशपूर्वक पागल हो जाना परमहस होने की कला है।

कबीर कहते है, 'घूघट के पट खोल रे, तोको पीव मिलेगे।
घट-घट मे वह साई रमता, कटुक वचन मत बोल रे।'

घट-घट मे, कण-कण मे, एक का ही वास है। जीवन तो एक है। कही वृक्ष हो गया, कही चट्टान है, कही चाद-तारा है, कही पशु-पक्षी है, कही मनुष्य है, कही विक्षिप्त है, कही विमुक्त है। जीवन तो एक है, रूप अनेक है। और सब रूपो के भीतर छिपा निराकार तो एक है। उसी से सब रूप पैदा होते हैं और सभी उसी मे खो जाते है।

इसलिए कबीर कहते है, शत्रु को देखना बद कर दे, शत्रु यहा कोई भी नही। अजनबी यहा कोई भी नही, अपरिचित यहा कोई भी नही । वही है! चोर मे भी वही, साधु मे भी वही। पापी मे भी वही, पुण्यात्मा में भी वही। तो तू कटुक वचन मत तोल रे।

'कटुक वचन मत बोल रे' तो प्रतीक है कि तू एक कठोर शब्द भी मत बोल। तू क्रोध को बीच में मत ला। घृणा को बीच मे मत ला। ईर्ष्या, वैमनस्य को बीच

मे मत ला। क्योकि घृणा तू किसको करेगा, क्रोधित तू किस पर होएगा? वही एक है!

लेकिन यह तो घूघट को सरकाने की विधि है। हम क्या करते है? हम तो घूघट को मजबूत करते है। हमारी आम दृष्टि यह है कि सारी दुनिया हमारी दुश्मन है। चाहे तुम जान के सोचते हो या नही, लेकिन तुम मानते हो कि सारी दुनिया तुम्हारी दुश्मन है। इस बडी दुश्मनो की दुनिया मे तुमने थोडा-सा परिवार बना लिया है। पत्नी है, बच्चे है—ये अपने है, बाकी सब पराये है। यह परिवार भी धीरे-धीरे छोटा होता जाता है। कभी सौ-पचास लोग एक परिवार मे रहते थे, वो अपने थे, अब परिवार मे पाच ही लोग बचे हैं। पति है, पत्नी है, बच्चे है—वो भी पक्के मालूम नही पडते कि अपने है, क्योकि तलाक हो सकता है। पत्नी किसी और की हो सकती है। वस्तुत अगर तुम गौर से देखोगे तो तुम पाओगे कि तुम अकेले ही बचे हो। सारी दुनिया दुश्मन है! और तुम्हे सारी दुनिया से लडना है!

और यह शिक्षा, सस्कृति, समाज के सस्कारो का परिणाम है। क्योकि सिखाया जा रहा है प्रतिस्पर्धा, कॉम्पटीशन लडो! क्योकि तुम्हे भी वही पाना है जो दूसरो को पाना है। चीजे कम है, सघर्ष जरूरी है। एक-दूसरे की गर्दन को काटे बिना पहुचोगे कैसे! एक-दूसरे को सीढी बनाओ! एक-दूसरे के सिर पे पैर रखो और ऊपर चढो! ऊपर चढने का एक ही उपाय है कि लडो! अगर तुम जरा ही चूके, जरा ही शिथिल हुए, विनम्र हुए, नम्र हुए—भटक जाओगे! फिर पहुच न पाओगे। सघष कठिन है। और हर आदमी दुश्मन है।

जब हर आदमी दुश्मन दिखाई पडे तो परदा, घूघट मजबूत होता जायेगा। तब तुम जब तक कारण न मिल जाए, किसी को मित्र नही कहते। लेकिन शत्रु तो सब है ही—अकारण। जब तक बिलकुल सिद्ध न हो जाए कि यह मित्र है, तब तक तुम किसी को मित्र नही मानते। लेकिन शत्रु बिना सिद्ध किए सभी है।

कबीर ठीक उलटी बात कह रहे है। वो कह रहे है कि जब तक सिद्ध ही न हो जाए कि शत्रु है तब तक तो कम-से-कम मित्र देखो! लेकिन बडे मजे की बात है, एक आदमी चोरी कर ले तुम्हारी, सारी मनुष्यता चोर हो जाती है। उस दिन से फिर तुम्हारा मनुष्यता पे विश्वास टूट जाता है। चार अरब मनुष्य है दुनिया मे, और एक आदमी ने चोरी कर ली, और चार अरब मनुष्य चोर हो गये! अब तुम किसी पे भरोसा नही कर सकते। जिसने चोरी की उस पे मत करो, एक को छोड दो, लेकिन एक को छोड के जो बचते है, चार अरब मनुष्य, इन्होने तो कुछ नही किया।

एक मुसलमान ने तुम्हारे साथ कुछ बुरा कर दिया, सारे मुसलमान बुरे हो गये! एक हिंदू ने तुम्हे धोखा दे दिया, सारे हिंदू खराब हो गय! एक जैन बेईमान निकल गया, सारे जैन बेईमान हो गये! जैसे तुम तैयार ही बैठे हो सभी को दुश्मन मानने के लिए! एक सिद्ध कर देता है, सब सिद्ध हो जाते हैं। लेकिन एक आदमी अच्छा हो, उससे सब अच्छे नही होते सिद्ध। यह बडे मजे की बात है। एक मुसलमान

तुम्हे कितनी ही सहायता दे, और कितना ही अच्छा हो, साधु हो, मृत्यु के क्षण मे दाव पे अपने को लगा दे, तो भी सब मुसलमान साधु नही होगे। तुम कहोगे, यह अच्छा आदमी, बाकी सब बेईमान!

मैं यह कहना चाह रहा हू कि तुम मान के ही चलते हो कि सब शत्रु है। और जब तुम यह मान के चलते हो, तो तुम्हारा घूघट मजबूत होता है। इस घूघट को तोडने का उपाय है कि तुम दूसरे के प्रति जो दुर्भाव है, इसे गिराओ।

महावीर दुर्भाव के गिराने को अहिसा कहते हैं। बुद्ध दुर्भाव के गिराने को करुणा कहते है। क्राइस्ट दुर्भाव को गिराने को सेवा कहते है। वो सब शब्दो के भेद है। एक बात पक्की है कि दूसरे मे तुम दुश्मन मत देखो, क्योंकि घट-घट मे साई रमता! वो एक ही सब मे रमा हुआ है, तुम उसको ही देखो। वही प्रियतम सबमे छाया हुआ है। सब हृदय की धडकनो मे, सब श्वासो की श्वास मे!

कटुक वचन मत बोल रे!

'धन जोवन को गर्व न कीजै, झूठा पचरग चोल र।

अकड ! बहाने अनेक, अकड एक है। कोई धन मे अकडा है, कोई पद स अकडा है। कोई ज्ञान स अकडा है, कोई त्याग से अकडा है। कोई इसलिए अकडा है कि मै जवान हू। कोई इसलिए अकडा है कि मै शक्तिशाली हू। जितनी अकड उतना घूघट मजबूत। जितना अहकार, उतना घूघट कमजोर। तो अकड करने-योग्य भी क्या है? जवानी रुकती कहा! तुम अकड भी न पाओगे, जवानी चली जायेगी! हवा का झोका है—आया और गया! और जो सदा नही रहने वाला, उस पे अकडना क्या!

अब यह बडे मजे की बात है कि जिन्होने उसे खोज लिया जो सदा रहेगा, वो तो अकडते ही नही, और जिनके हाथ मे हवा के झोके बधे है, मुट्ठी बाधे हुए है हवा के झोके पर, वो अकडे जा रहे है!

धन का क्या करोगे? धन से क्या पा लोगे? क्षुद्र मिल सकता है मिलता है! विराट तो खरीदा नही जा सकता।

अकड क्या है?

धनी से ज्यादा गरीब आदमी कहा है! धन है पास मे और तो कुछ भी नही है। तो धन बोझ ही हो जायेगा। और कितनी देर पास मे होगा! आज है, कल नही होगा। मृत्यु तो छीन ही लेगी। जवानी कितने लोग तुमसे पहले जवान नही रहे! कितने लोग जवानी मे अकडे नही! और कितने लोगो ने जवानी मे ऐसा नही समझा कि बस, अद्वितीय है वे! जैसे सदा यह जवानी रहेगी! हवा का एक झोका, या पानी की लहर।

समुद्र के किनारे जा कर देखो, कोई पानी की लहर बडे जोर से उठती है, बडी अकड के उठती है—उठ भी नही पाई कि गिरना शुरू हो जाती है।

इधर तुम जवान हो भी नही पाये कि बुढापा आना शुरू हो जाता है, जवानी जैसे बुढापे के आने का ढग है, जवानी जैसे द्वार है, जिससे बुढापा आता है। किस बात से अकडे हो? जीवन से अकडे हो? इस जीवन के पीछे सिवाय मौत के और कुछ भी नही है। यह सारा जीवन जायेगा तो मौत के गढे मे! सब रास्ते रोम जाते हो या न जाते हो, मरघट जरूर जाते है।

कबीर का एक वचन है ई मुर्दन के गाव। कबीर कहते है, 'यह गाव जहा तुम बसे हो, तुम समझते हो जीवन है? मुझे दिखाई पडता है, तुम सब मुर्दे हो। मुर्दे ही है—क्यू मे खडे, जब जिसकी बारी आ जाए! कोई जरा जल्दी, जो क्यू मे आगे था। और बडा मजा यह है कि क्यू मे आगे पहुचने की कोशिश कर रहे है, कि किस तरह नबर एक खडे हो जाए। मुर्दे है! मरना ही है जब यहा, तो इन बस्तियो को तुम बस्तिया मत कहो, मरघट कहो। देर-अबेर है क्योकि मरघट पे जगह खाली नही है। वहा लाइन लगानी पडती है। जब तुम्हारा समय आयेगा, सुविधा होगी, कब्र खाली मिलेगी, तुम भी पहुच जाओगे। तुम जा कहा रहे हो—सिवाय मृत्यु के और कही भी नही! रास्ते अलग-अलग, दिशाए भिन्न-भिन्न, हाथ तो मौत आती है। गर्व करने योग्य है भी क्या?

'धन जोवन को गर्व न कीजै ' क्योकि अगर इसका गर्व किया, अकडे, तो परदा मजबूत होगा। अगर तुमने देखा कि यह सब तो पानी पे खीची गयी लकीर है, खिच भी नही पाती और मिट जाती है, और गर्व छोड दिया—तो तुम पाओगे कि परदा हटने लगा, घूघट सरकने लगा।

'धन जावन को गर्व न कीजै, झठा पचरग चोल रे।'

और ये जो पाच तत्वो से बनी हुई काया है, यह बिल्कुल झूठी है—सपने जैसी है। माना कि सपना काफी दिन चलता है, सत्तर साल चलता है, पर समय का ही फर्क है। सपना सात मिनट चले कि सत्तर साल क्या फर्क पडता है!

कभी तुमने खयाल किया, रात सपने मे सात दिन मे सत्तर साल हो सकते है! सात मिनट सपना चले, और सत्तर साल का जीवन उसमे बीत जाए। क्या फर्क है? सुबह उठ के तुम कहा, हद हो गई, पूरा जीवन बचपन से ले कर मरने तक सात मिनट मे बीत गया! कभी-कभी कुर्सी पे बैठे तुम्हे झपकी लग जाती है। झपकी लगी, तब तुमने घडी देखी कि बारह बजे थे। झपकी जब खुलती है, तब तुमने घडी देखी कि बारह बज के एक मिनट। एक ही मिनट हुआ और भीतर तुमने इतना बडा सपना देखा कि जो एक मिनट मे कैसे समा गया! अगर तुम उस सपने को बोलो भी तो भी दस मिनट लगते है। अगर तुम किसी को बताओ, क्या-क्या देखा, तो भी दस मिनट लगते हैं। वो एक मिनट मे समा कैसे गया! एक क्षण मे भी पूरा जीवन समा सकता है।

मनोवैज्ञानिको की कुछ खोजे इस बात की तरफ इशारा करती हैं कि जीवन की

लबाई से फर्क नही पडता। कुछ पक्षी हैं, पाच साल जीते हैं। कुछ कीडे-पतगे हैं, चार माह जीते हैं। कोई पतगा है, एक साझ जीता है—बारह घटे ज्यादा से ज्यादा। लेकिन बारह घटे मे वो उतना ही जी लेता है जितना तुम सत्तर साल मे जीते हो। प्रेम मे पडता है, बच्चे पैदा करता है, अडे रखता है, घर-गृहस्थी सम्हालता है, चिंता-फिक्र मे पडता है सघर्ष लडाई, झगडे—सब होता है। बारह घटे मे सब पूरा हो जाता और मर जाता है। अगर ठीक समझो तो तुमसे ज्यादा कुशल है, क्योकि तुम जो काम सत्तर साल मे कर पाते हो, वो बारह घटे मे कर देता है। इफिसियेन्सी तो उसकी ही ज्यादा है। कुशलता तो उसी की ज्यादा है। सब कर देता है। कुछ बचता नही करने को, सब पूरा हो जाता है।

सत्तर साल चले सपना कि सात क्षण चले—क्या फर्क पडता है! सपना सपना है। सपने की लबाई सपने को सत्य नही बना सकती। फिर सपने और सत्य मे फर्क क्या है? सत्य का और सपने का एक ही फर्क है। सपना—जो कभी शुरू हो और कभी अत हो, और सत्य—जो न कभी शुरू हो और न कभी अत हो।

गर्व ही करना है तो सत्य को खोजो, उसका करो। और जिसने उसको पा लिया, वह तो कभी गर्व करता नही। तुम सपने हाथ मे लिये घूमते हो और बडे अकडे हुए हो!

धन जोवन का गर्व न कीजै झूठा पचरग चोल रे।
सुन्न महल मे दियना बारि लै, आसन सो मत डोल रे।।

यह बडा बहुमूल्य वचन है। यह सारा सार है सभी सतो का।

'सुन्न महल मे दियना बारि ले।' भीतर तेरा जो शून्य का भवन है, उसमे ज्ञान का, प्रकाश का, दीया बार ले। वह तेरे भीतर जो शात शून्यता है उस शात शून्यता मे तू जागरूक हो जा।

सुन्न महल मे दियना बारि लै, आसन सो मत डोल रे।

और उस दीये को जलाने के दो अनिवार्य चरण है। एक कि तू अडोल हो जा। आसन सो मत डोल रे।

जापान मे झेन फकीरो ने एक पद्धति विकसित की, जिसको वे झाझेन कहते है। झाझेन का मतलब होता है जस्ट सिटिंग, डूइग नथिग। बस बैठे रहना, कुछ करना नही। सिर्फ एक ही ध्यान रखना कि आसन डोले न। बडी कीमती है।

अगर तुम शरीर को बिना डोले थोडी देर बैठने मे समर्थ हो जाओ, जैसे-जैसे शरीर का डोलना बद होगा, वैसे-वैसे मन का डोलना बद हो जायेगा। क्योकि शरीर और मन दो चीजे नही, एक ही चीज के दो पहलू है। जब शरीर नही डोलता तो मन कैसे डोलेगा! या मन न डोले तो शरीर का डोलना रुक जाता है। कही से भी शुरू करो, लेकिन अडोल हो जाओ। जिसको झाझेन कहते है वो, उसी को कबीर ने कहा है, आसन सो मत डोल रे। बैठ जाओ बिना डोले, कुछ मत करो! एक ही ख्याल रखो कि जरा भी कपन न बचे। शरीर ऐसे हो जाए जैसे पत्थर की मूर्ति।

इस शरीर के पत्थर की मूर्ति होने मे ही तुम पाओगे कि पहले मन शिथिल होगा, विचार कम होगे, कम होगे, कम होगे । कभी-कभी एक क्षण को जब शरीर बिलकुल अडोल होगा, उसी वक्त विचार भी खो जायेगे, शून्य हो जायेगा। यह पहला चरण। अडोल हो कर तुम शून्य महल का द्वार खोल लोगे।

और तब दूसरा चरण कि उस शून्य महल मे तुम जग जाओ। उसमे पूर्ण विवेक को उपलब्ध हो जाओ। देखो, होश को सम्हाल लो। जागरूक ! सो मत जाओ।

सुन्न महल मे दियना बारि ले, आसन सो मत डोल रे।' क्योकि सो भी सकते हो। अगर सो गये तो चूक गये। क्योकि अगर तुम बिना देखे ही शून्य हो गये, तो शून्य तुम्हारा अनुभव न हो पाया। तुम दरवाजे तक पहुचे और वही खो गये सीढियो पर, महल मे प्रवेश न हो पाया।

गहरी निद्रा मे यही घटता है—शरीर अडोल हो जाता है। तुमने खयाल किया होगा, जिस दिन नीद ठीक नही आती उस दिन तुम करवट बहुत बदलते हो। जिस दिन नीद ठीक आती है, उस दिन करवट कम बदलते हो। जिस दिन नीद सच मे ही ठीक आती—जिसे कहते है घोडे बेच के सो गए—उस दिन तुम करवट बदलते ही नही। क्योकि शरीर अडोल हो जाता है। और जब शरीर अडोल हो जाता है तो भीतर स्वप्न शात हो जाते है, तब सुषुप्ति आती है, जो स्वप्न-रहित निद्रा है। उस सुषुप्ति का एक क्षण भी तुम्हे ऐसा लगेगा कि परम आनद और ताजगी हुई। लेकिन कोई तुमसे पूछे कि सिर्फ सोने से आनद और ताजगी कैसे हो गई, तो तुम भी न बता पाओगे। तुम द्वार तक पहुच गये थे सुन्न महल के, लेकिन सोये थे, दरवाजे से वापिस आ गये, भीतर प्रवेश न कर पाए।

पतजलि ने कहा है, समाधि और सुषुप्ति मे एक ही अतर है, अन्यथा दोनो समान है। वो अतर है कि सुषप्ति मे तुम्हे होश नही होता, समाधि मे होश होता है, अन्यथा सुषुप्ति समाधि जैसी है। क्योकि ठीक पहला चरण तो वही है कि शरीर बिल्कुल अडोल हो जाए, मन बिल्कुल शून्य हो जाए। और दूसरा चरण यह है कि तुम जाग जाओ, और होश से भर जाओ। फिर सुषुप्ति समाधि हो गई। फिर सोना ही परम जागना हो गया।

सुन्न महल मे दियना बारि ले, आसन सो मत डोल रे।'

'जागू जुगत सो रगमहल मे, पिय पायो अनमोल रे।'

जागू जुगत सो, जागने की जुगत से, जागने की तरकीब से, पिय पायो अनमोल रे!

सुन्न महल मे दियना बारि ले, आसन सो मत डोल रे।

जागू जुगत सो रगमहल मे, पिय पायो अनमोल रे।

और फिर जाग जा वहा फिर होश से देख उस शून्य के महल को। तत्क्षण वो शून्य का महल रगमहल हो जाता है। जागते ही शून्य नही रह जाता। परम भोग का द्वार खुल जाता है, परम आनद का ! इसलिए रगमहल हो जाता है। राग-रग,

अनत राग-रग! क्योंकि जीवन एक उत्सव है। और परमात्मा सदा नाच रहा है, सदा गीत गा रहा है। परमात्मा एक आनद है। वह आनद का ही नृत्य है। तो, जैसे ही तुम जागोगे, शून्य महल तत्क्षण रगमहल हो जाता है।

'जागू जुगत सो रगमहल मे, पिय पायो अनमोल रे।'

और न केवल शून्य का महल रगमहल हो जाता है, उस रगमहल मे प्रियतम से मिलन हो जाता है।

'कहै कबीर आनद भयो है, बाजत अनहद ढोल रे।

कबीर कहता है, परम आनद हुआ है, और ऐसा ढोल बज रहा है, ऐसा सगीत बज रहा है, जो अनहद है।

'अनहद' बडा कीमती शब्द है। अनहद का मतलब है, जिसकी कोई हद नही, जिसकी कोई सीमा नही, जो बजता ही रहता है, जो सदा बजता रहा है, तुम जानो या न जानो, जो अभी बज रहा है, तुम नही थे, तब भी बजता था, तुम नही होओगे, तब भी बजता रहेगा! इस जगत का उत्सव तुम्हारे कारण नही चल रहा है। अनहद यह उत्सव चलता ही रहा है। यह उत्सव चलता ही रहेगा! दिन हो कि रात, अधेरा हो कि प्रकाश, सुबह हो कि साझ, चाद-तारे हो कि सूरज यह नृत्य चलता ही रहा है! सारा जगत नृत्य मे लीन है और एक अनहद ढोल बज रहा है!

कबीर उसको ढोल कहते है। उसी को उपनिषदो ने ओकार कहा है। वही नाद, अनहद नाद, एक राग, एक सगीत, बिना किसी के बजाए बज रहा है। क्योकि अगर कोई बजायेगा तो कभी थक भी जायेगा। कोई बजायेगा तो कभी रुक भी जायेगा। नही, बिना किसी के बजाये बज रहा है। कोई बजाने वाला नही।

बडी गहरी धारणा है, और वह धारणा यह है कि कोई नाचने वाला नही, नृत्य चल रहा है। क्योकि नाचने वाला होगा तो कभी थकेगा, कभी विश्राम करेगा।

अस्तित्व एक नृत्य है—नर्तक वहा कोई भी नही। अस्तित्व सृजन है—स्रष्टा वहा कोई भी नही। व्यक्ति कोई भी नही है। जिस दिन तुम शून्यमहल मे प्रवेश करोगे, उसी क्षण तुम्हे दिखाई पडेगा कि यह अनहद-नाद तो सदा चल रहा था। तुम बहरे थे। यह शून्यमहल तो सदा ही रगमहल था, तुम अधे थे। और यह प्रियतम तो तुम्हारे भीतर ही बैठा था।

तुम ही हो प्रियतम, तुम ही हो प्रियतमा! किसी और से तुम्हारा मिलन होने का नही है—अपने से ही मिलन होना है!

'कहै कबीर आनद भयो है, बाजत अनहद ढोल रे।'

और जब तक ऐसा क्षण न आ जाए, जहा तुम भी कह सको, आनद भयो है, तब तक चेष्टा को शिथिल मत करना। और चेष्टा एक ही है, जुगत एक ही है जागू जुगत सो। एक ही चेष्टा है कि तुम जो भी कर रहे हो, होशपूर्वक करो। तुम इतने होशपूर्वक करो, जो भी कर रहे हो, कि धीरे-धीरे होश की किरण तुम्हारी

नीद मे समा जाए। तब तुम्हारी सुषुप्ति समाधि बन जायेगी। तब तुम सोए-सोए जाग जाओगे। तब तुम सोये मे ही जाग जाओगे। तब तुम पाओगे सो भी रहे हो, जागे हुए भी हो। और जिस क्षण ऐसा घट जायेगा, उसी दिन तुम कहोगे 'आनद भयो है, बाजत अनहद ढोल रे।'

और जब तक ऐसी घडी न आ जाए,तब तक रुकना मत। क्योंकि बहुत-से पडाव धोखा देते है कि मजिल है। लेकिन जब तक तुम्हारा पूरा प्राण न कह दे कि आनद भयो है, तुम नाचने न लगो और अनहद ढोल न सुनाई पडने लगे, सब तरफ राग-रग है समझ ले।

यात्रा के प्रारभ मे आदमी शाति की तलाश करता है। शाति मिल जायेगी—अगर तुम सुन्नमहल मे सोए हुए भी प्रवेश कर गये, तो शाति मिल जायेगी। लेकिन वो पडाव है, मजिल नही। नीद से भी शाति मिल जाती है। इसलिए तो डॉक्टर, चिकित्सक, मनोवैज्ञानिक, अगर तुम अशात हो तो ट्रैंकोलाइजर देते है। नीद आ जाए तो शात हो जाओ। अच्छी नीद आ जाये ता शाति आ जायेगी। पागल का भी एक ही इलाज है उनके पास कि ट्रैंकोलाइजर दे कि वह सो जाए। सो जाए तो शात हो जाए। सोने से शाति मिल जायेगी। इसलिए धर्म का लक्ष्य शाति नही हो सकता। शाति तो सिर्फ प्राथमिक तैयारी है। वह तो सुन्नमहल है। धर्म तो तभी पूरा होगा, जब वह रगमहल हो जाए।

इसलिए आनद लक्ष्य है, शाति नही। शाति तो निगेटिव है, नकारात्मक है। शाति का अर्थ है कि तनाव नही, परेशानी नही। लेकिन इतना क्या काफी है इतना क्या काफी है कि तुम परेशान नही? इतने मे तुम कैसे कहोगे, आनद भयो है? इतना ही कहोगे कि दुख नही रहा। लेकिन दुख न होना कोई बडी उपलब्धि तो नही हुई। यह तो ऐसे ही हुआ कि पैर मे काटा निकल गया, लेकिन फूलो की वर्षा कहा हुई अभी?

शाति नकारात्मक है, वो पडाव है। आनद विधायक है, वो लक्ष्य है। पहले शाति और शाति मिलेगी—अगर तुम, आसन सो मत डोल रे, उसको साध लो।

यहा ध्यान के जो प्रयोग इस समाधि शिविर मे चल रहे, उन सब मे पहले तुम्हे डुलाने की चेष्टा है, ताकि शरीर डोल ले पूरा, मन भर के। क्योकि अगर शरीर मे तनाव रह जाए, उत्तेजना रह जाये, तो जब तुम शात खडे या बैठे होओगे, तो वो उत्तेजना चहल-पहल करेगी, शरीर डोलना चाहेगा। इसलिए ये सारे प्रयोग मे पहले पूरी तरह डुला दो शरीर को, ताकि शरीर की आकाक्षा हल हो जाए। और तब तुम अगर थोडे-से क्षणो के लिए भी अडोल हो गये, तो बस, शाति का पहला कदम पूरा हुआ। पर यह आधा है। आधी यात्रा हुई, और आधी बाकी है। इसलिए ध्यान का हर प्रयोग उत्सव, अहोभाव मे पूरा होना चाहिए। ध्यान के हर प्रयोग के पीछे, शाति ही नही, आनद की रसधार बहनी चाहिए, ताकि तुम नाचो

और धन्यबाद दो, और तुम भी कह सको कहै कबीर आनद भयो है, अनहद बाजत ढोल रे।'

शाति—पहला पडाव, आनद—लक्ष्य, वो अतिम पडाव है। तुम जहा हो वहा अशाति और दुख है। अशाति तो शाति से मिट जायेगी, दुख शाति मे न मिटेगा। बुद्ध पहले लक्ष्य की बात करते है—शाति, शून्य, दूसरे की बात नही करते। इसलिए बुद्ध का विचार अधूरा है। वेदात, शकर, पूर्ण की बात करते हैं—आनद की, विधायक अहोभाव को। इसलिए वेदात बुद्ध के विचार से गहरा जाता है और पूरा है। बुद्ध पहले कदम हैं, शकर मजिल है। और कबीर ने दोनो को जोड दिया है। कबीर सगम है।

कबीर कहते हैं, सुन्न महल मे दियना बारि ले। यह 'सुन्न' शब्द बुद्ध से आया है, क्योकि बुद्ध 'शून्य' शब्द का बहुत प्रयोग करते है। वे कहते हैं, शून्य ही सब कुछ है। शून्यता ही सिद्धावस्था है। यह सुन्न शब्द बुद्ध से आया है। सुन्न महल मे दियना बारि ले। और 'दियना' भी बुद्ध से आया है। क्योकि वो भी कहते हैं कि दीया जला लो। आखिरी क्षण भी, मरते वक्त भी, अतिम वचन भी उन्होने—अप्प दीपो भव—आनद को कहा कि तू अपना दीया जला ले, अपना दीया खुद हो जा! ये दोना शब्द बुद्ध से आए हैं। 'सुन्न महल मे दियना बारि ले, आसन सो मत डोल रे। लेकिन शेष हिस्सा वेदात का है। यह पहला कदम बुद्ध, दूसरा कदम शकर।

'जागू जुगत सो रगमहल मे, पिय पायो अनमोल रे।
कहै कबीर आनद भयो है, बाजत अनहद ढोल रे।।'

आज इतना ही।

दिनाक १८ नवम्बर, १९७४,
श्री रजनीश आश्रम, पूना

सतो जागत नीद न कीजै ।
काल न खाय कलप नहि व्यापै, देह जरा नहि छीजै ।।
उलट गग समुद्रहि सोखै, ससि ओ सूरहि ग्रासै ।
नवग्रह मारि रोगिया बैठे, जल, मह बिम्ब प्रगासै ।।
बिनु चरनन को दह दिसि धावै, बिनु लोचन जग सूझै ।
ससै उलटि सिह कंह ग्रासै, ई अचरज को बूझै ।।
औंधे घड़ नही जल बूडै, सूधे सों जल भरिया ।
जिहि कारन नल भीन भींन करु, गुरु परसादे तरिया ।।
पेठि गुफा मह सब जग देखै, बाहर किछउ न सूझै ।
उलिटा बान पारिधिहि लागै, सुरा होय सो बूझै ।।
गायन कहे कबहु नहि गावै, अनबोला नित गावै ।
नट वट बाजा पेखनि पेखै, अनहद होत बढावै ।।
कथनी-बदनी निजुके जोहै, ई सभ अकथ कहानी ।
धरती उलटि अकासहि बेधै, ई पुरखन की बानी ।।
बिना पियासे अमृत अचवै, नदिय नीर भरि राखै ।
कहहि कबीर सो जुग-जुग जीवै, राम सुधारस चाखै ।।

८

संतो जागत नींद न कीजै

संतो जागत नीद न कीजै !

दो अर्थ है इस वचन मे---दोना ही जरूरी और समझ लेने योग्य। पहला तो साधारणत हम परिचित है कि हम जागे हुए भी सोये-सोये हैं। हमारे जागने मे त्वरा, तीव्रता नही है। हमारा जागरण ऐसा नही है कि लपट हो। हमारा जागरण बहुत ही टिमटिमाते दीये की तरह है। हमारे जागरण मे नीद मिश्रित है। उठते है, बैठते है, चलते है, काम भी करते है, लकिन जैसे कोई सोये-सोये चल रहा हो।

एक बीमारी होती है---सोमनाबुलिज्म---नीद मे चलने की बीमारी। उस बीमारी का मरीज आख खुली रखता है, रात उठ जाता है नीद से, काम कर आता है, भोजन कर आता है जा के चौके मे, वापिस लौट के सो जाता है। और सुबह उसे याद भी नही होती कि रात तो वो चौके मे गया। सुबह वो खुद ही चकित होता है। अगर वो घर मे अकेला है तो सोचेगा कि भूत-प्रेत है कौन रात भोजन कर गया! किसने रात कपडे फाड डाले! वो खुद ही फाड देता है रात। किसने आग लगा दी! किसने बर्तन फेक दिये! कोई याद नही रह जाती सुबह।

यह जो नीद मे जागने वाला मरीज है, ऐसी हमारी दशा भी है---थोडी कम मात्रा मे। लेकिन हमारी नीद टूटती नही। धीमी-धीमी नीद हम पे छाई ही रहती है। एक गहन आलस्य हमे घेरे हुए है। एक अन्धकार हमारे भीतर बना रहता है। और इस नीद का जो प्राथमिक लक्षण है, वो यह कि जो भी हम करते है, वहा हम नही होते है। भोजन कर रहे है यन्त्रवत् हाथ कौर बना लेता है, मुह मे डाल लेता है। मन हमारा न मालूम कहा भटक रहा है! मन कोई सपने देख रहा है। मन वहा है ही नही। फिर भी हम कौर बनाते है, मुह मे रोटी डाल लेते हैं, चबा लेते है, भोजन कर लेते हैं, उठ जाते है। कोई भी देखने वाला कहेगा कि हम जागे हुए कर रहे है। लेकिन हम जागे हुए नही कर रहे है, हम सोये-सोये कर रहे है। जागना तो तभी सभव होता है, जब हमारा पूरा होश वर्तमान क्षण मे केन्द्रित हो, जो भी हम कर रहे हो, वही हमारा पूरा मन हो, पूरी चेतना हो।

चेतना का वर्तमान मे जुड़ जाना जागरण है, और चेतना का वर्तमान से टूट-

जाना निद्रा है।

नीद को हम नीद इसीलिए कहते हैं कि वर्तमान से हमारा पूरा सबध टूट जाता है। तुम सो रहे हो अपने बिस्तर पर, सोच रहे हो किसी सम्राट के महल मे विश्राम कर रहे है। सो रहे हो यहा—सपना देख रहे हो कलकत्ता, लदन, न्यूयार्क का। और जब तुम सपना देखते हो, तब तुम्हे क्षण भर भी याद नही आती कि तुम अपने घर मे, पूना मे विश्राम कर रहे हो। सुबह जाग के तुम खुद ही हसोगे कि बडी दूर की यात्रा की, बडे दूर चले गये।

सपने का अर्थ है जहा तुम हो वहा से दूर चले जाना, जो तुम हो, उसमे दूर चले जाना, जो तुम नही हो, वह हो जाना, जहा तुम नही हो, वहा पहुच जाना।

असत्य, सत्य जैसा दिखाई पडने लगे तो सपना।

सत्य, सत्य जैसा दिखाई पड जाए तो जागना।

तो हम सब सोये है। इस पहले अर्थ को ठीक से समझ ले।

'संतो जागत नीद न कीजै।'

जागते-जागते सोओ मत।

मुल्ला नसरुद्दीन एक प्रवचन मे सुनने गया था। जो बोलने वाला गुरु था, वो थोडा बेचैन हुआ, क्योकि मुल्ला नसरुद्दीन और उसकी पत्नी दोनो ही सामने बैठे थे। और पत्नी तो थोडी ही देर बाद गुर्राटे लेने लगी। और थोडी देर बाद जब उसने गुर्राटा लेना शुरू किया, मुल्ला ने अपनी छडी उठाई और चलता बना। वो और भी दुखी हुआ बोलने वाला। प्रवचन के बाद उसने पत्नी को पूछा, यह तो पूछना ठीक न मालूम पडा कि 'आप सो गई, क्या मेरा व्याख्यान इतना उबाने वाला था', पर उससे न रहा गया बिना पूछे कि 'आपके पति उठ के चले गये, क्या मैंने कोई ऐसी बात कही, जिसमे उन्हे चोट पहुची हो?' पत्नी ने कहा कि नही, आप बिलकुल निश्चिन्त रहे, उन्हे नीद मे चलने की बचपन से आदत है।

'संतो जागत नीद न कीजे।' जब जागे हो तब पूरी तरह जागो। इसका एक परिणाम होगा, कि जब तुम सोओगे तब तुम पूरी तरह सोओगे। अभी न तो तुम पूरी तरह जाग पाते हो, न पूरी तरह सो पाते हो। तुम्हारे जागरण मे नीद बनी रहती है, तुम्हारी नीद मे जागरण बना रहता है। सब मिश्रित है—एक कन्फ्यूजन। सब गोलमोल है। तुम एक खिचडी हो, एक साफ-सुथरापन नही। इसलिए, जो लोग भी जागते मे नीद करेगे, उनकी नीद मे जागरण घुस जायेगा। यह स्वाभाविक है। इसलिए सारी दुनिया मे लोगो की नीद खोती जा रही है। इस समय बडे से बडा सवाल आदमी के सामने है कि नीद को कैसे बचाया जाये?

हजारो प्रकार के ट्रैंकोलाइजर हैं, नीद की दवाए है, लेकिन सब व्यर्थ होती जा रही हैं। रूस मे उन्होने विद्युत के छोटे-छोटे यन्त्र बनाए है, जिनका उपयोग किया जा रहा है। हम पागल के लिए ही सिर्फ विद्युत के शॉक देते है। वो भी शॉक ही

है विद्युत के, झटके ही है, लेकिन बहुत कम मात्रा मे। उस यत्र को सिर से लगा देते हैं रात, वह यत्र बिजली फेकता है मस्तिष्क मे, तब नीद आती है। हजारो घरो मे वह यत्र लगा दिया गया है रोजमर्रा के उपयोग की तरह। और मनोवैज्ञानिको का कहना है कि इस सदी के पूरे होते-होते, ऐसा आदमी खोजना मुश्किल होगा, कम-से-कम पश्चिम मे, जो स्वाभाविक नीद सोता हो, जो कहे कि बिस्तर पर सिर रख लेता हू और सो जाता हू। सौ साल बाद लोग भरोसा ही न कर सकेंगे कि एक जमाना था दुनिया मे जब लोग बिना कुछ किए सो जाते थे। हम भी भरोसा नही कर पाते। जब कोई कहता है कि महावीर या बुद्ध वृक्ष के नीचे बैठे या खडे-खडे ध्यान को उपलब्ध हो गये। और जब कोई कहता है, बुद्ध ने कुछ भी न किया और ध्यान को उपलब्ध हो गये, तो हमे भरोसा नही आता।

ठीक ऐसी ही हालत नीद के सबध मे हुई जा रही है—अभी भी हो गई है। जो अनिद्रा से पीडित है इन्सोमैनिया मे, उससे कहो, वह तुमसे पूछेगा, वह जगह-जगह पूछता फिरता है कि मुझे नीद नही आती, आप कैसे सो जाते है? तो तुम कहोगे कि हम कुछ करते नही, सोने के लिए कोई उपाय, विधि भी नही है। हम तो सिर्फ सिर रखते है तकिये पे और सो जाते है। तो वो कहेगा कि जरूर झूठ बोल रहो हो, क्योकि सिर तो मैं भी रखता हू तकिए पर, और करवटे बदलता हू, रात भर उठाता हू और रखता हू—नीद नही आती। जरूर कोई तरकीब होगी, जो लोग छिपा रहे है। जरूर कोई षड्यन्त्र है मेरे खिलाफ सारी दुनिया सो रही है और मैं जाग रहा हू!

क्या हो गया है उस आदमी के भीतर, जो रात सो नही पाता? वह दिन म नीद कर रहा है। जब वह जागा हुआ है, तब वह नीद कर रहा है। और जब तुम्हारे जागने मे नीद चली जायगी, स्वाभावत तुम्हारी नीद मे जागना चला जायेगा। तुम एक घोलमेल हो जाओगे। तुम्हारे जीवन मे कुछ भी साफ-सुथरा नही रह जायगा। तुम्हारे प्रेम मे घृणा घुस जायेगी, तुम्हारी घृणा मे प्रेम घुस जायेगा। तुम मित्र को भी नफरत करोगे। तुम शत्रु को भी प्रेम करोगे। तुम्हारी जिन्दगी एक बेबूझ पहेली हो जायेगी।

यह तो पहला अर्थ है कि जागते समय तुम जागना, ताकि सोते समय तुम सो सको। रात, रात है, दिन, दिन है। दिन को पूरी तरह जागना, ताकि रात पूरी तरह सो सको।

लेकिन कुछ भी तुम्हारी जिदगी म साफ-सुथरा नही। घर आते हो, तुम दफ्तर की सोचते हो। दफ्तर जाते हो, तब तुम घर की सोचते हो। तुम पागल मालूम होते हो। जब दफ्तर गये हो तब दफ्तर को पूरा कर लो।

मैं एक हाईकोर्ट के न्यायाधीश के घर महमान हुआ करता था। जब उनसे निकटता बढ गई, तो उनकी पत्नी ने एक दिन कहा, कि मेरे पति आपके भक्त हैं।

एक बार भर उन्हे समझा दे कि न्यायाधीश-पन अदालत मे रख आए। रात सोते समय बिस्तर पे भी वे मजिस्ट्रेट बने रहते हैं। हम जैसे नौकर-चाकर हैं, या अपराधी है। वे मजिस्ट्रेट होने से नीचे उतरते ही नही। सारा घर पागल हुआ जा रहा है उनके मजिस्ट्रेट-पन से।

तुम व्यापार को घर ले आते हो। पत्नी के पास बैठे हो, बीच मे तिजोडी रखी है, खाते-बही का ढेर लगा है—फिर पत्नी से मिल नही पाते, प्रेम नही कर पाते, बच्चे के साथ खेल नही पाते, हस नही पाते। पहुचे दफ्तर—वहा पत्नी खडी है, बच्चे आसपास खडे है।

(तुम जो भी करते हो, अधूरा है। तो जो अधूरा लटका रह जाता है, जो हैंग-ओवॅर, वो तुम्हारा पीछा करता है। जागा हुआ आदमी हर काम को पूरा करता है, पूरे होश से करता है, अपनी समग्र चेतना को दाव पे लगा देता है—वो चाहे क्षुद्र मे क्षुद्र काम क्यो न हो। प्यास लगी है, और वो पानी क्यो न पी रहा हो, चाय क्यों न ले रहा हो—वह पूरे होश से चाय लेता है। वह बात को वही समाप्त कर देता है। वह आगे-पीछे कुछ हिसाब-किताब बाकी नही रखता। वैसा आदमी जागता भी पूरी तरह है, सोता भी पूरी तरह है। वैसे आदमी के जीवन मे एक प्रगाढ शाति फैल जाती है। उसका कोई भी काम अधूरा नही है। मौत अगर अभी आ जाये और उससे कहे, उठो, तो वो तैयार पायेगी, क्योकि उसको कुछ बचा नहीं है जो करना है। जो भी उसे करना था, वह हमेशा पूरा कर लिया है।

लेकिन, अगर मौत आज तुम्हारे द्वार पर आए, तुम तैयार न पाओगे अपने को। तुम कहोगे, थोडी देर । कल किसी को गाली दी थी, उससे क्षमा मागनी है। और कल किसी से रुपये उधार लिए थे, उसके वापिस लौटाने है। और न मालूम कितने कल बीत गये है, और न मालूम कितने जाल अधूरे रह गये हैं, वो सब पूरे करने है। अभी तो वक्त नही है।)

इसलिए हर आदमी असमय मरता है। सिर्फ जागा हुआ आदमी समय पे मरता है—कभी भी मरे! तुम यह नही कह सकते कि बुद्ध समय के पहले मर गये। बुद्ध समय के पहले कभी मरते ही नही। क्योकि हर घडी जब भी मौत आए, समय है।

एक अमीर आदमी था। उसने एक बहुमूल्य तोता पाल रखा था। तोते को दरवाजे पे लटका रखा था। और उसको सिखा रखा था कि जब भी मैं बाहर जाऊ, तब तक कहना कि 'मालिक! हूजूर! स्वामी! जल्दि करिये। वैसे ही बहुत देर हो गई है।' भाग-दौड की दुनिया, उसमे उसने तोते को भी भगाने की तरकीब सिखा रखी थी। सीढिया उतरता तो वो तोता फौरन कहता, 'मालिक, जल्दी करिये, वैसे ही बहुत देर हो गई है।' फिर वो आदमी मरा। और जब अर्थी निकली जा रही थी, तब तोता बोला 'मालिक, जल्दी करिये, वैसे ही बहुत देर हो गई है।'

तोते को क्या पता कि अब मालिक मर चुका है! लेकिन मालिक मरा जल्दी ही

जल्दी करने मे, कुछ भी पूरा नही कर पाया। हर चीज मे भागा हुआ था। इधर पूरा नही हो पाता कि भागते हैं हम दूसरी चीज को पूरा करने, दूसरी नही हो पाती कि तीसरी को पूरा करने पूरी जिंदगी एक भाग-दौड हो जाती है। एक आपाधापी! अखीर मे हम पाते हैं, कुछ भी तो पूरा नही हुआ!

और ध्यान रखना, अगर तुम्हारे सब काम अधूरे रह गये तो तुम अधूरे रह गये। अगर तुम्हारे सब काम पूरे हो गये तो तुम पूरे हो गये। एक ही पूर्णता है कि सब काम पूरे हो जाए। और एक ही तृप्ति है, जब तुम्हारा सब काम पूरा हो जाता है, तो उस काम के पूरे होने के बीच मे एक गहन शाति तुम पर छा जाती है! एक शाति से भरा आकाश तुम पे उतर आता है। वह परिपूर्णता का, फुलफिलमेट का आकाश है। वह तृप्ति का, एक सतोष सब काम पूरे हो गये। लेकिन तुम्हारे तो सब काम पूरे नही होते, तुम्हारे क्षुद्र काम पूरे नही होते। वो भी तुम्हारा पीछा करते है। खाते वक्त तुम भागे हुए हो, किसी तरह खा लिया—अब सडक पे तुम भोजन के सबध मे सोच रहे हो! प्रेम करते वक्त किसी तरह प्रेम कर लिया, जल्दी की, अब रास्ते पर तुम दूसरी स्त्रियों को पुरुषो को देख रहे हो और प्रेम की कामना उठ रही है। तुम्हारा सब अधूरा है।

अधूरापन तुम्हारा रोग है। तुम अगर ठीक से स्वाद ले लो तो भोजन का विचार न आयेगा। तुमने अगर ठीक से प्रेम किया, तो वासना तिरोहित हो जायेगी। जिस चीज को भी हम परिपूर्णता से भोग लेते है, उससे छुटकारा हो जाता है।

मुक्ति, अनुभव का नाम है। और जो अनुभव अधूरा है, वो तुम्हे बाध रखेगा।

'सतो जागत नीद न कीजै।'

यह तो पहला अर्थ। दूसरा अर्थ, तुम्हे खयाल मे अभी शायद न आ सके, क्योकि दूसरा अर्थ तो उन्ही को खयाल मे आयेगा, जो ध्यान मे गहरे उतर रहे हैं। एक ऐसी घडी आती है जैसा कल मैंने कहा कि समाधि और सुषुप्ति समान है। एक फर्क है कि सुषुप्ति मे गहरी नीद, समाधि मे परिपूर्ण जागरण है, बाकी सब एक जैसा है।

ध्यान की जो लोग गहराई मे उतर रहे है, उनका खयाल मे आ जायेगी बात। एक ऐसी घडी आती है, जब ध्यान सधने के करीब होता है, तो तुम सुषुप्ति और समाधि के बीच रेखा पे खडे होते हो। वहा तुम चाहो तो सो भी जा सकते हो, तुम चाहो तो जाग भी सकते हो। पतजलि ने उसके लिए अलग ही नाम खोज लिया है। वो नाम है 'योग-निद्रा'। ठीक जब तुम शात हो गये, परिपूर्ण शात हो गये, अभी आनद नही उतरा है, अभी तुम कबीर की तरह नही कह सकते कि आनद भयो है, अनहद बाजत ढोल रे! नही, अभी कोई ढोल बजा नही, अभी कोई आनद नही हुआ, अभी अमृत की कोई वर्षा नही हुई है, लेकिन तुम शात हो गये हो! ससार गया, मोक्ष अभी नही आया। रात बीत गई है, सूरज अभी नही उगा—

भोर है, मध्य मे खडे हो। इसको हिंदुओ ने सध्याकाल कहा है। इसलिए वो दो सध्याए बनाई है उन्होने। सुबह—रात जा चुकी, सूरज अभी उगा नही—वो प्रार्थना का क्षण है। साझ—जब सूरज डूब गया, रात अभी आई नही—वो भी प्रार्थना का क्षण है। ये दो सध्याए प्रार्थना के काल हैं। लेकिन ये प्रतीक हैं। ऐसी ही सध्या भीतर घटित होती है—वही असली सध्या है—जब नीद, ससार, अधेरा जा चुका, सूरज अभी उगा नही, आनद अभी हुआ नही, अभी ढोल बजा नही। ससार का शोरगुल खो गया। एक शाति का सगीत भीतर है, लेकिन अभी आनद नही हुआ है। गलत छूट गया है, ठीक अभी आया नही। यह किनारा तो चला गया, अभी वो किनारा नही आया है—मझधार है। उस हालत मे दो सभावनाए है या तो तुम सो जाओ, क्योकि शाति इतनी घनी है, नीद बडी आनदपूर्ण होगी। ऐसी नीद तुमने कभी देखी न होगी। वो इतनी गहन होगी। और जब उस नीद से तुम उठोगे तो इतना ताजा पाओगे कि जैसे हजारो साल सोये हो, इतनी ताजगी है। लेकिन वो नीद खतरनाक है, क्योकि उस नीद मे तुम अगर डूब गये सुखद है वह नीद, लेकिन अगर डूब गये, तो आनद की जो घटना घटने के करीब थी, वह चूक गई।

योग-निद्रा बडी शातिदायी है, लेकिन नकारात्मक है। और योग-निद्रा के वक्त अपने को सम्हाल के रखना बहुत कठिन है। क्योकि तुम साधारण निद्रा के समय ही अपने को नही सम्हाल सकते जब नीद आती है, जम्हाई उठती है, पलके झपकी जाती हैं, भारी हो जाती है जैसे पत्थर बधे हो तब तुमसे कोई कहे कि जागे रहो एक क्षण और, तो जागना मुश्किल हो जाता है। जब साधारण नीद इतने जोर से पकडती है तो वह तो असाधारण नीद है योग-तद्रा। उस समय तो तुम्हारा रोआ-रोआ इतना शात होता है, तुम एक शाति के सागर हो गये होते हो। उस समय तो बिल्कुल सो जाने की तबियत होती है। और इतना सुख मालूम होगा उस सो जाने मे कि तुम भूल ही जाओगे। शायद तुम यह भी समझ लो कि यही आनद है, जिसकी कबीर, नानक चर्चा करते है।

बहुत-से साधन योग-तद्रा तक ही ले जाते है। जैसे महेशयोगी की ध्यान की विधि, बस योग-तद्रा तक ले जाती है। भावातीत ध्यान जिसे वो कहते है—ट्रान्सन्डेटल मेडीटेशन—वो योग-तद्रा के आगे नही ले जाती। इसलिए पश्चिम मे उसका बहुत प्रभाव पडा, पूरब मे कोई प्रभाव नही पडा। पश्चिम मे प्रभाव पडा, क्योकि पश्चिम मे नीद बडी कठिन हो गई है। पूरब मे तो लोग अभी भी मजे से सो रहे है। पश्चिम मे नीद बडी मुश्किल हो गई है। नीद बडे से बडा सवाल है। इसलिए महेशयोगी की ध्यान-पद्धति का अमरीका पर काफी प्रभाव पडा। लोगो को नीद आने लगी। यह कोई छोटी घटना नही है, कीमती है। और लोगो ने बडा सुख भी पाया।

लेकिन सुख आनद नही है। सुख केवल दुख का अभाव है। बीमारी चली गई, लेकिन अभी स्वास्थ्य का नर्तन नही हुआ है। और बीमारी का चले जाना ही स्वास्थ्य

नहीं है। स्वास्थ्य एक पॉजिटिव, एक विधायक स्थिति है। इसे थोडा समझने की कोशिश करे।

अगर आपके शरीर मे कोई बीमारी नही है, तो चिकित्सक कहेगा, 'स्वस्थ हो, मैं कोई गडबड नही देखता। सब जाच-पडताल कर ली, कोई बीमारी नही है, ठीक हो। लेकिन आप जानते हो कि ठीक होने, और ठीक होने मे फर्क है। एक ऐसा ठीक होना है, जिसमे एक वैलबोइग, एक भीतरी आनद की भाव-दशा होती है। जैसे भरे-पूरे, फूल ही फूल खिल गए। जैसे धारा जीवन की बाढ से भर गई, दोनो किनारे तोड के बहने लगी। एक मस्ती स्वास्थ्य की! पैर रखते है, लेकिन पैर मे एक नृत्य है। बोलने है बोलने मे सगीत है। आख खोलते है, आखो मे एक माधुर्य है। शक्ति प्रगाढ हो के बह रही है। एक तो स्वास्थ्य की वो दशा है, और एक स्वास्थ्य की वह दशा है, जब कोई बीमारी नही। तो चिकित्सक बीमारी नही पकडता, वह कहता है, स्वस्थ है। लेकिन आप बिलकुल ढील बैठे है, मुर्दे की तरह। बीमारी कोई भी नही, न सिर दुख रहा है, न पेट दुख रहा है, न हाथ-पैर टूटा हुआ है, न कोई पलस्तर बधा है। ठीक बैठे है, लेकिन कही कोई मस्ती नही है, कही कोई अहोभाव नही है। ऐसा नही है कि उठे और नाचे, ऐसा नही है कि गीत गाए। ऐसा नही है। बस, बैठे है—एक सुस्त मुर्दे की भाति।

मुर्दा भी बीमार नही होता। आप भी बीमार नही है। मुर्दे मे भी बीमारी नही पाई जा सकती, आप मे भी बीमारी नही है। आपका स्वास्थ्य सिर्फ अभाव है, बीमारी की गैर-मौजूदगी है। ठीक ऐसी ही घटना योग-तन्द्रा मे घटती है। तनाव खो जाते है, मस्तिष्क की सताप की अवस्था खो जाती, चिंता मिट जाती, कोई फिक्र नही रह जाती। बडी शाति मालूम पडती है। लेकिन योग-निद्रा समाधि नही है, बस समाधि के द्वार तक ले जाती है। असली यात्रा उसके आगे शुरू होती है।

इसलिए कबीर कहते हैं, सन्तो जागत नीद न कीजै। वो साधुओ से बोल रहे है, सन्यासियो से बोल रहे है। इसलिए मैं भी कबीर पर इतने दिन तक नही बोला, पहले साधु और सन्यासी तो मेरे पास हो। तो कबीर पे चुप ही रहा, क्योंकि कबीर पे बोलना है तो सतो से ही बोला जा सकता है, जो ध्यान कर रहे हो। नही तो उनकी समझ मे ही न आयेगा। जो यहा ध्यान मे गहरे उतर रहे है, उनको खयाल मे आयेगी बात। यह भीतरी अनुभव है सब शात हो जाता है, सुख मिलता है। इतना काफी नही है, रुक मत जाना। अभी मजिल नही आई, यह भी पडाव है। और आगे जाना है!

योग-तन्द्रा सुखद है, लेकिन वो बुद्धत्व नही है। वो परम अवस्था नही है। ससार की विकृति छूट गई, लेकिन अभी परमात्मा का स्वाद नही आया है। व्यर्थ हट गया, सार्थक आने को है। उस वक्त अगर झपकी लग गई कि चूक गए, फिर वापिस ससार मे आ गये, फिर वही किनारा, दूसरा किनारा हट गया।

'सतो जागत नीद न कीजै ।
काल न खाये, कलप नहि व्यापै, देह जरा नहि छीजै ।।'
उलट गग समुद्रहि सोखै, ससि और सूरहि ग्रासै ।
नवग्रह मारि रोगिया बैठे, जल मह बिम्ब प्रगासै ।।
बिन चरनन को दहु दिसि धावै, बिन लोचन जग सूझै ।
ससै उलटि सिह कह ग्रासे, ई अचरज को बूझे ।।'

कबीर के वचनो मे एक विशिष्ट सूत्र है, उसे समझ ले, फिर ये वचन खयाल मे आ सकेगे। उस विशिष्ट सूत्र का नाम है 'उलटबासी।' उलटबासी का अर्थ है उलटे वचन। जैसे कोई बासुरी बजाता हो, और एक ऐसा वक्त आ जाये जब कि बजाने वाला तो बासुरी हो जाए और बासुरी बजाने वाली हो जाए। सब उलटा हो जाए कि बासुरी बजाने वाले को बजाने लगे।

उलटबासी का अर्थ होता है, कि बासुरी बजाने वाले को बजाने लगी। एक ऐसी घडी आती है एक ऐसी घडी आती है जब जीवन का सब भिन्न हो जाता है। उसे थोडा समझ ले, तो ये वचन समझ मे आयेगे, क्योकि ये वचन प्रतीकात्मक हैं, और पहेलियो-जैसे हैं। पहेलियो-जैसे हमे लगते है।

समझे

आप श्वास लेते हैं। श्वास भीतर जाती, बाहर जाती। आप सोचते है, मैं श्वास लेने वाला हू। लेकिन कभी आपने इस पर विचार किया कि अगर आप श्वास लेने वाले हैं तब तो आप मर ही न सकेगे, क्योकि आप जब तक लेना चाहेगे, लेते जायेगे।

मुल्ला नसरुद्दीन सौ साल का हो गया था। तो लोग उसके पास पहुचे धन्यवाद देने और उससे पूछने कि तुम्हारी इतनी लम्बी उम्र का राज क्या है, हमे भी कोई तरकीब बताओ!

नसरुद्दीन ने कहा, बस सास लेते रहो।

पर सास कैसे लेते रहोगे? अगर रुक गई तो तुम क्या करोगे? सास के रुकते ही तुम खो जाओगे, तुम बचोगे ही नही जो कि सास को फिर मे ले सके। सास का बन्द हो जाना, तुम्हारा समाप्त हो जाना है। अगर तुम एक क्षण भी बच सको सास के बाद तो तुम फिर ले सकते हो लेकिन तुम बचते ही नही। श्वास तुम हो, वह तुम्हारा प्राण है। इधर खोई सास उधर तुम खो गये। एक क्षण का भी तो मौका न मिलेगा कि सास खो गई, तुम्हे पता चले कि सास खो गई, तुम फिर से मे ले लो। कोई भीतर रहेगा नही, जिसको सास कि खबर लग सके। सास बन्द हो गई, यह दूसरो को पता चलेगा, तुम्हे नही। घर के लोगो को पता चलेगा, पास-पडोस के लोग रोने लगेंगे, चिल्लाने लगेंगे कि सास रुक गई। तुम्हे पता नही चलेगा। तुम्हे पता चलता तो तुम लेते ही रहते, रुकने ही कैसे देते?

अगर सास की बात को ठीक से समझ लो तो तुम्हे समझ मे आयेगा कि तुम

ले नही रहे हो—सास घट रही है। तुम लेने वाले नही, तुम कर्ता नही हो।

तब एक दूसरी दृष्टि है उसको कबीर कहते है कि तुम यह बात ही छोड दो कि तुम सास ले रहे हो। सास तुम्हे ले रही है। तुम ससार मे जी रहे हो, ऐसा नही, ससार तुममे जी रहा है। तुम जीवित हो, यह बात ही गलत है— परमात्मा जीवित है। वही तुममे श्वास ले रहा है। तब तो उलटी बासी हो गई कि सास लेने वाला, लेने वाला नही है, बल्कि सास ही तुम्हारा जीवन है।

इससे तुम्हे खयाल आ सकेगा। मनोवैज्ञानिक एक छोटी-सी तरकीब का प्रयोग करते है, जिसे वे गेस्टाल्ट कहते है। तुमने कभी बच्चो की किताब मे चित्र देखे होगे कि एक गमला रखा हुआ है। अगर तुम गमले को गौर से देखते रहो तो थोडी देर मे गमला खो जायेगा, और दो आदमियो के चेहरे दिखाई पडने लगेगे जो गमले के पास मिल रहे है। उनकी नाक— गमले की कगार, उनका माथा—गमले का हिस्सा है। दो चेहरे, उनके बीच की जो खाली जगह थी, वो गमला मालूम हो रही थी। अगर तुम गौर से देखते रहो उन दो चेहरो को, थोडी देर मे वो दो चेहरे खो जायेगे, फिर गमला प्रगट हो जायेगा। अगर तुम और भी गौर से देखते रहो तो गमला फिर खो जायेगा दो चेहरे प्रगट हो जायेगे। यह बदलता रहेगा, यह बदलता रहेगा। मजे कि बात यह है कि जब तुम गमला देखोगे तब तुम दो चेहरे न देख पाओगे, हालाकि तुम भलीभाति जानते हो, चित्र मे दो चेहरे भी छिपे है। जब तुम दो चेहरे देखोगे तब तुम गमला न देख पाओगे, हालाकि तुम भलीभाति जानते हो कि गमला भी चित्र मे छिपा है। क्योकि मन एक समय मे एक ही चीज को जान सकता है। और मन इतना सतत परिवर्तनशील है कि तुम एक गमले को भी बडी देर तक नही देख सकते, बदलाहट हो जायेगी चेहरे दिखाई पडने लगेगे, फिर गमला दिखाई पडेगा, फिर चेहरे दिखाई पडेगे। जर्मन शब्द है इसके लिए गेस्टाल्ट। और इस तरह की विचार-धारा पर एक पूरा शास्त्र निर्मित हो गया है गेस्टाल्ट सायकालॉजी। वे कहते है, जीवन गेस्टाल्ट है।

अगर तुम ऐसा देखते हो कि मै 'श्वास' ले रहा हू, तो तुम्हारी पूरी जीवन-दृष्टि नास्तिक की होगी। और अगर तुम ऐसा देखते हो कि मुझमे कोई सास ले रहा है, तुम्हारी पूरी जीवन-दृष्टि आस्तिक की हो जायेगी। इतने छोटे-से फर्क से सारे जीवन का दृश्य बदल जाता है। अगर तुम्हे यह समझ मे आ जाए कि कोई और मुझ मे श्वास ले रहा है, तब तुम्हारा अहकार खो जायेगा। जब श्वास तक हम अपनी नही ले सकते, तो और हमारे कर्तृत्व का क्या अर्थ है?

तुम कहते हो, मैं प्रेम कर रहा हू—वह भी श्वास है। प्रेम तुम्हारे द्वारा किया जा रहा है, तुम कर नही रहे हो। क्योकि अगर तुम प्रेम कर रहे हो, तो मैं कहता हू यह रही स्त्री, तुम इसके प्रेम मे गिर जाओ। तुम कहोगे, 'ऐसे कैसे गिर जाए? हर किसी स्त्री के प्रेम मे तो नही गिर जायेगे। जब घटना है, तब घटता है, जब

नही घटता तो नही घटता। हा, अभिनय करना हो तो अलग।' लेकिन अभिनय तो प्रेम नही है।

तुमने कभी प्रेम किया है या कि प्रेम हुआ है? किया है तो बात अलग होगी, तुम समझोगे कि मैं कर्ता हू। हुआ है, तो तुम समझोगे मैं निमित्त हू, कर्ता नही हू। मेरे द्वारा किसी और ने प्रेम किया है। तुम अगर कर्ता बनना चाहो, तो तुम्हारा प्रेम सिर्फ वेश्या से हो सकता है, और किसी से नही। और वेश्या से कही प्रेम होता है?

मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन वेश्या के घर गया। उसने कहा कि मै तुम्हे प्रेम करना चाहता हू। वेश्या ने कहा, करो। उसने कहा, मैं तुम्हे अपने जीवन का दीपक बनाना चाहता हू। वेश्या ने कहा, बनाओ। उसने कहा कि मैं तुम्हे अपने हृदय मे सजो लेना चाहता हू। वेश्या ने कहा, सजोओ। उसने कहा कि मैं तुम्हारे लिए मर जाना चाहता हू। वेश्या ने कहा, मरो, लेकिन जो भी करना है जल्दी करो, क्योंकि दूसरे ग्राहक बाहर खडे है।

नाटक तो एक बात है, धधा एक बात है। जीवन को तुम जितना समझोगे उतना ही पाओगे तुम कि तुम कर्ता नही हो। घटनाए घट रही है। हैपनिग्स है। प्रेम उतरता है, हो जाता है। इसलिए तो बडी मुसीबत है प्रेम के साथ। लोग समझाते है किसी को कि तुम पति हो, चार बच्चे है, पत्नी है, तुम किस पागलपन मे पडे हो? पति को भी समझ मे आता है। बात सीधी है, साफ है चार बच्चे है—और किसी के प्रेम मे पड गये हो, नासमझ हो। होश सम्हालो! पति भी होश सम्हालने की कोशिश करता है। लेकिन वह कहता है, क्या करू, हो गया! वह यह भी समझता है कि कुछ गलत हो रहा है, फिर भी रोक नही सकता। वह यह भी जानता है कि न होता तो अच्छा था। अपने बच्चा और पत्नी का खयाल भी आता है, लेकिन कर भी क्या सकता है! घटना घट गई! जुम्मेवार हम उसे ठहराते जरूर है, लेकिन वो भ्राति है।

प्रेम की घटना आदमी के हाथ के बाहर है। जब तक कि तुम बुद्धत्व को उपलब्ध न हो जाओ, तब तक तुम्हारे हाथ के बाहर है। और जब तुम बुद्धत्व को उपलब्ध हो जाते हो, तब एक दूसरा ही आयाम प्रेम का खुलता है। तब तुम किसी के प्रेम मे नही पडते, तुम प्रेम हो जाते हो। तब तुमसे प्रेम मिलता है, बटता है, बिखरता है, लेकिन तुम किसी के प्रेम मे नही गिरते। तुम उस दीये की भाति हो जाते हो जो जल रहा है, रास्ते से जो भी निकलता है, उसको भी उसका प्रकाश मिल जाता है। तुम उस फूल की तरह हो जाते हो, जो खिल गया है, उसकी सुगध जो भी राहगीर होता है उसको मिल जाती है। लेकिन अब तुम्हारा प्रेम पुराना प्रेम नही है—जबकि तुम अवश गिर जाते थे, जबकि तुम अपने को परवश समझते थे, जबकि तुम्हे लगता था, अब क्या कर सकता हू! समझते थे, बूझते थे। बुद्धि कहती थी, ठीक है।

बुद्धि के अपने तर्क हैं, लेकिन हृदय उनको मानता नही। तुम दबा भी ले सकते हो, द्वार बद कर दे सकते हो, बुद्धि की मान के प्रेम की तरफ न आ जाओ—तो भी हृदय किसी और के लिए धडकता है, उसी के लिए धडकता रहेगा। तुम पत्नी की फिक्र करोगे, पैर दबाओगे। बीमारी मे चिंता करोगे, आलिगन करोगे—लेकिन तुम पाओगे सब झूठा है, सब बुद्धि से कर रहे हो।

कर्ता तुम हो कहा? न श्वास तुम्हारी अपनी, न प्रेम तुम्हारा अपना, न जीवन तुम्हारा अपना। इसी को कृष्ण ने गीता मे अर्जुन से कहा है कि तू निमित्त-मात्र हो जा। तू यह छोड ही दे खयाल कि तू कर्ता है। ये जो सामने खडे हुए योद्धा हैं, ये मेरे लिए तो मर ही चुके है। तू तो सिर्फ निमित्त है। तू सिर्फ धक्का देगा, ये मुर्दे की तरह खडे है और गिर जायेगे। ये मर ही चुके है। इनका मरना निश्चित है। तू नही करेगा यह काम तो कोई और करेगा। ये मरेगे। कौन मारता है, यह बात गौण है।

जीवन अगर निमित्त है, खयाल मे आ जाए । 'निमित्त' शब्द बडा बहुमूल्य है। इस शब्द के मुकाबले दुनिया की किसी भाषा मे शब्द खोजना मुश्किल है। 'निमित्त' पूरब का, हिंदुओ का अपना शब्द है। और बडा गहरा है। निमित्त का अर्थ है कि मैं कारण नही हू, न कर्ता हू—मैं तो सिर्फ बहाना हू। मेरे बहाने हो गया! मेरे बहाने न होता तो किसी और के बहाने होता। जो होना है वह होता। बहाने कोई भी होते। खटिया कोई भी होती, जो टगना है, वह टगता, जो घटना है वह घटता। मैं इसमे बीच मे अपने अहकार को न लाऊ।

अगर तुम्हारा कर्ता का भाव छूट जाए और निमित्त का भाव गहन हो जाए—बस फिर उलटी बासी समझ मे आयगी। क्योकि फिर सब उलटा दिखाई पडने लगेगा। गेस्टाल्ट बदल गया। फिर कल तक तुम जैसा दुनिया को देखते थे, वैसी नही दिखाई पडेगी, बिलकुल उलटी दिखाई पडने लगेगी। उस उलटे की सूचना देने के लिए कबीर ने प्रतीक चुने है।

कबीर कहते हैं, 'काल न खाए कल्प नही व्यापै, देह जरा नहि छीजै।

जब तुम्हारा निमित्त का भाव आ जाता है, कर्ता का नही जब तक तुम कर्ता हो, तब तक काल तुम्हे खायेगा तब तक मौत घटेगी, तब तक तुम मरोगे। क्योकि कर्ता का भाव ही मरता है, आत्मा तो मरती नही। लेकिन तुम समझते हो, मैं कर्ता हू, तो मरोगे।

मृत्यु का भय अहकार को है, आत्मा को नही। तुम जब तक समझते हो, 'मै', 'मैं', 'मैं'—और दोहराए चले जाते हो अपने 'मैं' को, सजाए जाते हो, सवारे जाते हो, तब तक तुम्हे मृत्यु डरायेगी।

जितना अहकारी मनुष्य, उतना मृत्यु से भयभीत होगा। जितना निरहकारी मनुष्य, उतना ही मृत्यु का भय खो जायेगा। और अगर पूर्ण निहरकार घट जाए, मृत्य

समाप्त हो गई। क्योकि जो बचता है, वह मरता ही नही। गेस्टाल्ट बदल जाता है।

'काल न खाये कलप नहिं व्यापै।' न तो काल खाता है, न कोई दुख व्याप्ता है। किसी तरह की पीडा, किसी तरह का सताप नही व्याप्ता। 'देह जरा नहिं छीजै ' और जरा भी देह छीजती नही, जरा भी बुढापा नही आता।

पर शरीर का तो बुढापा आता है। यह शरीर तो मृत्यु में जाता है। यह शरीर तो नष्ट होता है। लेकिन तुम यह शरीर तभी तक हो, जब तक तुमने मान रखा है कि मैं हू। जिस दिन तुम छोड दोगे यह खयाल कि मैं हू, उसी क्षण सारा चित्त बदल आयेगा। तब तुम शरीर नही हो, परमात्मा हो। तब तुम्हारे भीतर जो छिपा है, वह दिखाई पडेगा।

और ध्यान रखना, एक ही दिखाई पड सकता है, दोनो एक साथ नही। जब तक तुम्हे लगता है मैं शरीर हू, तब तक आत्मा दिखाई न पडेगी। जिस दिन तुम्हे दिखाई पडेगा मै आत्मा हू, शरीर खो जायेगा।

इसलिए तो ज्ञानियो ने कहा है कि ससार माया है। क्योकि जैसे ही ब्रह्म दिखाई पडा, ससार दिखाई नही पडता। और जब तक ससार दिखाई पडता है, ब्रह्म दिखाई नही पडता। गेस्टाल्ट है। एक ही दिखाई पड सकता है। क्षमता तुम्हारी एक को ही जानने की है, दो नही जान सकते।

काल न खाये, कलप नहिं व्यापै, देह जरा नहि छीजै। उलट गग समुद्रहि सोखै

और हालत बिलकुल उलटी हो जाती है। हम तो तो ऐसा देखते है कि गगा सागर मे गिर रही है, और कबीर कहते हैं कि सागर गगा मे गिर रहा है।

कबीर के दो वचन है। एक वचन है 'हेरत-हेरत हे सखी रह्या कबीर हेराइ। बुद समानी समुद मे सो कत हेरी जाए।' यह गेस्टाल्ट का एक पहलू है। कबीर कहते है खोजते-खोजते-खोजते कबीर खो गया, बूद सागर मे गिर गई, अब उसे कैसे वापिस पाए! फिर दूसरा, इसके बाद ही लगा हुआ वचन है, और जो कहता है हेरत-हेरत हे सखी, रह्या कबीर हेराइ, समुद समाना बुद मे सो कत हेरी जाइ। और समुद्र बूद मे गिर गया, अब कैसे अपने को खोजू। एक मे वे कहते है कि बूद सागर मे गिर गई, कैसे अपने को खोजू! दूसरे मे कहते ह, सागर बूद मे गिर गया, कैसे अपने को खोजू! बस ये दो पहलू है।

जब तक तुम अपने को मान रहे हो, मैं हू, तब तक तुम सागर से डरोगे, क्योकि बूद सागर मे खोयेगी, फिर उसका क्या पता लगेगा! जिस दिन तुम जानोगे मैं नही हू, उस दिन सागर तुममे खोयेगा। बात एक ही है। बूद सागर मे खोये कि सागर बूद मे खोए, एक ही घटना घटती, लेकिन दृष्टि बडी अलग हो गई। जब तुम खोते हो सागर मे, तब घबडाते हो। और जब सागर तुममे खो जायेगा, तब तुम घबडाओगे नही, तुम सोचोगे, मेरी सपदा बढती है। जब तक तुम परमात्मा मे खोओगे, तुम डरोगे, और जब परमात्मा तुममे खोयेगा, तब तुम आनद से नाच उठोगे।

परमात्मा के सबध मे भी तुम्हारे मन मे भय है, क्योकि तुम्हे लगता है हम खो जायेगे, हमारा अस्तित्व नही बचेगा, हमारी आइडेन्टिटी, हमारे तादात्म्य का क्या होगा, हमारा नाम, पता-ठिकाना, सब खो जायेगा! तो ऐसे परमात्मा को पा कर क्या करेगे, जहा हम खो जायेगे! लेकिन दूसरा पहलू, जो कि सत्य के करीब है तुम परमात्मा मे नही खोते हो, परमात्मा ही तुममे खोता है। तुम मिटते नही, तुम विराट हो जाते हो। बूद सागर हो जाती है।

कबीर कहते है, 'उलट गग समुद्रहि सोखै, ससि औ सूरहि ग्रासै।' गगा सागर को पी जाती है, सूरज और चाद को सोख लेती है, समा लेती है अपने मे। यह तो इसका ऊपरी अर्थ है। इसका भीतरी अर्थ, क्योकि सूर्य और शशि, चाद और सूरज दो प्रतीक है तुम्हारी दो श्वास के। तुम्हारा दाया श्वास का द्वार, सूर्य। तुम्हारे बाए नाक का द्वार, चद्र। और इन दोनो से जुडी हुई दो नाडिया हैं तुम्हारे भीतर —इडा, पिंगला—एक सूय-नाडी, एक चद्र-नाडी। वो योगियो के प्रतीक है।

जब तुम्हारी चेतना निमित्त-मात्र हो जाती है, जब तुम अपने को कर्ता नही मानते जब तुम्हारा अहकार तुम छोड देते हो—तुम कहते ही नही, 'मै' तुम कहते हो तू ही है, न तो 'मै' कभी था न ह, न होऊगा, 'मै' सिर्फ एक भ्रम था! जब तुम इस भाव-दशा मे गहरे उतरते हो, तब सागर बूद मे गिरता है। तब तुम्हारी चेतना सूर्य और चन्द्र दोनो को अपने मे समा लेती है। अभी तुम श्वास लेते हो और अभी तुम श्वास पे निर्भर हो, अभी श्वास खो जायगी तो तुम मिट जाओगे। अभी साम तुम्हारा सहारा है। अभी श्वास के बिना तुम जी न सकोगे। तब तब तुम चेतना मे जीते हो। और श्वास चेतना मे लीन हो जाती है। इसलिए समाधिस्थ योगी कभी-कभी बिलकुल श्वास-शून्य हो जाता है। पता लगाना मुश्किल हो जाता है कि श्वास चल रही है या नही चल रही।

तुममे से जो गहरे ध्यान के प्रयोग कर रहे है, अपने परिवार के लोगो को कह देना कि कभी ऐसी घडी आ जाए कि तुम बिलकुल मुर्दे जैसे हो जाओ, तो वे घबडा न जाए, क्योकि श्वास बिलकुल रुक सकती है। चिकित्सक भी आ के कह सकता है कि यह आदमी मर गया। क्योकि श्वास करीब-करीब, बिलकुल तो नही रुकती, लेकिन निन्यानवे प्रतिशत रुक जाती है। एक हलकी-सी ध्वनि रह जाती है। और जब श्वास बिलकुल रुक जाती है, तब मन बिलकुल रुक जाता है।

यह तो तुम्हारे भी अनुभव मे आया होगा कि तुम्हारे मन और श्वास का गहरा सबध है। जब तुम क्रोधित होते हो तो श्वास अलग तरह से चलती है, उद्विग्नता होती है श्वास मे, जैसे ऊबड-खाबड रास्ते पर चलती हो, जैसे कि कार मे स्प्रिंग न हो और रास्ता गड्ढो वाला हो, ऐसी श्वास चलती है—जब तुम क्रोध मे होते हो। जब तुम कामवासना मे भरते हो, तब श्वास और तरह मे चलती है, तब विक्षिप्त हो जाती है, तुम पसीने-पसीने हो जाते हो। जब तुम शात होते हो तो श्वास

धीमी चलती है—एक रिदिम, एक छद होता है श्वास मे, एक लयबद्धता होती है। जब तुम बिलकुल आनन्दित होते हो, तब श्वास और ढग से चलती है। तुम्हारे हर मनोभाव के साथ श्वास बदलती है। और अगर तुम होशियार हो जाओ थोडे तुम अगर श्वास को बदल लो, तुम्हारा मनोभाव बदल जायेगा, क्योंकि दोनो एक-दूसरे से जुडे है। दुबारा जब तुम्हे क्रोध आए, तब तुम जरा गौर से जाच कर लेना कि श्वास की गति क्या है, किस ढग से चल रही है। उसे ठीक-से पहचान लेना।

जब तुम दुबारा कभी शात हो जाओ, तब उसकी भी जाच कर लेना कि श्वास कैसी चल रही है, शाति की अवस्था मे। जब कभी तुम पाओ कि तुम प्रफुल्लित हो, तब भी श्वास को नोट कर लेना। और अगर तुम ठीक से श्वास की गति को पहचानने मे समर्थ हो जाओ—आनद के साथ, क्रोध के साथ, सुख के साथ, शाति के साथ—फिर तुम प्रयोग कर सकते हो। क्रोध आने को है, तुम श्वास को क्रोध की गति मत पकडने दो, तुम शात बैठ जाओ और श्वास को वो गति दे दो, जो शाति मे होती है। तुम अचानक पाओगे, क्रोध तिरोहित हो गया! क्रोध आ नही सकता। क्योंकि जब तक श्वास न बदले, तब तक क्रोध शरीर मे प्रवेश नही कर सकता। अगर तुम श्वास की गति को ठीक से पहचान लो कि शाति मे कैसी होती है, तो चौबीस घटे उस गीत को वैसा ही बनाए रखने की कोशिश करो। तुम पाओगे तुम गहन शाति से भर गये। अगर तुम समझ लो कि जब तुम प्रफुल्लित होते हो, कैसी श्वास होती है वैसी ही श्वास को बनाए रखो, प्रफुल्लता झर-झर के बहती रहेगी।

बुद्ध ने श्वास के और मन के सबध पर बडे गहरे प्रयोग किए है। और उनका जो ध्यान का प्रयोग है—अनापानसतीयोग—वह सिर्फ श्वास की ही कला है। बस श्वास को देखना श्वास को पहचानना, श्वास को मनोभावो के साथ सबधित करना, और फिर जिन भावो को छोडना है, श्वास की उन गतियो को छोड देना फिर जिन भावो को सजाना है, सवारना है, बढाना है गति देनी है, श्वास के उन छदो को पकड लेना और उन्ही को धीरे-धीरे बढाते जाना। तो श्वास के रूपातरण से चित्त पूरा रूपातरित होता है। लेकिन जब चित्त बिल्कुल ही खो जाता है, तब श्वास भी खो जाएगी। एक छोर श्वास और दूसरा छोर चित्त—एक ही ऊर्जा के दो छोर है।

तो अगर कभी तुम्हारे जीवन म ऐसी घडी आ जाए, जब तुम पाओगे कि श्वास बद हो रही है मेरे पास बहुत-से सन्यासी आ के कहते है तो भय लगेगा। तुम भयभीत मत होना। और घर के लोगो को भी बता देना, क्योंकि घर के लोग तुम्हारी न मानेगे। अगर तुम मर गये झूठे भी मरे और डॉक्टर ने कह दिया मर गये, तुम्हारी न मानेगे।

मैंने सुना है, एक आदमी मरा। मरा नही था, सिर्फ श्वास धीमी हो गई थी। चिकित्सक ने कह दिया मर गया। उसकी अर्थी सजा ली। मरघट ले गये। मरघट

तक पहुचते-पहुचते उस आदमी को होश आ गया। तो वो हिला-डुला। लोग बहुत घबडा गये। उसने चिल्लाया भीतर से कि खोलो, मैं जिंदा हू। लोगो ने कहा, यह हो ही नही सकता। क्योकि किसी साधारण चिकित्सक ने नही कहा, बडा विशेषज्ञ है। तो विशेषज्ञ की माने कि इस मूरख की! सौ आदमी आए थे पहुचाने। पुरोहित जो आया था, अतिम सस्कार करवाने, उसने कहा, 'भाइयो, तुम सब भी मौजूद थे।' वह आदमी अदर से चिल्ला रहा है कि मै जिंदा हू, मुझे खोलो और पुरोहित लोगो का वोट ले रहा है। डेमोक्रेसी के दिन है, लोकतत्र! उसने कहा, 'तुम सब मौजूद थे। हाथ उठाओ, विशेषज्ञ ने क्या कहा था? किसकी हम माने? इस मूरख की, पढा न लिखा, अ ब स मालूम नही है जिदगी और मौत का—और कह रहा है हम जिंदा है! या उस विशेषज्ञ की, जो लदन मे शिक्षित हो के लौटा है—एफ आर सी एस है! और लाखो जिंदा, मुर्दा आदमियो का अध्ययन कर चुका है।'

लोगो ने, सभी ने कहा और सभी ने हाथ उठाया कि विशेषज्ञ की मानना उचित है, इसकी क्या बात का भरोसा! यह आदमी जिदगी मे भी भरोसे का नही था तो मर के इसकी बात का क्या खाक भरोसा! जला दिया उन्होने।

लोग विशेषज्ञ को मानते है। तो घर के लोगो को भी बता देना कि अगर ऐसी घडी आ जाये, और श्वास बद हो जाए तो घबडाने की कोई जरूरत नही। हिलाने-डुलाने की भी कोई जरूरत नही क्योकि उसमे खतरा हो सकता है। जब तुम्हारी श्वास बिलकुल शात हो, कोई जोर से हिला दे, तो शरीर और आत्मा का सबध टूट सकता है, क्योकि उस वक्त सबध नाजुक-से-नाजुक होता है। उस वक्त तुम अपने शरीर से दूर-से-दूर होते हो। बस, एक बारीक-सी रेखा जुडी रह जाती है। अगर कोई हिला दे, तो कठिनाई हो जायेगी।

इसलिए ध्यान की अवस्था मे, न तो तुम भयभीत होना भीतर क्योकि यही तो परम घडी है, जिसकी हम तलाश कर रहे है। इसी क्षण की तो खोज है। इसी क्षण मे तो तुम्हे अमृत का पता चलेगा। इसी क्षण मे तो तुम जानोगे कि शरीर अलग पडा है, मैं अलग खडा हू, शरीर भिन्न, मैं भिन्न। एक दफा यह दिख जाए, फिर तुम्हारी जिदगी वही न हो सकेगी जो कल तक थी, गेस्टाल्ट बदल गया। अब तुम पाओगे परमात्मा ही श्वास लेता है, वही तुममे जीता है। तुम नही हो, वही है! तुम सिर्फ उसके लिए माध्यम हो। जीवन उसका है। तुम बासुरी हो—बजाने वाला वो है।

और अभी तक तुमने यह समझ रखा है कि बजाने वाले तुम हो। अभी तक तुम सोचते हो, गीत तुम गा रहे हो। तुम माध्यम हो, गीत वो गा रहा है। अगर बासुरी को भी थोडी अकल आ जाए, और बासुरी भी थोडा पढ-लिख ले, तो वो भी सोचती होगी कि गीत मैं गा रही हू, यह आदमी नाहक ही मुह लगा के मेहनत कर रहा है। क्योकि गीत तो बासुरी से आता है। और बासुरी कैसे भरोसा करेगी कि इस आदमी से आता है! इस आदमी का क्या लेना-देना। और बासुरी कहेगी, 'मेरे

बिना तू गीत बजा के बता। तो मैं ही बजा रही हू।'

तुम भी बासुरी ज्यादा नही हो।

कबीर ने कहा है कि मैं बास की पोगरी हू। गीत तेरे, धुन तेरी! और समझ रखा है मैंने कि मेरे—उससे ही अकड पैदा हो गई है।

बास की पोगरी जो हो गया, वो सत हो गया, फिर कुछ उसे पाने को न बचा।

उलट गग समुद्रहि सोखै, ससि और सूरहि ग्रासै।

नवग्रह मारि रोगिया बैठे, जल मह बिब प्रगासै।।'

सब उलटा हो जाता है। नव-ग्रह को रोगी मार देता है। जिनकी वजह से रोगी सोचता था कि मैं ग्रस्त हू। नव गलत ग्रह जुड गये है, इनकी वजह से मैं परेशान हू!

'नवग्रह मारि रोगिया बैठे, जल मह बिब प्रगासै।' और सब उलटा हो जाता है। पानी के भीतर आग आ जाती है। जल मे बिब प्रगट हो जाता है, प्रकाश हो जाता है।

'बिनु चरनन को दहु दिसि धावै, बिन लोचन जग सूझै।'

और फिर वैसी घडी आ जाती, जब तुम पाते हो कि न तो पैर की जरूरत है। चेतना दसो दिशाओ मे बिना पैर के जा सकती है। पैर शरीर को चाहिए। चेतना के लिए कोई स्थान और समय की बाधा नही है।

'बिनु चरनन को दहु दिसि धावै, बिन लोचन जग सूझै।'

और सत्य को देखने के लिए इन आखो की कोई भी जरूरत नही है।

महावीर की आखें बद है। मूर्तियो मे देखो। जैनो के दो पथ है—श्वेताबर और दिगबर—उनमे एक झगडा है, कि महावीर की आखे खुली रखे कि बद। श्वेताबर खुली रखते है, दिगबर बद। कुछ ऐसे मदिर हैं जहा दोनो पूजा करते है। तो समय बाट लिया उन्होने। आधे दिन महावीर की आखे खुली रखते है आधे दिन बद। तो नकली आखे ऊपर से लगा देते है—खुली। इस सबध मे श्वेताबर गलत है। क्योकि महावीर की आखे खुली रखने का कोई भी प्रयोजन नही। इन आखो से सत्य देखा नही जाता। ये आखे तो बद ही हो जाती है। एक भीतर की आख है, लेकिन वो शरीर की नही वो चेतना की है वो जागरण की है, वो होश की है।

'बिन लोचन जग सूझै।'

और इन आखो की जरूरत ही नही खोलने की। इनसे तो कोई जगत का सत्य दिखाई नही पडता। इनसे तो माया ही दिखाई पडती है। भीतर भीतर के लिए तो भीतर की आख चाहिए। आख तो बन्द ही हो जायेगी। ये पैर गति खो देगे। ये हाथ शक्ति खो देगे। इनका कोई अर्थ न रह जायगा। तुम्हारे भीतर जो जीवन की ऊर्जा है, वही ऊर्जा दसो दिशाओ मे घूम सकती है, बिना आख देख सकती है, बिना हाथ छू सकती है।

चेतना के लिए, आत्मा के लिए समय और स्थान की कोई बाधा नही है। टाइम

और स्पेस है ही नही, वे दोनो शरीर के लिए है।

बुद्ध से किसी ने पूछा कि जब आप देह को छोड देंगे तो कहा होंगे? तो बुद्ध ने कहा या तो सब जगह, या कही भी नही। क्योकि शरीर कही होता है—स्थान मे, समय मे। आत्मा के लिए न तो स्थान है न समय। जब आप जैसे-जैसे ध्यान मे गहरे उतरेगे, वैसे-वैसे आप पायेगे कि न तो स्थान है न समय—दोनो के अतीत।

'मसै उलटि सिह कह ग्रासै, ई अचरज को बूझै!'

और जैसे कि खरगोश उलट के शेर को खा जाये, ऐसा अचरज घटित हो! ई अचरज को बूझै! तुम जो इतने कमजोर हो, अचानक तुम पाते हो कि तुम विराट शक्ति बन गये! खरगोश सिह को खा गया! तुम जो इतने दीन-हीन हो, तुम जो जीवन भर भिखारी की तरह जीते हो माग कर ही जीते हो, अचानक पाते हो कि तुम मालिक हो गये सम्राट हो गये! ई अचरज को बूझै!

स्वामी राम अमरीका गये। वे अपने को सम्राट कहते थे। बादशाह! था उनके पास कुछ भी नही। दो लगोटी और एक लोटा। लेकिन वे कहते अपने को बादशाह राम! उन्होने एक किताब लिखी, उसका नाम दिया बादशाह राम के छह हुक्मनामे। और वे बोलते, तब भी वो हमेशा अपने को बादशाह राम कहते। वो कहते बादशाह राम को प्यास लगी है, जरा पानी ले आओ। अजीब लगता, और अमरीका मे और भी अजीब लगता। खुद अमरीका का प्रेसीडेण्ट उनसे मिला था। और उसने कहा, 'और सब तो ठीक है लेकिन यह मेरी समझ मे नही आता कि आप किस भाति के बादशाह है। कुछ है नही आप के पास! राम ने कहा, इसी लिए हम बादशाह है। क्योकि हमारी कोई माग नही, कोई जरूरत नही। हम पूरे है। तुम्हारा अमीर-से-अमीर आदमी भी गरीब है, क्योकि उसकी माग अभी बाकी है।'

फकीर हुआ एक सूफी जुन्नैद। एक सम्राट उसके पास आया। सम्राट था, तो कोई दस हजार स्वर्ण-अशरफिया ला के उसने चरणो मे रखी। जुन्नैद ने पूछा कि 'तुम्हारे पास काफी है न? और तो तुम्हारी कोई माग नही, तुम और तो नही चाहते?' सम्राट ने कहा, 'माग कही समाप्त होती! इसलिए तो आपके चरणो मे आया कि आशीर्वाद मिल जाए!' तो जुन्नैद ने कहा कि ये जो अशरफिया तुम ले आये हो दस हजार, वापिस ले जाओ, क्योकि इनके कारण तुम गरीब हो जाओगे और हमारे सम्राट होने मे कोई फर्क न पडेगा। हमे कुछ बढती न होगी इनसे, क्योकि हम वैसे ही पूरे है। घडा पहले से भरा है। लेकिन तुम थोडे खाली हो जाओगे। तुम अभी गरीब हो, तुम ये ले जाओ।'

जुन्नैद गरीब आदमी था, नही कुछ उसके पास था। यह किस तरह का स्वामित्व है! यह किस तरह की मालकियत है!

कबीर कहते है मसै उलटि सिह कह ग्रासै, ई अचरज को बूझै।'

जो बिलकुल दीन-हीन था, अचानक गेस्टाल्ट के बदलते ही, ध्यान के बदलते ही, शरीर से ध्यान हटा, भीतर गया कि मालिक हो गया! जो कमजोर था, वो महा-शक्तिशाली हो गया। जो अज्ञानी था, वह परमज्ञानी हो हो गया। जो बधा था, वो मुक्त हो गया। . ई अचरज को बूझै! जो रो रहा था क्षुद्र के लिए, तडप रहा था, वो आनन्द से नाचने लगा। वो परमात्मा हो गया। ई अचरज को बूझै!

कबीर कह रहे हैं कि तुम्हारे भीतर दोनो छिपे है। दरिद्र तुम तब तक रहोगे जब तक वासना है। दरिद्र तुम तब तक रहोगे जब तक कर्ता का भाव है। मालिक तुम उसी वक्त हो जाओगे, जब वासना गई। और यह वासना को पूरा करने से न जायेगी, क्योकि वासना कभी पूरी होती नही—दुष्पूर है। बुद्ध ने कहा, वासना दुष्पूर है। उसे तुम पूरा न कर पाओगे। तुम कितने ही उपाय करो, तुम कितने ही दौडो, तुम्हारे दौडने या उपाय से उसका कोई सबध ही नही है। उसका स्वभाव दुष्पूर है।

तुम्हारे पास दस हजार रुपये हैं, वासना कहती है लाख मिल जायें तो सब ठीक हो जाए। लाख हो जाते हैं, वासना कहती है, दस लाख हो जाए तो सब ठीक हो जाए। तुम कितना ही बढत जाओ, वासना दस गुना होती जायेगी। हजार थे, दस हजार! दस हजार थे, लाख! लाख हैं, दस लाख! करोड हो, दस करोड! वासना का और तुम्हारा फासला उतना ही रहेगा—दसगुने का। तुम्हारे पास कितना है इससे क्या फर्क पडता है! गुणित दस—वासना इतना मागती रहेगी इसलिए वासना और आदमी का फासला कभी कम नही होता—दुष्पूर है। तुम गरीब ही रहोगे।

दुनिया मे दो तरह के गरीब है एक, जिनके पास धन है, और एक, जिनके पास धन नही है। दो तरह के गरीब है एक, जिनके पास बहुत कुछ है, गरीब हैं, और जिनके पास कुछ भी नही, वो भी गरीब है। मालिक तो तब पैदा होता है, जब यह दृष्टि बदल जाती है कि वासना के पीछे जा-जा के कुछ भी नही पाया। तो आदमी उलटी कर देता है गगा को। अब वह बाहर वासना की तरफ नही जाता, अपनी तरफ जाता है।

और दो यात्राए है चेतना की—या वस्तुओ की तरफ या अपनी तरफ। या तो कुछ पाने के लिए दौडते रहो, या खुद को पाने के लिए शात हो के भीतर बैठ जाओ। जो खुद को पा लेता है वो सब पा लेता है। और तुम सब पा लो और खुद से बच जाओ, कुछ भी न पा पाओगे। अखीर मे पाओगे कि तुम दरिद्र मर रहे हो, भिखारी की तरह तुम्हारी मृत्यु हो रही है।

'औधे घडा नहि जल बूडै, सूधे सो जल भरिया।
जिहि कारन जल भीन भीन करु, गुरु परसादे तरिया॥'

बडा बहुमूल्य वचन है।

'औधे घडा नहि जल बूडै! अगर नदी पार करनी हो तो घडे को औंधा करना

पडता है। औधा घडा सहारा बन जाता है। तुम औधे घडे के सहारे नदी पार कर लेते हो।

'औंधे घडा नहि जल बूडै, सूधे सौ जल भरिया।'

और अगर तुम सीधा घडा ले के नदी पार करने गये तो घडे की वजह से ही डूबोगे।

औंधे घडे मे पानी नही भरता, सीधे घडे मे पानी भर जाता है। तुम जैसे हो, अभी डूब रहे हो। जरूर घडा तुमने सीधा कर रखा है। तुम जैसे हो अभी सिवाय डूबने के और कुछ भी नही हो रहा है। तुम रोज डूब रहे हो, प्रतिपल डूब रहे हो। एक बात साफ है कि तुम्हारे डूबने से पता चलता है तुम्हारा दुख कम नही होता, बढ रहा है। कल था, उस से आज ज्यादा है, हालांकि कल तुमने सोचा था कि कल कम होगा। कल तुम्हारी चिंता थी, आज ज्यादा है कल और ज्यादा होगी। तुम रोज डूब रहे हो। तुम्हारे सब सहारे सब नावे डूबी जा रही है। एक बात साफ है 'औंधे घडा नहि जल बूडै, सूधे सो जल भरिया।'

तुम्हारा घडा सीधा है—इसे उलटा कर लो। तुम जिस तरफ दौड रहे हो, उससे उलटी तरफ दौडो। तुम जो कर रहे हो, तुम जो सोच रहे हो, उससे उलटा करो उलटा सोचो। अभी अहकार है तो निरहकार को यात्रा बनाओ। फिर विचार है तो निर्विचार को यात्रा बनाओ।

'औंधे घडा नहि जल बूडै, सूधे सो जल भरिया।

जिहि कारन नल भीन भीन करु, गुरु परसादे तरिया।'

और, जो लोग सीख गये कला घडे को उलटा करने की, वा गुरु के प्रसाद से अनेक लोग तर गये। भिन्न-भिन्न तरह के लोग। जिहि कारन नल भीन भीन करु, भिन्न-भिन्न तरह के लोग, भिन्न-भिन्न तरह के तैरने के ढग भिन्न भिन्न तरह की उनकी जीवन-चेतना की व्यवस्था—लेकिन वे सब तर गये! सार की बात एक है औंधे घडा नहि जल बूडै, सूधे सो जल भरिया, गुरु परसाद तरिया।

पर एक बात उसमे कबीर जोडते है, जो कि सभी सतो की वाणी मे कही-न-कही छिपी है। और वो यह है कि तुम्हारा घडा भी अगर तुमने उलटा कर लिया हो, और गुरु न हो, तो भी तुम तर न पाओगे। क्योकि पहली तो यही बात है कि तुम घडे को उलटा कर ही न पाओगे बिना गुरु के। लेकिन समझ लो कि भूल-चूक, सयोगवशात तुमने घडे को उलटा कर लिया, तो भी तुम तर न पाओगे। क्योकि तुम्हारा अहकार कि मैं तर रहा हू, कौन छीनेगा? तुम्हारा अहकार कि मैंने घडा उलटा कर लिया, कौन हटायगा? तुम्हारा अहकार कि अब मै दुखी नही हू, शात हू, ध्यानस्थ हू, कौन मिटायेगा? और यह अहकार किसी भी क्षण घडे को सीधा कर दे सकता है। क्योकि घडा पूरा उलटा तभी होता है जब अहकार बिलकुल नही होता। तब तुम उलटे घडे हो जाते हो। यह कौन छिना लेगा? यह कौन

तुम पर सतत ध्यान रखेगा ? यह कौन तुम्हे बार-बार चेतायेगा ?

गुरु का इतना ही अर्थ है, जो खुद पार हो गया, वही तुम्हे चेतायेगा। अगर दस लोग यात्रा पर गये हो, जगल हो घना, खतरा हो, तो वे क्या करते हैं? वे यह करते हैं कि पाली-पाली से जागते हैं। नौ सो जाते है, एक जागता है। क्योकि खतरा आयेगा तो जो जाग रहा है वही जगा सकेगा। जब उसकी नीद का वक्त आता है, तब वो दूसरे को जगा देता है, अब तुम जागो, अब मैं सो जाता हू। एक तो जागता हुआ चाहिए, नही तो खतरा आयेगा, पता ही नही चलेगा, नीद मे ही सब घट जायेगा।

गुरु का अर्थ है जो स्वय जागा हुआ है, वह तुम्हारी नीद मे उपयोगी होगा। तुम बार-बार सो जाओगे। नीद मे बार-बार घडा सीधा हो जायेगा। बार-बार तुम भूलोगे। बार-बार तुम चूक जाओगे।

ऐसा हुआ, एक सूफी फकीर हुआ। उसका असली नाम किसी को पता नही। लेकिन जिस नाम से जाना जाता है, वो है नस्साज। खैरनस्साज। फकीर था। एक वृक्ष के नीचे ध्यान कर रहा था। स्वस्थ! एक आदमी गुलाम की तलाश मे निकला था। गुलाम खरीदना था और एक मजबूत गुलाम चाहिए था। इस आदमी को झाड के नीचे इतना स्वस्थ बैठा देख के—और फकीर, फटे कपडे—उसे लगा कि यह कोई भागा हुआ गुलाम है। किसी का गुलाम है, भाग गया है, यहा जगल मे छिप रहा है। आदमी मजबूत दिखता है, काम का है। उस आदमी ने जा के पूछा कि क्या तुम भागे हुए गुलाम तो नही ?

नस्साज ने आख खोली और कहा, तुम ठीक ही कहते हो। भागा हुआ हू और गुलाम हू। उसका मतलब था कि परमात्मा से भाग गया हू, और वही तो मेरी गुलामी हो गई। वो आदमी प्रसिद्ध हुआ। यही तो मुसीबत है, ससारी और फकीर की भाषा मे कही मेल नही बैठता।

नस्साज ने कहा कि ठीक कहते हो, भागा हुआ हू और गुलाम हू। उस आदमी ने कहा, 'ठीक वक्त पे मिल गये, मै भी एक गुलाम की तलाश मे हू। मैं तुम्हारा मालिक होने को तैयार हू। मेरे पीछे आ जाओ। तुम्हे मालिक की खोज है ?' उस गुलाम ने कहा, 'बडे गजब के आदमी हो! यही तो मेरी खोज है। मालिक को खोज रहा हू।

वो आदमी उसे घर ले गया और उसने कहा, 'मैं हुआ तुम्हारा मालिक, तुम हुए मेरे गुलाम! और जो काम मै बताऊ, वो करो।' उसने कहा, यही तो मैं चाहता था कि कोई बताने वाला मिल जाए कि क्या करू, क्या न करू। अपने किए तो सब अनकिया हुआ जा रहा है। खुद कर-करके तो फस गया हू। तुम भले मिले।'

थोडा शक उस आदमी को होना शुरू हुआ कि या तो यह आदमी पागल है, और या फिर कही कुछ भूल-चूक हो रही है, कही भाषा का भेद है। पर उसने

सोचा कि अपने को प्रयोजन भी क्या, यह आदमी राजी है, ठीक। और मुफ्त मिल गया। बिना कुछ दिए-लिए! और आदमी नगडा, स्वस्थ! उसने उससे काम लेना शुरू कर दिया। वह आदमी इतना भला पाया उस ससारी आदमी ने इस फकीर को, उसने इसका नाम खैर रख दिया। खैर यानी अच्छा-भला। फिर उसने इसे—वो उसका खुद का काम था कपडे बुनवाई का—उसने इसे कपडा बुनना सिखाया। तो उसका दूसरा नाम हो गया 'नस्साज'। नस्साज यानी कपडा बुनने वाला। खैर-नस्साज उसका नाम हो गया। दस साल बीत गये, उसने बडी सेवा की इस मालिक की। उसने इतनी सेवा की और इतना सम्मान दिया और इतना श्रम किया कि इस मालिक को भी चोट लगने लगी भीतर कि मैं बडा शोषण कर रहा हू। एक पैसा मैंने इस आदमी पे खर्च नही किया है, और इसकी वजह से बडी धन-दौलत आ गई है। और मै शोषण कर रहा हू। अब वक्त आ गया है कि मैं इसे मुक्त कर दू। तो उसने इसे बुलाया और कहा कि बहुत हो गया। तुम बडे काम के साबित हुए, लेकिन मुझे मन मे खटकता है कि मैं शोषण कर रहा हू। उस खटकन को अब और ज्यादा नही सहा जाता। अब मै तुम्हे मुक्त करता हू। अब तुम अपने मालिक हुए।

नस्साज ने कहा, बडी कृपा कि तुमने मुझे मेरा मालिक बना दिया! और बहुत कुछ सीखने को मिला। तुम्हारे पास दास होने की कला सीखने को मिली। और अब परमात्मा मे फासला नही है। क्योंकि गुलाम होना जब से मैंने जान लिया अहकार टूट गया। अहकार टूटा कि गुलामी मिटनी शुरू हो गई। और देखो तुम तक मुझे मुक्त किये दे रहे हो! मै तो मुक्त हो गया, लेकिन अब तुम्हारे सबध मे क्या खयाल है? तुम कब तक गुलाम बने रहोगे?

फकीरो की भाषा और सासारिको की भाषा भला एक हो, एक हो नही सकती। उनके गेस्टाल्ट, उनके ध्यान अलग है। वो कुछ और देख रहे है, तुम कुछ और देख रहे हो।

कबीर कहते है कि तुम इतने सोए-सोए हो कि तुम्हे अगर कोई सतत जगाने वाला न हो, तो असभव है कि तुम जाग सको, असभव है कि तुम्हारा घडा उल्टा रह सके। तुम डूब ही जाओगे। और न मालूम कितने जन्मो मे तुम कितनी बार डूबे हो? और धीरे-धीरे तुम डूबने के आदी हो गये हो। डूबना तुम्हारी आदत हो गई है। और अब तुम डूबने से परेशान भी नही। तुम समझते हो, यही जिंदगी है। कारागृह मे कोई बहुत दिन रह जाए, तो कैदी समझने लगता है, यही जिंदगी है। कारागृह से जब पुराने कैदी बाहर निकलते है, तो दूसरे कैदी पूछते है, कब तक लौटोगे? और कारागृह कैदियो को घर-जैसा लगने लगता है—बाहर आ के उनको बडी बेचैनी होती है। आदत! कारागृह से ज्यादा सुरक्षित जगह भी तो तुम न पा सकोगे। न कोई झगडा, न कोई झासा, न कोई चिता, न कोई फिक्र! चारो तरफ

पहरा, जैसे तुम सम्राट हो। बडी दीवाले हैं कि कोई भीतर नही आ सकता। रात निश्चिंत सो सकते हो। भोजन की फिक्र नही, कोई अकाल नही पडता कारागृह मे कभी। भोजन मिलेगा ही। न काम की फिक्र। कभी कोई बेकाम नही रहता। बेरोजगार कोई भी कारागृह मे नही है। चिंता है ही नही। निश्चिन्त, सुरक्षित!

तो जब आदमी कारागृह के बाहर आता है, तो खुला आकाश बहुत डराता है। तुम कभी अपने तोते को छोड दो पिंजरे से, खुले आकाश मे, देखो उसकी कैसी गति हो जाती है! भयभीत, कपता हुआ! ज्यादा देर नही कि वह वापिस लौट आयेगा पिंजरे मे। तुम खुला ही छोड दो, पिंजरे मे आ के अदर बैठ जायेगा। तुम किसी तोते को पिंजरे के बाहर खीच के मुक्त करने की कोशिश करो, वो अपने को पिंजरे मे पकडेगा, रोकेगा। वो अपनी चोच तुम्हारे हाथ पर मारेगा कि बद करो दरवाजा, बाहर मत निकालो! पिंजरे जैसा सुख कहा! खुला आकाश खतरनाक है।

डूबने के तुम आदी हो गये। कारागृह तुम्हारा घर बन गया। और तुमने खब सजा लिया है। और तुमने भीतर की दीवालो को खूब रग-रोगन कर लिया है। अब तुम भूल ही गये हो कि तुम जहा हो, वहा तुम रोज-रोज डूब रहे हो।

'जिहि कारन नल्ल भीन भीन करु, गुरु परसादे तरिया।'

इसलिए अगर तुम अपनी ही तरफ से कोशिश करते रहोगे, करीब-करीब असभव है कि तुम तर जाओ। कोई चाहिए जागा हुआ जो तुम्हे सतत सचेत करता रहे। उसका ही अर्थ है गुरु-प्रसाद। गुरु-प्रसाद? प्रसाद इसलिए कि वह तुमसे कुछ लेना नही। तुम्हारे पास कुछ है भी नही कि तुम उसे दे सको। प्रसाद इसलिए कि वो बेशर्त दान है। वो तुम्हे दे रहा है, तुम ले लो, बस इतना ही काफी है, कुछ और उत्तर मे चाहिए नही। इसलिए गुरु जो भी देता है, वो प्रसाद है। तुम उसको कभी भी उत्तर चुका नही सकते।

कहावत है पुरानी पिता का ऋण चुकाया जा सकता मा का ऋण चुकाया जा सकता, शिक्षक का ऋण चुकाया जा सकता, लेकिन तुम गुरु का ऋण कैसे चुकाओगे? तुम क्या दोगे वापिस, जिससे गुरु का ऋण चुक जाए?

बुद्ध से उनके शिष्य आनन्द ने पूछा कि हम क्या दे, कि हम उऋण हो जाए? बुद्ध ने कहा, 'तुम एक ही काम करो, तुम जाओ और जो सोये हैं उनको जगाओ। और कोई उपाय नही है।

गुरु से उऋण होने का कोई उपाय नही है। इसलिए हम उसे प्रसाद कहते है। वह जो भी दे, वह प्रसाद। वह राख उठा के दे देता है, तो प्रसाद। उसके स्पर्श से राख भी स्वर्ण हो जाती है। वो दे रहा है, उसका देना ही हर चीज को मूल्यवान बना देता है। जो जागा हुआ है, उसके हाथ की राख भी मूल्यवान है। जो सोया हुआ है, उसके हाथ का स्वर्ण भी राख है। क्योकि असली सवाल तो जागने और सोने का है। जागने से हर चीज स्वर्ण हो जाती है, सोने मे हर चीज मिट्टी हो जाती है।

मूर्च्छा सभी चीजो को नष्ट कर देती है, वह मृत्यु है। जागरण, सभी चीजो को जगा देता है, वह जीवन है, महाजीवन है।

पैठि गुफा मह सब जग देखै, बाहर किछउ न सूझै।'

भीतर बैठ जाता है गुफा मे—हृदय की गुफा! 'पैठि गुफा मह सब जग देखै बाहर किछउ न सूझै।' और बाहर देखता नही, भीतर देखता है। वही जागरण का उपाय है कि तुम भीतर देखने लगो। आख बन्द कर लो, कान बन्द कर लो, हाथ शिथिल छोड दो, शरीर को ऐसा कर दो, जैसे है ही नही—और भीतर देखो!

'पैठि गुफा मह सब जग देखै, बाहर किछउ न सूझै।'

उलिटा बान पारधिहि लागै, सूरा होय सो बूझै।

और तब ऐसी घटना घटती है कि जो बहुत अभय हो—सूरा होय सो बूझै—जो बहुत बहादुर हो, साहसी हो, वही सूझ सकेगा, वही बूझ सकेगा। 'उलिटा बान पारधिहि लागै' जैसे कि तुम तीर चलाओ और तीर जाए न उस तरफ पक्षी को मारने, चला जाए भीतर और व्याघ्र खुद उससे छिद जाए।

उलटबासी है। तुम्हारी चेतना अभी बाहर की तरफ जाता हुआ तीर है। सब निशाने बाहर है। किसी को धन पाना है, वो उसका निशाना है। किसी को कुछ और पाना है। बडा ससार है, अनन्त लक्ष्य है। और तुम्हारी चेतना का तीर उनकी तरफ जा रहा है। इससे एक उलटी यात्रा भी है कि तुम्हारा तीर चेतना का बाहर की तरफ नही जाता। तुम आखे बन्द कर लेते हो, तीर भीतर की तरफ मुडता है। तुम भीतर देखते हो। आख उलटी हो जाती है। देखने का ढग बदल जाता है और चेतना भीतर की तरफ बहती है, जैसे गगा गगोत्री की तरफ बहे। मूलस्रोत की तरफ तुम्हारी चेतना आती है। जहा से आई है, वही वापस ले जाते हो। उद्गम ही लक्ष्य हो जाता है। तब, तब जीवन की परम घटना घटती है। तब जीवन की परम धन्यता उतरती है।

लेकिन कबीर कहते है, सूरा होय सो बूझै। यह कमजोरो का काम नही! यह तो बहुत बहादुरो का काम है। इसलिए तो हम महावीर कहते है महावीर को। नाम उनका वर्द्धमान था। जिस दिन तीर उलटा हुआ, उस दिन से हमने उन्हे महावीर कहा। वर्द्धमान तो मर गये, महावीर का जन्म हुआ। महावीर इसलिए कहा कि यह परम साहस है।

ध्यान रखना, धर्म कमजोरो की बात नही। भीरु, भयभीत, डरे हुए लोग, तुम्हे मदिरो मे मिलेगे—घुटने टेके, हाथ जोडे—लेकिन वे धार्मिक लोग नही है। वहा भी उनका तीर बाहर की तरफ जा रहा है। वहा भी वे माग रहे है ससार की चीजें।

ऐसा हुआ कि विवेकानन्द के पिता मर गये। तो घर बडा दीन था। कर्ज छोड गये थे। चुकाने का कोई उपाय नही था। और विवेकानन्द को लग गया राग-रग एक दूसरी दुनिया का। विवेकानन्द पे छा गये रामकृष्ण। तो अब तो कोई उपाय ही

न रहा। विवेकानन्द के दिन बीतने लगे रामकृष्ण के सत्सग मे, साधु-सगत मे। मा विधवा, कर्ज भारी! ऐसी हालते थी कि कभी भोजन भी होता, नही भी होता। कई दिन ऐसे हो जाते कि विवेकानन्द घर जाते और पाते कि इतना ही भोजन है कि अकेला कोई भी एक ले सकता, या तो मा या बेटा। तो विवेकानन्द कहते कि मै आज भोजन नही लूगा, कही निमत्रण है। किसी मित्र के घर भोज है। तू भोजन ले ले। चक्कर लगा कर गलियो मे भूखे पेट, रास्ते के किनारे लगे नल से पानी पी के हसते हुए घर लौटते जैसे भर-पेट आए है। डकार लेते घर मे आते कि बडा गजब का भोजन था। बडी सुदर चीजो के नाम गिनाते, ताकि मा आश्वस्त हो जाए।

रामकृष्ण को पता लगा कि यह तो बहुत बुरी हालत है, तो उन्होने कहा कि यह नही चलेगा। तू पागल हुआ है। तू जा के मा से क्यो नही माग लेता? मदिर मे मा की मूर्ति है। तू जा और जो मागना है, माग ले।

विवेकानद भीतर गये। रामकृष्ण द्वार पर बैठे है। घटा बीत गया। विवेकानद बाहर आए, आखो मे आसुओ की धार लगी है। परम आनदित है। रामकृष्ण ने कहा, 'माग लिया?' विवेकानद ने कहा, 'अच्छी याद दिलाई, मै तो भूल ही गया।' फिर भेजा भीतर, फिर घटे भर बाद बाहर आए, बडे प्रसन्न है। रामकृष्ण ने कहा, 'माग लिया? विवेकानद ने कहा, 'नही माग सकूगा। क्योकि मा जब सामने खडी हो, तो मागना कैसा! और क्या उसे पता नही है? परमात्मा से मागना क्या? और जो उसकी मर्जी, वही हो। उसकी मर्जी से हम ज्यादा समझदार तो नही हो सकते। अगर वो चाहता है यही, तो जरूर कोई राज होगा। तो जाता हू भीतर, आप कहते है, आपको भी इनकार नही कर सकता और भीतर जा के धुन मे लीन हो जाता हू। ऐसा आनद बरसता है कि वहा किसको याद रहती है कि पेट भूखा है, कि हाथ मे भिक्षा-पात्र लिए हू। नही, यह नही होगा। यह मैं न माग सकूगा।'

रामकृष्ण ने कहा, यही मै सोचता था कि अगर तू माग ले, तो मै समझ लू कि तू ससारी है और धार्मिक न हो सकेगा। अगर तू न माग सके तो फिर इस रास्ते प चल सकता है। क्योकि इस रास्ते पर तो वे ही चलते है 'सूरा होय सो बूझै'! हिम्मत है जिनकी, साहस है जिनमे—अज्ञात मे जाने का, अनजान मे उतरने का, क्षुद्र को छोडने का, विराट मे खोने का। 'सूरा होय सो बूझै।

'गायन कहै कबहु नहि गावै अनबोला नित गावै।

'गायन कहै कबहु नहि गावै'—गाना है साधक, फिर भी गाता नही। वो कोई गीत नही है। वो कोई सगीत नही है। एक आनद-भाव है।

'गायन कहै कबहु नहि गावै, अनबोला नित गावै।' और नही भी बोलता, तो भी गीत चलता है।

ये उलटबासिया है। तुम गाते हुए पाओगे मीरा को, चैतन्य को—और कबीर कहेगे फिर भी वे गाते नही, भीतर तो सब शात है, एक शब्द नही उठता। तुम बुद्ध को

और महावीर को बैठा हुआ पाओगे अनबोला, और कबीर कहेंगे, गाते हैं, भीतर तो धुन उठ रही है, 'अनहद नाद बाजे'!

संत की जो स्थिति है, वो इस उल्टबासी मे छिपी है। संत बोलता है तो भी बोलता नही। तुम चुप रहते हो तो भी बोलते हो। चुप्पी ऊपर-ऊपर होती है, भीतर तो बोले चले जाते हो। संत बोलता है तो भी बोलता नही, बोलना ऊपर-ऊपर होता है, भीतर तो गहन चुप्पी होती है। संत चुप रहता है, तब भी बोलता है, लेकिन उसके चुप रहने मे बोलने का ढग और, तुम्हारे चुप रहने मे बोलने का ढग और। संत चुप रहता है, तब चुप्पी मे बोलता है। तब वो तुमसे भी कह रहा है, चुप हो जाओ। तब वह तुमसे भी कह रहा है, जैसा मैं हू, ऐसे हो जाओ। तब वो तुमसे भी कह रहा है, निमत्रण है, द्वार खुला है, भीतर आ जाओ, चुप हो जाओ। और अगर तुम संत के पास चुप बैठ सको, तो तुम सब सीख लोगे जो सीखने-जैसा है।

संत बोले तो भी वो वही बोलता है कि चुप हो जाओ। संत चुप रहे तो भी वो वही बोलता है कि चुप हो जाओ। मौन हो जाना द्वार है। सब भाति शब्द से मुक्त हो जाना विधि है।

'गायन कहै कबहु नहि गावै अनबोला नित गावै।
नटवट बाजा पेखनि पेखै अनहद हेत बढावै॥'

ससार को तो वो खेल की तरह लेता है। 'नटवट बाजा पेखनि पेखै' देखता है कि यह सारा साज जो बज रहा है, खेल-कूद चल रहा है, अभिनय हो रहे है, नाटक हो रहा है—इसको वो नाटक की तरह देखता है, एक द्रष्टा!

'अनहद हेत बढावे' इधर देखता है ससार को एक नाटक, और उधर भीतर अनहद से प्रेम बढाता जाता है।

तुम जब तक इस ससार को वास्तविक मानते हो, तब तक तुम इसके साथ प्रेम को बढाते हो। क्योकि प्रेम, जहा भी वास्तविकता दिखती है, वही बढता है। जब तुम ससार को खेल समझ लेते हो लेकिन तुम बडी मुश्किल मे हो। तुम ससार को खेल क्या समझोगे! तुम फिल्म मे जाते हो, फिल्म को तुम सत्य समझ लेते हो! फिल्म मे देखो। वहा तो अधेरा रहता है, अच्छा है, नही तो सभी अपने आसू पोछ रहे हैं। लोगो के रूमाल गीले हो जाते है। लोग दो-दो जोडी रूमाल ले के जाते है। अधेरा अच्छा है। कोई देख नही रहा है। जल्दी से पोछ के फिर मजे से बैठ जाते है। फिल्म कुछ भी नही है वहा, पर्दे पर धूप-छाव का खेल है।

और संत कहते है, यह सारा ससार धूप-छाव का खेल है। संत इस सारे ससार को नाटक बना लेते है। तुम नाटक को भी ससार बना लेते हो। तुम वहा भी रोते हो, हसते हो, प्रसन्न होते हो। वहा भी किसी की हत्या होती है, तुम दुख प्रगट करते हो। वहा कोई किसी की छाती मे छुरा भोक रहा है, तुम एकदम सीधे हो के बैठ जाते हो, जैसे कोई दुर्घटना घटने जा रही है। तुम नाटक को भी वास्तविक

कर लेते हो, तो तुम ससार को कैसे नाटक कर पाओगे! और कला यही है कि ससार नाटक हो जाए।

'नटबट बाजा पेखनि पेखै, अनहद हेत बढावै।'

'कथनी बदनी निजुके जोहै, ई सभ अकथ कहानी।'

और इस सारे खेल को, न केवल ससार के खेल को खेल की तरह देखता है, बल्कि अपनी कथनी-करनी, खुद के आचरण, शरीर, क्रिया, गतिविधि को भी द्रष्टा की तरह ही देखता है। भूख लगती है सत को भी, लेकिन लगने का ढग और है। जब तुम्हे भूख लगती है, तुम्हे लगता है तुम भूखे हो गये, मैं भूखा हू। जब सत को भूख लगती है तो उसे दिखाई पडता है शरीर भूखा है। भूख से वो जोड नही लेता है अपने को। तुम्हारे पेट मे चोट लगती है तो तुम्हे चोट लगती है। सत को चोट लगती है तो वो देखता है कि पैर को चोट लगी है। जो करना जरूरी है, करता है, लेकिन है सब खेल।

सत साक्षी बना रहता है। और साक्षी-भाव इस जगत मे सबसे रहस्यपूर्ण दशा है। इसलिए कबीर कहते हैं, 'कथनी-बदनी निजुके जोहै।' 'निजु के जोहै' अर्थात् साक्षी हो जाए। सब देखे और साक्षी-भाव से देखे। कोई भी चीज छुए न। किसी भी चीज मे बंधे न। सबसे गुजर जाए, लेकिन अस्पर्शित रहे। रहे ससार मे, लेकिन ससार को भीतर न घुसने दे। ससार मे हो और ससार का न हो। वही तो साधु का लक्षण है।

'ई सभ अकथ कहानी।' और यह बडी अद्भुत कहानी है, कही नही जा सकती। क्योकि जिस दिन सारा ससार तुम्हे नाटक दिखाई पडेगा, उस दिन तुम कैसे रहस्य-लोक मे प्रवेश न कर जाओगे! जिस दिन तुम्हारा खुद का जीवन भी एक पार्ट मालूम पडेगा, उस दिन तुम्हारे जीवन मे कैसी चिंता! उस दिन तुम्हारे जीवन मे कैसा कष्ट, कैसा सताप!

ई सभ अकथ कहानी!

'धरती उलटि अकाशहि बेधै, ई पुरखन की बानी।'

और जिन्होने जाना है, उन पुरखो की यह वाणी है कि धरती उलटी हो कर आकाश को बेध देती है। तुम्हारी चेतना उलटी हो कर सारे ससार को बेध देती है।

'बिना पियाले अमृत अचवै, नदिय नीर भरि राखै।
कहहिं कबीर सो जुग-जुग जीवे, राम सुधारस चाखै॥'

बिना पियाले अमृत अचवै और अमृत बरसता है, और ऐसा बरसता है, कि तुम्हार चारो ओर बरसता है। प्याले की जरूरत भी नही भरने की। तुम ही उससे भर जाते हो। बिना पियाले अमृत अचवै। यह कोई प्यालियो मे नही बरसता, जब बरसता है तो। जब बरसता है तो सब बाध तोड के बरसता है। तुम्हारे चारो तरफ सागर की तरह हो जाता है। 'नदिय नीर भरि राखै ' इस तरह बरसता है

कि तुम्हारे भीतर नदियो जैसा भरा रह जाता है। जैसे आकाश से जब बरसा होती है तो सूखी नदियो मे भर जाती है। ऐसा तुम्हारे भीतर भर जाता है और चारो तरफ बरसने लगता है।

'कहहि कबीर सो जुग-जुग जीवै' और जिस पर यह अमृत बरस गया वह सदा जीता है, उसकी कोई मृत्यु नही, वो अमृत हो जाता है। 'राम सुधारस चाखै' और अनत-अनत, सदा-सदा परमात्मा के रस का स्वाद लेता रहता है।

दो स्वाद हैं जगत मे। एक स्वाद है शरीर का, और एक स्वाद है आत्मा का। भोजन करते हो, तब जो स्वाद मिलता है, वो शरीर का स्वाद है। सभोग करते हो, तब जो स्वाद मिलता है, वो शरीर का स्वाद है। सुगध आती है फूलो मे, तब जो स्वाद मिलता है वो शरीर का स्वाद है।

एक और स्वाद है, जो इद्रियो से नही मिलता—और वही स्वाद परमात्मा का है। लेकिन वह तभी सभव होगा, जब तुम्हारी गगा सागर को ग्रस ले, जब तुम्हारा तीर तुम्ही को लग जाए, जब तुम उलटी यात्रा पर निकल जाओ। वह तभी सभव है, जब

औधे घडा नहि जल बूडै, सूधे सो जल भरिया।
जिहि कारण नल भीन भीन करु, गुरु परसादे तरिया।।'

बस इतना ही राज है कि तुम औधे घडे हो जाओ। जिस दिन ससार का जल तुममे न भरेगा उसी दिन परमात्मा की वर्षा तुम पर हो जायेगी। सीधे घडे मे ससार भर जायेगा और तुम डूब जाओगे।

बहुत बार तुम डूबे हो। चेत जाना चाहिए! काफी समय हो गया, अब होश आ जाना चाहिए।

आज इतना ही।

दिनाक १९ नवम्बर, १९७४,
श्री रजनीश आश्रम, पूना

रस गगन गुफा में अजर झरै ।
बिन बाजा झनकार उठे जहं, समुझि परै जब ध्यान धरै ।।
बिना ताल जह कंवल फुलाने, तेहि चढि हसा केलि करै ।
बिन चदा उजियारी दरसै, जह तहं हसा नजर परै ।।
दसवें द्वार तारी लागी, अलख पुरुष जाको ध्यान धरै ।
काल कराल निकट नहि आवै, काम-क्रोध-मद-लोभ जर ।।
जुगत-जुगत की तृषा बुझानी, कर्म-मर्म अध-व्याधि टरै ।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, अमर होय कबहूं न मरै ।।

१

रस गगन गुफा में अजर झरै

धर्म है अमृत की खोज।

मनुष्य के जीवन मे सर्वाधिक सुनिश्चित है मृत्यु। उससे ज्यादा निश्चित और कोई नही। और सब सयोग है। हो भी सकता है, न भी हो। मृत्यु सयोग नही है —होगी ही! कितने ही बचने के उपाय हो सब व्यर्थ हो जायेगे। मृत्यु से कभी कोई बचा नही। मनुष्य को छोड कर और कोई पशु-पक्षी, पौधा, पत्थर मृत्यु के प्रति सचेतन नही है। मरते वे भी हैं, लेकिन उन्हे पता नही कि मृत्यु होगी। इसलिए मनुष्य के अतिरिक्त और कोई पशु धर्म को पैदा नही कर पायेगा।

धर्म पैदा होता है मृत्यु के बोध से। जितना गहन मृत्यु का बोध होगा, उतनी ही गहन धर्म की खोज होगी। अगर मृत्यु न हो तो धर्म खो जायेगा। अगर ऐसा हो जाए कि आदमी कभी न मरे, तो सब मदिर, मस्जिद, सब गिर जायेगे। इसीलिए तो जैसे-जैसे उम्र हाथ से खोती है, वैसे-वैसे व्यक्ति को धर्म की चिन्ता शुरू होती है। जैसे-जैसे मौत करीब आती है, वैसे-वैसे आदमी विचार करता है। जवानी मे आदमी भुलाए रख सकता है मदिर को। तब नशा गहरा होता है जीवन का। चढाव पर होती है, गति होती है जीवन मे। जीवन के भोग का नशा होता है। जैसे-जैसे पहाड से उतार शुरू होता है, बुढापा करीब आता है, वैसे-वैसे आश्वासन टूटने लगते है, भरोसा गिरने लगता है, जिन्दगी हाथ से जाती मालूम पडती है। मौत के कदम जैसे ही सुनाई पडने लगते हैं, वैसे ही धर्म की खोज शुरू हो जाती है।

मृत्यु के कारण धर्म की खोज शुरू होती है—इसलिए स्वभावत धर्म की खोज अमृत की होगी। और जब तक अमृत का अनुभव न हो जाए तब तक मनुष्य भयभीत रहेगा, कपता रहेगा—तुम कितना ही भुलाओ, तुम कितना ही छिपाओ। और हमने मौत को छिपाने की बडी कोशिश की है।

इस सबध मे एक बात खयाल मे ले लेनी जरूरी है। दुनिया मे दो तरह की सस्कृतिया हैं। एक सस्कृति है, जो काम को दबाती है, सेक्स को छिपाती है। और दूसरी सस्कृति है, जो मृत्यु को दबाती है, मृत्यु को छिपाती है। पश्चिम मे मृत्यु को छिपाया जाता है, सेक्स की खुली छूट है, रोज-रोज छूट बढती जा रही है, लेकिन

मृत्यु को बिलकुल भुलाया जा रहा है। पूरब मे सेक्स को दबाया गया है, कामवासना को दबाया गया है, मृत्यु को नही दबाया गया। ये दो तरह की सस्कृतिया हैं।

कामवासना और मृत्यु दो छोर है। क्योकि कामवासना यानी जन्म। कामवासना यानी जन्म का सूत्र । अगर तुम जन्म को दबाओगे तो मृत्यु को तुम्हे देखना ही पडेगा। मृत्यु पे तुम्हारी आखे अटक जायेंगी। क्योकि दो ही तो तथ्य है जीवन मे या तो जन्म को देखते रहो तो मृत्यु को भुला सकते हो, अगर मृत्यु को देखो तो जन्म को भुला सकते हो। पूरब ने तय किया कि हम जन्म को भुला दे, कामवासना को भुला दे, जैसे है ही नही, ऐसी जिंदगी बना ले कि पता ही न चले कि आदमी के जीवन मे कोई कामवासना है।

समझो अगर मगल-ग्रह से कोई यात्री अचानक आए, और हमारे गाव मे घूमे, बाजारो मे, लोगो से मिले-जुले, दुकान-दफ्तर मे जाए, उसे पता ही नही चलेगा कि कामवासना जैसी कोई चीज भी मनुष्य के जीवन मे है। हमने उसे रात के अधेरे मे छिपा दिया है । उसे पता ही नही चलेगा, क्योकि हमारे जीवन के बाहर वह कही भी दिखाई नही पडती। उसे हमने भीतर मन मे छिपा लिया है।

जो सस्कृति कामवासना को छिपायेगी, उसे मत्यु को गौर से देखना पडेगा। इसलिए पूरब धार्मिक हो गया, क्योकि मृत्यु को ज्यादा देखोगे, अनिवार्य रूप से अमृत की खोज शुरू होगी । पश्चिम ने कामवासना को नही दबाया, मृत्यु को दबाया। इसलिए पश्चिम मे मृत्यु को भुलाने की बडी कोशिश की जाती है। इस बात को अशिष्ट समझा जाता है कि आप मृत्यु की चर्चा करे। पूरब मे कामवासना की चर्चा करने को अशिष्ट समझा जाता है। अगर आप कामवासना की चर्चा करे तो लोग समझेंगे आपको सस्कार नही, सभ्यता नही है। पश्चिम मे मृत्यु की बात नही की जाती, मृत्यु को चर्चा के बाहर डाल दिया गया है। कामवासना की जितनी चर्चा करनी हो करो, मृत्यु की भर बात मत करना । कोई मर भी जाए तो लोगो ने अलग शब्द खोज लिये है मृत्यु को छिपाने को, कि स्वर्गवासी हो गया। हममे से अधिक तो नर्कवासी होगे। लेकिन जो भी मरा उसी को हम कहते हैं, स्वर्गवासी हो गया। मृत्यु शब्द की जगह स्वर्गवासी शब्द बडा मधुर है। बैकुठ-लोक चल गये बैकुठवासी हो गये! इससे ऐसा लगता है मरे नही, कही है। यह मृत्यु को छिपाने की तरकीब है। लोग कहते है, चोला छोड दिया। जैसे चोला ही छोडा मर नहीं कही है।

हजार तरह की अभिव्यक्तिया हमने खोज रखी है, जिनमे हम छिपाते हैं मृत्यु का तथ्य—और पश्चिम मे बहुत ज्यादा। आदमी मर जाए तो भी उसको बडी शान-शौकत से, बडी व्यवस्था से, फूलो से सजा के ले जाते है, जैसे कोई मृत्यु नही घटी है, जैसे कुछ दुख और शोक नही हो गया है, जैसे कोई उत्सव है, भुलाने की व्यवस्था। और इसलिए हम मरघट को बाहर बना लेते है गाव के । मरघट पे भी पश्चिम

मे पत्थर लगाते है तो वहा लिखते हैं यहा फला-फला आदमी सो रहा है, मर नही गया है, सो रहा है, चिरनिद्रा मे लीन है! ये सारे के सारे शब्द इस बात को छिपाने की कोशिश हैं कि कोई चीज टूट गई, मिट गई, समाप्त हो गई।

पश्चिम ने छिपा लिया है मौत को, इसलिए विज्ञान पैदा हुआ। क्योंकि अगर मौत मनुष्य की चेतना से हट जाए तो फिर जन्म ही रह जाता है, कामवासना रह जाती है, जीवन रह जाता है। तो फिर जीवन को कैसे अधिक सुविधापूर्ण बनाया जाए—कैसे जीवन को अधिक रगा जाए, कलात्मक बनाया जाए, कैसे अच्छे मकान हो, कैसे अच्छी सडक हो, कैसे अच्छा बाथरूम हो—तो जीवन के काम मे लग गई सारी चेतना। मृत्यु को भुला दिया, तो जीवन को बसाने का खयाल आया। इसलिए पश्चिम मे विज्ञान विकसित हुआ।

पूरब ने कामवासना को भुला दिया, इसलिए जीवन उपेक्षित हो गया। कैसे तुम जीते हो, कुछ मतलब नही, कूडे-कबाड मे जीते हो, कोई मतलब नही। झोपडे मे जिन्दा हो कि मरे हो, भूखे हो कि प्यासे हो, दुर्गंध है कि बीमारी है कि मक्खिया हैं घेरे हुए—कुछ मतलब नही। यह तो दो दिन का खेल है, समाप्त हो जायेगा! असली चीज तो मौत है। वो आ ही रही है, चाहे तुम महल मे रहो, चाहे झोपडे मे! तो हमने जीवन को और जन्म को छिपाया। इसलिए विज्ञान विकसित नही हुआ, धर्म विकसित हुआ। और जिस दिन कोई व्यक्ति दोनो को आख खोल के देखता है, उस दिन सही अर्थों मे क्राति घटित होती है। क्योंकि एक को तुम छिपाओगे, दूसरे को तुम देखोगे, तो तुम्हारा बोध आधा रहेगा, तुम अधूरे रहोगे। और आधा सत्य असत्य से भी बदतर है। क्योंकि आधा सत्य, सत्य-जैसा मालूम होता है, और सत्य है नही। पूरा सत्य ही सत्य होता है। और अब तक दुनिया मे कोई सस्कृति पैदा नही हुई है जिसने पूरे सत्य को देखा हो।

तुम्हे मैं उसी सस्कृति के वाहक बनाना चाहता हू, कि तुम पूरे सत्य को देखो जन्म भी है, जीवन को ढग से जीना भी है—और यह जानते हुए जीना है कि मौत होने वाली है। विज्ञान विकसित हो, उससे हम जीवन की सुविधा खोजे, और धर्म विकसित हो, उससे हम अमृत खोजे।

अगर अकेला विज्ञान होगा तो खोज मृत्यु की ही हो जायेगी। इसलिए विज्ञान एटमबम और हाईड्रोजनबम पे पहुच गया। खोजते-खोजते मृत्यु ही हाथ मे लगेगी। जिसको तुमने छिपाया है, वही हाथ मे लगेगा। क्योंकि जब तुम खोजोगे, जिसको तुमने दबाया है, वह हाथ मे लग जायेगा। कही भी छिपाओ, तुम्हे तो पता ही है कि कहा छिपाया है। कितना ही भूलो, तुम्हे तो पता ही है कि कहा छिपाया है। कितना ही भूलो, तुम्हे तो पता ही है। और जिसको तुमने छिपाया है, वो तुम्हारे अचेतन को प्रभावित करता रहेगा।

एक वैज्ञानिक ने जीवन भर की तलाश पूरी कर ली थी। वो भागा हुआ घर

आया। जिस काम के पीछे पचास साल से लगा था, वो पूरा हो गया था। द्वार पर ही उसे अपना छोटा बेटा बैठा हुआ मिला। उसने कहा, 'बेटे तू भी जान के खुश होगा कि मैं जो खोज रहा था, वो खोज पूरी हो गई, मंजिल आ गई। मैंने वो अद्‌भुत चीज खोज ली, जिसकी तलाश थी।' उसके बेटे ने पूछा, 'तो क्या है अद्‌भुत चीज?' बाप ने कहा कि 'मैंने वो रहस्य खोज लिया है कि अगर मै चाहू तो एक सेकेंड मे सारी दुनिया के लोगो को मार डाल सकता हू।' बेटे ने कहा, 'डैडी तो पहले मुझे मार के दिखाओ।' बेटा बडा प्रसन्न था। और उसने कहा, जैसे कि बच्चे कहते हैं अच्छा पहले हमे करके दिखाओ! तो उसने कहा कि डैडी पहले मुझे मार के दिखाओ। वैज्ञानिक उदास हो गया।

सभी वैज्ञानिक उदास है आज, क्योकि उन्होने अनजाने मौत खोज ली है। गये थे जीवन को खोजने, खोज ली मौत। जिसको छिपाया था, वो हाथ मे आ गया।

पश्चिम के लोगो ने मृत्यु का सूत्र खोज लिया है कैसे मारना सुगमता से, जल्दी, तेजी मे, कुशलता से। अब एक क्षण मे ही सारी दुनिया नष्ट की जा सकती है। यह बडी अजीब बात हुई—खोजने गये थे जीवन, हाथ लगी मौत!

पूरब के लोगो ने कामवासना को छिपा-छिपा के सारे चित्त को कामग्रसित कर दिया है। खोजने गये थे ब्रह्मचर्य, ब्रह्मचर्य मिला नही, मिली है बहुत गर्हित वासना। चित्त मे चौबीस घटे काम की ही धुन बजती रहती है। और जब तक काम की धुन बज रही है तब तक कबीर की धुन न बजेगी। और जब तक कामवासना रोए-रोए को घेरे हुए है, तब तक कबीर जिस लोक की बात कर रहे है, वह दशम् द्वार न खुलेगा।

कामवासना पहला द्वार है। और पहले ही द्वार पे जो अटका है, वह दसवे तक कैसे पहुचेगा? दसवा तो आखिरी द्वार है। पहले मे ही उलझ गये, तो दसवे तक कौन जायेगा? लेकिन जितना हमने कामवासना को दबाया उतना हम कामवासना मे भर गये। और पश्चिम मे जितना मृत्यु को दबाया, उतनी मृत्यु हाथ मे आई।

मैं तुमसे यह कहना चाहता हू कि जो तुम छिपाओगे, वो आज नही कल प्रगट होगा। छिपाना कुछ भी मत। जीवन के तथ्यो को सीधा-सीधा देख लेना। जीवन मे जन्म भी तथ्य है, मृत्यु भी। जन्म को भी देखना और मृत्यु को भी। जब तुम दोनो का अतिक्रमण कर सकोगे। भय के कारण जिसको तुम छिपा लोगे वो बार-बार तुम्हारे रास्ते मे आयेगा। भय से कभी कोई मुक्त नही हुआ है—अभय चाहिए!

रोमारोला ने अपनी एक डायरी मे एक बहुत कीमती वचन लिखा है। उसने लिखा है 'मैं एक ही अभय जानता हू। और जिसने अभय सीख लिया, उसने सब सीख लिया। और वो अभय यह है कि जिंदगी जैसी है तुम उसे उसकी पूरी सत्यता मे देखने की कोशिश करना, न तो कुछ छिपाना, न कुछ जोडना। जिंदगी जैसी है, उसे पूरा का पूरा देखना। और जिंदगी जैसी है, उसके पूरे अनुभव के साथ तुम्हे

जीना। छिपाया कि तुम मुश्किल मे पडोगे, जिंदगी अधूरी हो गई, खडित हो गई। दबाया, तुम मुश्किल मे पडोगे।

ध्यान रखना, कामवासना जीवन का सूत्र है। उसी का अत मृत्यु मे होता है। जो जन्म मे शुरू होता है, वही मृत्यु मे मरता है। जो जन्म के पहले था, वह मृत्यु के बाद भी रहेगा।

अगर तुम जन्म और मृत्यु को गौर से देखो, तो जल्दी ही तुम्हारी आखो मे वो तीव्रता और वो रोशनी आ जायेगी कि तुम जन्म और मृत्यु के पार भी देख पाओगे। अगर तुमने एक छोर छिपा लिया, तो तुम इतने डर जाओगे, तुम इतने भयभीत हो जाओगे कि तुम कुछ भी देखने मे समर्थ न रह जाओगे, तुम्हारी आखो मे भय समा जायेगा। और जिस आख मे भय है वो आख धुए मे दबी है। फिर तुम तर्क खोजते रहोगे, तर्क तो सभी खोज लेते है। लेकिन तर्क कोई सत्य नही है। तर्क तो पागल भी खोज लेते हैं।

मुल्ला नसरुद्दीन गया था मनस्-चिकित्सक के पास। परीक्षा के तौर पर मनस्-चिकित्सक ने कहा जाचने को, कि इस आदमी की बुद्धि डावाडोल कितनी हुई है या नही हुई है। कहा कि 'नसरुद्दीन अगर हम तुम्हारा एक कान काट ले, तो क्या होगा?' नसरुद्दीन ने कहा, 'साफ है कि मैं जितना सुनता हू उससे आधा सुन पाऊगा। मेरी सुनने की क्षमता आधी हो जायेगी।' उस मनस्विद ने कहा, 'और तुम्हारा दूसरा कान भी काट ले तो क्या होगा?' तो नसरुद्दीन ने कहा, 'फिर मैं देख न पाऊगा।' मनस्विद हैरान हुआ। उसने कहा, 'मतलब? अचरज की बात कहते हो! दूसरा कान काटने से तुम देख क्यो न पाओगे?' नसरुद्दीन ने कहा, 'उल्लू के पट्ठे, मेरा चश्मा जो गिर जायेगा!'

झक्कियो के भी तर्क होते हैं। उसके तर्क को खडित नही कर सकते। कह तो बात पते की रहा है।

जैसे ही तुम्हारे जीवन मे एक चीज को छुपा लिया, और दूसरी चीज तुमने इतनी महत्वपूर्ण बना दी, कि वो दोनो का ध्यान बाट ले, वैसे ही तुम्हारे दिल मे, तुम्हारे जीवन मे एक तरह का झक्कीपन आ जाएगा। झक्कीपन का अर्थ है असतुलन, तुम एक तरफ ज्यादा झुक गये। और सतुलन सम्यक्त्व है मध्य मे होना। जैसे कोई नट रस्सी पे चलता है, तो जरा बाए झुकता है तो तत्काल दाए झुकता है, ताकि सतुलन न खो जाए। और हर घडी सतुलन को बनाना पडता है। सतुलन कोई चीज नही है कि एक दफे जमा लिया, जम गई, प्रतिपल सतुलन सम्हालना पडता है। हर कदम पे नट को फिर से सतुलन सम्हालना पडता है। क्योकि हर कदम नया कदम है नई स्थिति है। ऐसा नही कि एक दफे सतुलन सम्हल गया, फिर आप मजे से सो जाए।

जीवन भी रस्सी पर चलते हुए नट की भाति है। वहा चुनाव नही करना है,

दो के बीच सतुलन सम्हालना है। बाए झुके तो बाए गिरोगे। दाए झुके तो दाए गिरोगे। गिरो कहीं भी, दोनो हालत मे मौत हो जायेगी। अगर मध्य मे रहे तो बच सकोगे।

तो न तो जन्म के साथ एक हो जाना है, न तो मृत्यु के साथ। न तो कामवासना को सब कुछ बना लेना है, और न मृत्यु से मुक्त होने की वासना को सब कुछ बना लेना है। न तो काम सब कुछ है, न मोक्ष। दोनो के मध्य अतिक्रमण कर जाना, ट्रान्सेन्डेन्स चाहिए। कोई कामना न रह जाए, मोक्ष की भी न रह जाए—तभी तुम दोनो के पार हो सकोगे। और जैसे ही कोई दोनो के पार होता है, उसके जीवन मे ये अनूठी घटनाए घटनी शुरू हो जाती हैं, जिसकी कबीर चर्चा कर रहे हैं।

ये घटनाए बडी अतर्क्य हैं। और भाषा मे कहना बडा विरोधाभासी है। क्योंकि जो भी कहो, वही अधूरा मालूम पडता है। जो भी कहो, बहुत कुछ कहने को शेष रह जाता है। जो भी कहो, लगता है कि सीमा बाध दी उस पर जो असीम था। और जो भी कहो, सुनने वाले को लगेगा कि नशे मे बाते कर रहे है। क्योंकि सुनने वाला जहा से सुन रहा है, उसका जो अपना अनुभव है, उससे इन बातो का कोई तालमेल न खायेगा।

तुम्हे एक ही अनुभव है जीवन का—वह पहले द्वार का है। या अगर तुम्हारा अनुभव बहुत गहरा हो गया हो, तो भी नौवे द्वार से तुम्हारा अनुभव ऊपर नही जाता। दसवे द्वार का तुम्हे कोई भी अनुभव नही है।

नौ द्वार है हमारे शरीर के दो आखें, दो नाक के नासापुट है, मुह है, दो कान है, गुदा है, जननेन्द्रिय है—ये नौ द्वार हैं। तुम्हारा सारा जीवन इन्ही मे समाया हुआ है। और ये सब द्वार शरीर के है। दसवा द्वार सहस्रार है। वह शरीर मे है और फिर भी शरीर का द्वार नही है। क्योंकि ये जो नौ द्वार है, इनसे तुम दूसरे शरीरो मे सबधित होते हो। आख से तुम क्या देखोगे? दूसरे को देखोगे। कान से तुम क्या सुनोगे? दूसरे को सुनोगे। हाथ से तुम क्या छुओगे? दूसरे को छुओगे।

दसवा द्वार अनन्त का द्वार है, समस्त का द्वार है। एक कोने पर कामवासना है, दूसरे कोने पर दसवा द्वार है। कामवासना से जो पैदा होता है, वो मरता है। और दसवे द्वार से जो प्रविष्ट हो जाता है, वो अमृत को उपलब्ध हो जाता है। कामवासना से शरीर पैदा होता है, शरीर मरणधर्मा है। दसवे द्वार से अशरीरी की झलक मिलती है, उसकी कोई मृत्यु नही। वो दसवा द्वार तुम्हारे सिर मे है। और इन पहले और दसवे द्वार के बीच मे सारा खेल है, सारा नाटक है।

पहले द्वार से तुम प्रविष्ट होते हो ससार मे, दसवे द्वार से तुम बाहर निकलते हो ससार के। पहला द्वार, वहा लिखा है एन्ट्रेन्स। दसवा द्वार, वहा लिखा है एक्जिट। और यह तो बात पक्की है कि जहा एन्ट्रेन्स होगा, वहा एक्जिट भी होगा। यह तो बात पक्की है, जहां प्रवेशद्वार होगा, वहा बाहर जाने का मार्ग भी होगा।

कामवासना से तुम प्रविष्ट हुए हो ससार मे। जननेद्रिय तुम्हारा द्वार है आने का। इसको भी हमने भुला रखा है, इसका हम विचार ही नही करते कभी। कोई आदमी सोच ही नही सकता, उसके मा-बाप सभोग करते थे, इसलिए वह ससार मे प्रविष्ट हुआ है। ऐसी बात ही सोचने मे लगेगा पाप, कि कही मा-बाप, और सभोग करते! यह तो सब गलत लोग करते है!

कभी तुम सोचे हो, सजग रूप से कभी तुमने इस पे ध्यान किया है, कैसे तुम ससार मे आए? यह सोच के ही मन मे बडी ग्लानि होगी कि मा-बाप और सभोग कर रहे है। यह सोच के मन मे बडी चिंता होगी की जननेद्रिय के द्वार से तुम्हारा आगमन हुआ है! इन बातो को हमने भुला रखा है। इन बातो को हमने छिपा लिया है। लेकिन ये सचाइया हैं और छिपाने मे झूठ नही हो जायेगी, सचाइया ही रहेगी।

तुम कभी सोचते ही नही कि तुम कैसे इस जगत मे आये हो। और अगर पहले द्वार से तुम जगत मे आये हो, और उसी द्वार पर अटके रहे तो जगत मे ही बने रहोगे। अगर तुम एन्ट्रेस पर, प्रवेश-द्वार पर ही बैठे रहे तो जीवन मे कोई गति नही होगी, कोल्हू के बैल की भाति घूमते रहोगे। ऐसा अनत जन्मो से तुम घूम रहे हो।

जैसे आने का मार्ग है, वैसा जाने का मार्ग भी है। उसकी ही तलाश धर्म है।

अमृत की खोज धर्म है। इस जीवन मे तो मृत्यु है ही। और जब तक तुम समझते हो यही जीवन तुम्हारा सब कुछ है, तब तक तुम मृत्यु मे भयभीत रहोगे तब तक तुम ज्वालामुखी पर बैठे हो, किसी भी क्षण मौत हो सकती है। और होगी ही, एक क्षण का भरोसा नही है!

फकीर हुआ एक सूफी, बायजीद। यात्रा पर जा रहा था तीर्थ की, हज करने जा रहा था। सस्ते जमाने थे, एक पैसे मे एक दिन का भोजन और एक दिन का खर्च पूरा हो जाता था। तो उसने एक पैसा जेब मे रख लिया और यात्रा पर निकलने को ही था कि उसके एक धनपति भक्त ने कहा कि 'यह तुम क्या कर रहे हो? एक पैसा ले के हज करने जा रहे हो, कभी सुना?' वो साथ मे एक थैली ले आया था, जिसमे बहुत अशरफिया थी। उसने कहा, 'ये साथ रख लो। एक पैसे से कही हज हुई है! इतनी लबी यात्रा, आना-जाना, कम से कम छह महीने लगने वाले हैं।'

बायजीद ने कहा, 'रख लूगा तुम्हारी थैली भी, लेकिन तुम मुझे पहले पक्का भरोसा दिला दो कि मैं एक दिन से ज्यादा जिऊगा? कल भी मैं रहूगा? अगर तुम मुझे आश्वासन दे दो कि कल भी मैं रहूगा, तुम्हारी थैली स्वीकार!'

तो उस धनपति ने कहा, 'मैं कैसे आश्वासन दे सकता हू कि कल आप रहेगे? कल का किसको भरोसा है!' तो बायजीद ने कहा यह एक पैसा आज के लिए काफी है। कल का जब भरोसा ही नही तो कल का इन्तजाम ।'

बायजीद की भीड मे एक फकीर और बैठा हुआ था। बायजीद तब ज्ञान को उपलब्ध नही हुआ था, लेकिन फिर भी ज्ञान के करीब ही करीब रहा होगा, ठीक

कगार पर रहा होगा, अभी छलांग नही लग गयी थी। तभी तो हज की यात्रा को जा रहा था। कही ज्ञानी तीर्थयात्रा को गये हैं! मगर फिर भी समझ गहरी थी, तब तो धनपति के पैसे को कह दिया कि सम्हाल के रख लो, तुम्हारे काम पडेगा। मुझे तो कल का भरोसा कोई दिलाए तभी कल की चिन्ता हो।

एक फकीर हसने लगा और भीड से उठ गया। बायजीद उसके पीछे दौडा और कहा कि तुम हसे क्यो? उसने कहा, 'जब एक दिन का भरोसा है तो कल के भरोसे मे क्या दिक्कत है? जब एक पैसा रख सकते हो, तो बात तो हो गई। फिर एक पैसा रखो कि करोड पैसा रखो, क्या फर्क पडता है? आज का भरोसा है? और जब एक पैसे पे भरोसा है तो परमात्मा पे कितना भरोसा है? है ही नही!'

बायजीद ने वो पैसा भी वही गिरा दिया। और कहते हैं उस पैसे के गिरने के साथ बायजीद ज्ञान को उपलब्ध हुआ।

एक क्षण का भरोसा नही, और इन्तजाम कितना बड़ा! इन्तजाम करते-करते ही तुम समाप्त हो जाओगे। पैसा, धन तो पैट्रोल की भाति है, वह कोई मजिल नही है। लेकिन कुछ लोग ऐसे है कि वो पैट्रोल इकट्ठा करते चले जाते हैं। उनके घर मे पैट्रोल ही पैट्रोल हो जाता है। खुद भी रहने की जगह नही रह जाती, वो बाहर रहते है। वो यात्रा की तैयारी कर रहे है, क्योकि जब तैयारी पूरी हो जाए तभी तो यात्रा पे जायेगे! इस ससार मे कोई चीज कभी पूरी नही होती, इसलिए वो कभी यात्रा पे नही जा पाते। वे पैट्रोल इकट्ठा करते-करते मर जाते हैं।

धन मजिल नही है। धन मार्ग पर विनिमय का साधन है। और धन पे तुम्हारी पकड यह बताती है कि तुम्हे कल का बहुत भरोसा है। क्षण भर भी भरोसे का कोई कारण नही, मौत किसी भी क्षण द्वार पे दस्तक दे सकती है। इस जीवन मे तो मौत छिपी है। इस जीवन मे तो जन्म के साथ ही मौत तुम्हारे भीतर आ गई है। जन्म की घडी मे ही तय हो गया कि कैसे तुम मरोगे, कब तुम मरोगे। एक-एक क्रोमोसोम, जिससे शरीर बनता है, उसकी उम्र तय है कि वो सत्तर साल जियेगा कि अस्सी साल जियेगा। बस उतनी ही तुम्हारी उम्र होगी। थोडे व्यवस्था से जिये तो थोडे दिन ज्यादा। थोडी अव्यवस्था से जिये तो थोडे दिन कम। लेकिन आमतौर से उम्र तय हो गई, जन्म के साथ, मौत भीतर प्रवेश कर गई है। प्रवेश-द्वार पर ही मत बैठे रहो, निकास का मार्ग भी खोजो! उसी को निर्वाण-द्वार कहा है बुद्ध ने। वह है सहस्रार!

तुम्हारे मस्तिष्क मे, आखिरी मस्तिष्क की जगह, जहा हिंदू चोटी उगाते है, वो चोटी सिर्फ सहस्रार का प्रतीक है, कि वहा केन्द्र है। लेकिन चोटी उगाने से कुछ नही होता। सारे बाल काट डालते थे, सिर्फ चोटी छोड देते थे। वह चोटी तो सिर्फ जगह थी बताने को कि यहा दसवा द्वार है, और इस पे ध्यान रखो। चोटी तो बहुत लोग रखे हुए हैं, ध्यान वगैरह कोई भी नही करता। ध्यान तो पहले द्वार पर

ही लगा रहता है, चोटी कितनी ही बडी हो। उसे चोटी भी इसलिए कहते है कि वो शिखर है। वो जीवन का शिखर वहा पर छिपा है, इसलिए चोटी! तुमने शायद कभी सोचा न होगा कि चोटी क्यो कहते है। शिखर है, गौरीशकर है वहा। वही छिपा है जीवन का आखिरी द्वार, जहा से तुम परमात्मा मे प्रवेश पाओगे।

और ये जो वचन हैं उस दसवे द्वार की उपलब्धि के बाद के है। इसलिए बडे कठिन होगे समझने मे, तर्क मुश्किल डालेगा। विचार कहेगा, यह कैसे हो सकता है! लेकिन तुम जल्दी निर्णय मत करना। अनुभव करने के बाद निर्णय करना। तब तुम भी नाचोगे, जैसा कबीर नाच उठे होगे।

'रस गगन गुफा मे अजर झरै।'

गगन-गुफा दसवे द्वार का नाम है। गगन-गुफा इसलिए कि उसके बाद गगन शुरू होता है, अनत आकाश शुरू होता है, सीमाए समाप्त हो जाती है, असीम शुरू होता है, आकार विदा हो जाता है, निराकार शुरू होता है—इसलिए गगन-गुफा।

'रस गगन गुफा मे अजर झरै' और एक अनन्त अमृत-रस उस गगन-गुफा मे झर रहा है।

तुमने एक तरह के रस का अनुभव किया है, वो है काम मे सभोग का। जब तुम्हारा वीर्य-रस झरता है तब तुम्हे क्षण भर को सुख मालूम पडता है। (यह जिस रस की बात कर रहे है, यह तुम ऐसा समझो कि सारे परमात्मा की तुम्हारे ऊपर वर्षा हो रही है, तुम नहा गये हो उसमे, तुम्हारा रोआ-रोआ नहा रहा है, रोआ-रोआ पुलकित हो के नाच रहा है। और यह अजर है। एक बार शुरू हो गया, फिर अत नही है। यह शाश्वत है। यह क्षणभगुर नही है। यह ऐसा नही कि आज वर्षा हो गई, कल सूखा पड गया। यह वर्षा तो अभी हो रही है, तुम्हे पता नही है। वर्षा तो अभी भी हो रही है, तुम उस तरफ जागे नही हो। खजाना तो अब भी है, लेकिन तुमने उस तरफ ध्यान नही दिया। यह तो सदा से होती रही है। यह जीवन का स्वभाव है कि वहा अजर अमृत बरसता रहे।)

'रस गगन गुफा मे अजर झरै।

बिन बाजा झनकार उठे जह, समुझि परै जब ध्यान धरै।'

'बिन बाजा झनकार उठे जह' दो तरह की ध्वनिया है। एक ध्वनि को कहते है आहत ध्वनि। जैसे मै ताली बजाऊ तो दो हाथ टकराए, यह जो ध्वनि पैदा हुई यह आहत ध्वनि है, दो की टकराहट से हुई। तबला बजाओ कि वीणा बजाओ कि कोई भी वाद्य बजाओ टकराहट, सब आहत ध्वनि है। लेकिन परमात्मा तो एक है, अस्तित्व तो एक है, वहा तो कोई दूसरा हाथ नही है ताली बजाने को। वहा भी एक सगीत है। उस सगीत का नाम अनाहत है। इसलिए फकीर निरतर कहते रहते हैं, खोजो अनाहत को!

अनाहत का मतलब एक हाथ की ताली। झेन फकीर जापान मे शिष्यो को कहते

हैं कि जाओ और खोजो कि एक हाथ से ताली कैसे बजेगी। यह उनकी खास साधना है। साधक को वर्षों लग जाते है। वो कई तरकीबे सोच के लाता है, लेकिन गुरु कह देता है, 'नही, तुझे कहने की जरूरत नही, जब बजेगी तो देख ही लूगा। तुझे बताने की जरूरत नही, जब बजेगी, तब तेरा पूरा अस्तित्व बजेगा।'

'रस गगन गुफा मे अजर झरै।
बिन बाजा झनकार उठे जह '

कोई बाजा नही, कुछ बज नही रहा, कोई टकराहट नही—और अनन्त ध्वनि का उद्घोष हो रहा है। उस ध्वनि को हिंदुओ ने ओकार कहा है। ओऽम् उस ध्वनि का प्रतीक है।

नानक कहते हैं, एक ओऽम् सत्नाम। बस, वह एक ओकार की ध्वनि ही सत्य का नाम है, और उसका कोई नाम नही। और सब नाम आदमी के खोजे हुए है। ओऽम् शब्द का कुछ अर्थ नही होता। ओऽम् शब्द, शब्द ही नही, ध्वनि है।

और सारे ससार मे जब भी कोई व्यक्ति दसवे द्वार पर पहुचता है तो वो ध्वनि सुनाई पडती है। लेकिन इस ध्वनि को भाषा मे लोगो ने अलग-अलग लिखा है यह दूसरी बात है। हिंदुओ ने उसे ओऽम् कहा है। मुसलमान यहूदी, क्रिश्चियन उसे ओमीन कहते हैं, इसलिए ओमीन पर उनकी प्रार्थना पूरी होती है। वह ओऽम् का ही रूप है—दसवे द्वार पर सुनी गई ध्वनि। उसकी व्याख्या बदल सकती है, क्योंकि ध्वनि के साथ एक दिक्कत है कि तुम कैसी व्याख्या करोगे। रेलगाडी जा रही हो —छक, छक, छक कहोगे कि भक, भक कहोगे, कि फक, फक कहोगे—क्या कहोगे, यह तुम पर निर्भर है। रेलगाडी एक ही जा रही है। और अगर तुम्हे पहले से कोई धारणा है तो वही सुनाई पड जायेगा। जैसे हिंदुओ को धारणा है कि ओकार, ओऽम्। जब तुम धारणा ही ले के गये हो, तो तत्क्षण तुम्हे जब वो ध्वनि गूजेगी, तुम्हे ओऽम् सुनाई पड जायेगा। तुमने जो धारणा बना ली होगी, वो धारणा उस ध्वनि को रूप दे देगी। लेकिन ध्वनि के लक्षण सभी फकीरो ने सारी दुनिया मे एक ही बताये है। और सबसे बडा लक्षण तो है 'बिना बाजा झनकार!' कोई चीज से पैदा नही हो रही। इसे थोडा समझ ले।

जो चीज किसी से पैदा होगी वो मरेगी। क्योकि दो चीजो से जो चीज पैदा होगी, उसकी सीमा और शक्ति सीमित होगी। मैंने दोनो हाथ से ताली बजाई, कितनी ताकत मै डालता हू, उतनी देर तक ताली गूजेगी। ताकत नष्ट हो जायेगी, ताली खो जायेगी। कितने जोर से तुम चिल्लाते हो, उतनी देर तक आवाज गूजेगी। जितनी ताकत तुमने दी है, उतनी ताकत चुक जाने पे आवाज खो जायेगी। तो जो भी चीज पैदा होती है, पैदा होने के साथ उसकी शक्ति और सीमा निर्णीत हो गई।

समझो कि एक स्त्री और एक पुरुष मिले, दोनो की उम्र परपरा मे, उनके मा-बाप और उनके मा-बाप और उनके मा-बाप सौ वर्ष तक जीते रहे, तो उन दोनो

के हाथ से जो ताली बजेगी, जो बच्चा पैदा होगा, वो सौ साल तक जी सकता है। लेकिन एक परपरा है मा-बापो की कि पचास साल मे मरते रहे हैं लोग उस घर मे, तो उनके हाथ से जो ताली बजेगी, जो बच्चा पैदा होगा, वो पचास साल मे मर जायेगा। तो तुम्हारी उम्र करीब-करीब तय की जा सकती है। तुम्हारी पिछली पाच-छह पीढियो की उम्र जोड ली जाए, और उसका औसत निकाल लिया जाए, तो तुम्हारी उम्र वही होगी। इसमे बहुत अडचन नही है। तुम्हारी मा-पिता, तुम्हारे मा के पिता-मा, तुम्हारे पिता के मा-पिता, ऐसे एक तीन-चार पीढी पीछे लौट के तुम सबकी उम्र जोड लो। और अगर दस आदमियो की उम्र जोडो, दस का भाग दे दो, जो उत्तर आयेगा वो करीब-करीब तुम्हारी उम्र होगी। सत्तर कभी एकहत्तर कभी उनहत्तर, बस वही तुम्हारी उम्र होगी। क्योकि दो हाथ से जो ताली बजी है, हाथ कितनी ताकत दे सकते है, उतने ही दूर तक जायेगी।

जब भी कोई चीज पैदा होती है, तो पैदा होने मे ही उसका अन्त तय हो जाता है – कितनी शक्ति ।

अनाहत कभी अन्त न होगा, क्योकि वो किसी से पैदा ही नही हो रहा। इसलिए परमात्मा को हम सनातन कहते है, शाश्वत कहते है, क्योकि वो किसी से पैदा नही हुआ है। अगर वह पैदा हुआ है तो वो भी मरेगा। ब्रह्मा, विष्णु, महेश मरेगे, क्योकि वे पैदा हुए हैं। राम, कृष्ण, बुद्ध मरेगे, क्योकि वे पैदा हुए है। लेकिन जिमसे वे पैदा हुए है और जिसमे वे डूब जायेगे, मर के लीन हो जायेगे, वो कभी नही मरेगा। वही ब्रह्म है। वही एक ओकार सतनाम!

'बिन बाजा झनकार उठे जह, समुझि परे जब ध्यान धरे।' जब समझ मे आने लगता है तब आदमी उस पे ध्यान धरता है। बज तो वह सदा रहा है। वह झनकार तो गूज ही रही है। वह झनकार ही तो तुम हो। झनकार इस समय भी तुम्हारे भीतर गूज रही है, लेकिन जब समुझि पूरे, जब समझ मे आ जाए तो आदमी उस तरफ ध्यान देता है। और स्मरण रखना, जिस तरफ तुम ध्यान दोगे, वही सत्य होगा।

एक युवक खेल रहा है हॉकी के मैदान पर, पैर मे चोट लग गई, खून बह रहा है। लेकिन वह खेल मे लीन है। सारे दर्शको को दिखाई पड रहा है कि पैर से खून बह रहा है, लकीरे बन गई है जमीन पर, लेकिन वह खेलने मे लीन है, उसे पता ही नही कि चोट लगी, उसे पता नही कि दर्द हो रहा है, उसे पता नही कि खून बह रहा है। खेल खत्म हुआ, एकदम पता चला। वह बैठ गया। पैर से खून बह रहा है, उसका चेहरा पीला पड गया। पहली दफा दुख का पता चला।

क्या हुआ? चोट लगी तब पता न चला! ध्यान वहा न था, ध्यान खेल में लगा था। खून बहा तब पता न चला, ध्यान वहा न था। ध्यान खेल मे लगा था। जिस तरफ तुम्हारा ध्यान होगा, उसका ही पता चलेगा। इसलिए इस दुनिया मे हर

आदमी को अलग-अलग चीजें पता चलती हैं।

अगर एक कवि आ जाये बगीचे मे, तो उसे कुछ और बाते पता चलती हैं। एक वैज्ञानिक आए, उसे कुछ और पता चलता है। दोनो का कोई मेल ही न होगा। अगर दोनो जा कर बतायें कि एक ही बगीचे को देख के लौटे हैं, तो कोई भरोसा न कर सकेगा। क्योंकि कवि को सौन्दर्य दिखाई पडेगा। काव्य का जन्म होगा। एक रोमास का अनुभव ले के वो लौटेगा। वैज्ञानिक को न कोई कविता का जन्म होगा, न कोई रोमास का भाव ले के लौटेगा। वह शायद कुछ नये पौधो की जाति, उन के नाम, क्लासिफिकेशन, कौन-सा पौधा किन खनिज द्रव्यो से मिल के बनता है, इस सबका पता ले के लौटेगा। इन दोनो की डायरी देख के आप पता न लगा सकेगे कि ये एक ही बगीचे से लौटे हैं। यह असभव है।

कहते हैं कि चमार जब किसी को देखता है तो आदमी को नही देखता, जूते को देखता है, और जूते से आदमी को पहचान लेता है। जूते की हालत सब बता देती है, आदमी की पूरी हालत बता देती है, कि आर्थिक हालत कैसी चल रही है, जूता कह देता है। दुकान ठीक चल रही है कि नही चल रही है, जूता कह देता है। पत्नी से बन रही है कि नही बन रही है, जूता कह देता है। जूते की भी कथा है। चमार पढना जानता है।

डॉक्टर जब किसी को देखता है, तो आदमी नही दिखाई पडता, बीमारिया दिखाई पडती है। देखते से ही तुम डॉक्टर के घर मे प्रविष्ट हुए कि बीमारी दिखाई पडती है। तुम चाहे मित्र की तरह ही मिलने आये हो ।

एक बडे चित्रकार ने, मानेक उसका नाम था, एक चित्र बनाया—एक पोरट्रेट एक गरीब आदमी का, एक भूखे आदमी का—बडी पीडा से कराहता हुआ! और अपने एक मित्र डॉक्टर को निमत्रित किया दिखाने को। डॉक्टर दस मिनिट तक देखता रहा। मानेक भी हैरान हुआ। उसने कहा कि तुम्हारी चित्रकला मे इतनी रुचि, मुझे कभी पता नही था! उसने कहा, कैसी चित्रकला! इस आदमी को अपेंडिक्स का दर्द है। यह जो चित्र बनाया है, अपेंडिसाइटिस की तकलीफ है।

डॉक्टर देखेगा वही, जो देख सकता है। चमार देखेगा वही, जो देख सकता है। जहा ध्यान है, वही दिखाई पडता है। ध्यान ही तुम्हारा सत्य है। तुम्हारे भीतर भी बह रही है रस की धार, पर तुम खेल मे लगे हो। कोई धन के खेल मे लगा है, कोई पद के खेल मे लगा है। तुम खेल में लगे हो, वह रस-धार तुम्हे दिखाई नही पडती। तुम ठीकरे इकट्ठे कर रहे हो। तुम बाहर उलझे हो। जब तुम सुलझोगे बाहर से, तब ध्यान जायेगा। बाहर से सुलझने का नाम, समझ।

समझ का मतलब बहुत ज्यादा सूचनाओ का पता चलना नही। समझ का मतलब है खेल की समझ। समझ का मतलब है बाहर के उपद्रव की समझ, समझ का मतलब है, अब बाहर से चुके, देख लिया बहुत, अब आख भीतर बद करेंगे, खेल

लिया बहुत, अब सुसतायेंगे, विश्राम करेंगे, दौड लिए बहुत, अब जरा रुकेंगे! जिस दिन तुम्हे यह दिखाई पड जायेगा कि बाहर की दौड का कोई भी फल नही है—कितना ही पा लो, कुछ भी मिलता नही, कितना ही इकट्ठा कर लो, सब खाली रहता है, धन का ढेर लग जाता है, तुम गरीब के गरीब बने रहते हो—जिस दिन यह समझ पड जायेगा, उस दिन ध्यान भीतर जायेगा।

कबीर कहते है, 'समुझि परे तब ध्यान धरे! बिन बाजा झनकार उठे जह।'

'बिना ताल जह कमल फुलाने!'

कोई सरोवर नही है लेकिन कवल खिल रहे है। 'तेहि चढि हसा केलि करै।'

कवल पूरब मे बहुत गहरा प्रतीक है। और कमल का फूल है भी बहुत रहस्य-पूर्ण। बाहर जो कमल का फूल है वो भी रहस्यपूर्ण है, तो भीतर के कमल का तो तुम अन्दाज नही लगा सकते। बाहर के कमल की कुछ खूबिया समझ लो, क्योकि बाहर के कमल मे भी भीतर के कमल की थोडी-सी झलक है।

बाहर के कमल की पहली तो खूबी यह है कि वो मिट्टी से गन्दी मिटटी से पैदा होता है—और उस जैसा पवित्र फूल नही है! कूडा-करकट, कचरा, कीचड—उससे कमल पैदा होता है, लेकिन कमल जैसी पवित्र पखुरी तुम कही भी न पा सकोगे। कमल जैसी कोमल, ताजी और कीचड से पैदा होता है! तो कमल बडे-से-बडा रूपान्तरण है। कीचड से कमल—बडे-से-बडी क्राति है। तो तुम अपनी कीचड से परेशान मत होना। माना कि कीचड हैं, बहुत कीचड है—उस पे तुम ध्यान भी मत देना। भीतर कमल भी खिल रहे हैं उस कीचड मे। तुम ध्यान कमल पे देना। चोरी है, बेईमानी है, झूठ है, फरेब है, ईर्ष्या है, द्वेष है, घृणा है, माया, मोह-मत्सर है—बहुत कीचड है। लेकिन कीचड है तो कमल भी होगा। तुम जरा भीतर ध्यान देना—बाहर कीचड, भीतर कमल। और कीचड को मिटाने मे मत लगना। क्योकि उसी कीचड से कमल को पोषण मिल रहा है। कीचड के दुश्मन भी मत हो जाना, तुम तो कमल की तलाश करना। और जिस दिन तुम कमल को पहचान लोगे उस दिन कीचड को भी धन्यवाद दोगे। उस दिन तुम कहोगे, इस शरीर का भी मैं अनुगृहीत हू, क्योकि इसके बिना यह कमल कैसे खिलता! अगर तुम कीचड-ही-कीचड होते तो किसको यह खयाल उठता कि कीचड को बदले, किसको यह खयाल आता कि रूपातरण करे, किसको यह खयाल आता कि क्राति करे, किसको यह खयाल आता कि शुभ, सत्य, सुन्दरम् की यात्रा करे? यह खयाल कमल का है।

तुम भीतर ध्यान दो, और तुम्हे वहा कमल खिलते दिखाई पडेंगे।

तो पहली तो खूबी है कमल की कि गन्दी से गन्दी कीचड से शुद्धतम, पवित्रतम पखुडिया उभरती हैं। और अगर कीचड मे कमल छिपा है, तो माया मे ब्रह्म छिपा है, शरीर मे आत्मा छिपी है। और दूसरी कमल की खूबी है कि रहता है पानी

मे, लेकिन पानी छूता नही, रहता है पानी मे, लेकिन अस्पर्शित। यही तो साधक की यात्रा है रहे ससार मे, और अस्पर्शित! पानी तो चारो तरफ है, लेकिन कमल ऊपर उठ जाता है पानी के। कीचड, पानी, सबको पीछे छोड देता है, भाग नही जाता, रहता वहीं है—ऊपर उठ जाता है। और फिर वर्षा का पानी भी गिरे, ओस का पानी भी गिरे, कमल को छूता नही। बून्द आती है और जाती है—सरक जाती है।

कमल के पास बैठ के कभी कमल से सरकती बून्द को देखना, उस पे ध्यान करना। एक बूद गिरती है, छूती भी नही, दूर ही दूर बनी रहती है। इतने पास हो के भी! कमल की पखुडी पे होती है। फिर भी कही कोई स्पर्श नही होता। बून्द ऐसी लगती है जैसे पानी की नही है, मोती है। क्योकि अगर स्पर्श होता तो बिखरजाती, फैल जाती। स्पर्श होता नही, बन्द ही रह जाती है। और जैसे ही वजन होता है, वैसे ही अपने-आप गिर जाती है। कमल अछूता रह जाता है। कमल अलग रह जाता है। कमल प्रविष्ट ही नही होता। बून्द अपने ही भार से गिर जाती है।

ससार अपने ही भार से गिर जायेगा। तुम परेशान मत होओ। क्रोध अपने ही भार से गिर जायेगा, तुम परेशान मत होओ। लोभ अपने ही भार से गिर जायेगा, तुम परेशान मत होओ। गिराने की कोई चेष्टा भी मत करो। तुम कमलवत् हो जाओ! बस तुम कमल जैसे हो जाओ! छूने न दो चीजो को। क्रोध आए दूसरी बार अब, तो तुम भीतर अपने को अस्पर्शित रखो, बाहर नाटक करो क्रोध का, क्योकि शायद जरूरत है जिन्दगी मे। क्रोध के नाटक के बिना जिन्दगी को चलाना मुश्किल है। कभी उसका उपयोग भी है। करो क्रोध—नाटक की तरह, अभिनेता की तरह—और भीतर अछूते बने रहो।

ये दो खूबिया कमल की हैं। ये दोनो खूबिया भीतर के कमल की भी हैं। फर्क एक है कि 'बिना ताल जह कवल फुलाने।' वहा कोई ताल नही है—और कमल खिलता है। क्योकि ताल मे जो कमल खिलेगा वह मुरझायेगा, आज नही कल, समाप्त होगा। बिना ताल के जो खिलेगा, अकारण जो खिलेगा, वो सदा रहेगा।

अकारण 'सदा' होने का सूत्र है।

तुम्हारा किसी से प्रेम हुआ, अगर उसमे कोई कारण है, वो समाप्त होगा। वह कारण कोई भी हो—धन हो, सौदर्य हो, पद-प्रतिष्ठा हो—कारण कोई भी हो जो प्रेम कारण से पैदा हुआ, वह समाप्त होगा। अकारण प्रेम सदा रहेगा। अगर तुम प्रार्थना भी कारण से करते हो, वह भी मुरझा जायेगी। कारण पूरा हो जायेगा, फिर क्यो प्रार्थना करोगे!

एक छोटे बच्चे को उसकी मा कह रही थी, कि तूने रात की प्रार्थना कर ली या नही? ईसाई घर था, मैं वहा मेहमान था। उस बच्चे ने कहा, 'लेकिन अभी कोई जरूरत ही नही है। सब ठीक ही चल रहा है, तो प्रार्थना किसलिए करनी?'

जब सब ठीक चलता है तब तुम प्रार्थना क्यो करोगे ? कारण से उठी प्रार्थना, कारण के पूरे होते ही मुरझा जायेगी। अकारण प्रार्थना !

अकारण प्रार्थना तुमने कभी की है ? तभी तुम्हे प्रार्थना का रस मिलेगा। तुम कर रहे हो, क्योकि करने मे आनद है, कोई कारण नही है। अकारण प्रेम तुमने कभी किया है ? *तब तुम्हारा प्रेम ही दिव्य का द्वार बन जायेगा।*

अकारण तुम जो भी कर सकोगे, वही साधना है। रास्ते पे एक आदमी गिर पडा है, तुमने अकारण उठा दिया। अगर कोई भी कारण है, इतना भी कारण है कि लोग देख रहे हैं, कहेगे कि कितना सेवाभावी है—इतना भी मन मे भाव हो, तो यह साधना न रही। कोई नदी मे डूब रहा है और तुम कूदे और तुमने उसे बचा लिया, और तुमने इतना भी चाहा कि कम से कम वह धन्यवाद दे दे, अगर उसने धन्यवाद न दिया, तुम उदास और दुखी हुए, और तुमने सोचा मैंने जान दाव पे लगाई, इस आदमी ने धन्यवाद भी न दिया—तो यह साधना नही है। फिर तुम ससार को ही फैला रहे हो। उसके नये-नये ढग हैं।

एक स्त्री तालाब मे डूब के मरी। मुल्ला नसरुद्दीन किनारे पर खडा था, खडा ही रहा। बाद मे भीड इकट्ठी हो गई। जब लाश निकाली गई, नसरुद्दीन से पूछा कि 'तुम यहा मौजूद थे, चाहते तो बचा लेते।' नसरुद्दीन ने कहा कि मैंने कहानिया भी पढी है, फिल्मे भी देखी है। मै तो उसे बचा लेता। लेकिन अगर वह विवाह का प्रस्ताव करती, जैसा सभी फिल्मो मे होता है, फिर मुझे उससे कौन बचाता ?'

कारण—इस तरफ या उस तरफ—और तुम ससार मे हो ! अकारण—और तुम ससार के बाहर हुए ! क्योकि परमात्मा का एक ही गुण-धर्म है कि वह अकारण है। उसका कोई कारण नही है। तुम यह नही पूछ सकते कि परमात्मा क्यो है। यह बात ही व्यर्थ है। तुम यह नही पूछ सकते कि अस्तित्व क्यो है। यह बस 'है'— इसका कोई कारण नही है।

अकारण तुम अगर हो गये, तो तुम अस्तित्व-जैसे हो गये।

अकारण की सूचना कबीर देते है 'बिना ताल जह कवल फुलाने, तेहि चढि हसा केलि करै।'

और जिस दिन तुम्हारे जीवन मे अकारण फूल खिलेगे, उस दिन तुम्हारी आत्मा हस की तरह उन पर क्रीडा करेगी। तुम्हारी आत्मा की क्रीडा तभी शुरू होगी, तुम्हारी आत्मा की प्रफुल्लता, उत्सव तभी शुरू होगा, जब जीवन मे अकारण कमल खिले। नही तो तुम दुखी ही पाओगे। तुम्हारी आत्मा, तुम्हारा हस रोता ही रहेगा। कारण से अगर तुम जिये, तो तुम्हारी आत्मा तरसती ही रहेगी, उसकी तृषा न बुझेगी। अकारण तुम जिये कि फिर भीतर का जो हस है, फिर वो क्रीडा कर पाता है। उस क्रीडा करने वाले हस को ही हमने परमहस कहा है। हस तो सभी हैं— रोते, परेशान होते, व्यर्थ ही दीन हुए, व्यर्थ ही भीख मागते, मिलता भी कुछ नही है।

जिस दिन तुम्हारे भीतर अकारण कमल खिलता है, उसी दिन तुम्हारा हंस परम-हंस हो जाता है।

'बिन चन्दा उजियारी दरसै, जहं-तहं हंसा नजर परै।'

और जहा तक तुम्हारी भीतर की आख जाती है और उसके जाने की कोई सीमा नही, असीम है। क्योंकि भीतर की आख के लिए कोई बाधा नही है। वह वहा तक जाती है जहा तक अस्तित्व है—और अस्तित्व सब तरफ है, सब जगह है। अस्तित्व कही समाप्त नही होता। ऐसी जगह नही आती जहा लगा हो कि बस, रुक जाओ, रास्ता बंद है। अस्तित्व अनन्त है, असीम है। और उस भीतर के हंस की आख सब तरफ जाती है, सब दिशाओ मे डोलती है।

'बिन चन्दा उजियारी दरसै, जहं-तहं हंसा नजर परै।' और जहा तक नजर आती है, वहा तक एक उजाला दिखाई पडता है—जो बिना चाद के है। इसे थोडा समझ ले।

एक तो रोशनी है सूरज की। सूरज की रोशनी मे रोशनी भी है, ताप भी है, गर्मी भी है, उष्णता भी है। रोशनी तो है, लेकिन रोशनी मे पीडा है। तुम ज्यादा देर उसे न झेल सकोगे। और तुम सूरज की तरफ आख भी न कर सकोगे। और उस ताप मे एक पीडा है जो जल्दी ही तुम्हे झुलसा देगी। चाद की रोशनी मे फर्क है चाद मे रोशनी तो है, लेकिन शीतल है। तुम चाद की तरफ देख भी सकते हो। और तुम चाद की रोशनी मे घटो बैठ सकते हो—और तुम शीतल होते जाओगे, तुम शात होते जाओगे।

ध्यान सूरज की रोशनी जैसा नही है, ध्यान चाद की रोशनी-जैसा है।

दूसरी बात कबीर कहते है, वहा चाद भी नही है, बस रोशनी है—बिना स्रोत, बिना कारण। क्योंकि चाद की रोशनी भी होगी तो चाद बुझेगा, तो चाद ढलेगा। तो कभी पूर्णिमा होगी, कभी अमावस होगी। कभी चाद दिखेगा, कभी नही दिखेगा। बिना स्रोत की रोशनी सदा रहेगी।

'दसवे द्वार तारी लागी अलख पुरुष जाको ध्यान धरै।' यह 'दसवे द्वार तारी लागी' दसवा द्वार है, सहस्रार। वहा तारी लागी। यह 'तारी' शब्द बडा मधुर है। शब्दकोश मे उसका जो अर्थ है, उससे पूरी बात समझ मे न आयेगी। क्योंकि शब्दकोश तो कहेगा नीद लगी—तारी लगी! लेकिन 'तारी' का अर्थ सिर्फ नीद नही है। तारी का अर्थ है, एक सम्मोहित चित्त की दशा। जैसे तुम अपनी प्रेयसी को देखते हो, जैसे मजनू ने लैला को देखा होगा—वो तारी है! तारी का मतलब यह है कि सारी दुनिया का होश खो गया, बस लैला रह गई, सारी दुनिया के प्रति मजनू खो गया, सिर्फ लैला के प्रति जागा रहा है।

अगर तुमने किसी हिप्नोटिस्ट को, सम्मोहन करने वाले को देखा हो, तो वो जब आदमी को सुला देता है, सम्मोहित करके, तो सबके प्रति तो सो जाता है, लेकिन

सम्मोहन करने वाले के प्रति जगा रहता है। वह अगर कहता है कुछ तो वो सुनता है, वह कहता है, उठ के खडे हो जाओ, दौडो, तो वो दौडता है। लेकिन अगर कोई और बोलेगा, तो वो नही सुनेगा। सबके प्रति सो गया, जिसने सम्मोहित किया है बस, उसके प्रति जागा रह गया। ध्यान अपलक एक की तरफ लग गया।

तारी का मतलब है, सारे ससार के प्रति नीद हो गई, जैसे ससार है ही नही, और सिर्फ परमात्मा की तरफ आख अटकी रह गई। अपलक, पलक झपती भी नही। यह होगा ही। क्योकि जब दसवे द्वार पर पहली दफा कोई खडा होता है, और उस विराट सौदर्य को देखता है उस अनत ध्वनि को सुनता है, उस अमृत की धार मे स्नान करता है, पहली बार ब्रह्मानद का रस चखता है, तारी लग जाती है। तारी लग गई। अब सब ससार भूल गया।

ऐसा रामकृष्ण को बहुत बार हो जाता था कि वे छह-छह दिन तक बेहोश पडे रह जाते थे—वो तारी की दशा थी। उनको कही भी लग जाती थी तारी। वे रास्ते पर चल रहे हैं, और किसी ने कह दिया 'जय राम जी'—उनकी तारी लग लग गई, वे वही रास्ते पर खडे रह गये हाथ-पैर वैसे ही रह गये। लोग तो समझते कि विक्षिप्त हो गया। उठा के घर लाना पडता। घटो लग जाते तब वो होश मे आते। कोई उनसे पूछता कि क्या हो जाता है, तो वे कहते, 'ये शब्द ऐसे हैं कि याद आ जाती है। राम! और मै भीतर चला गया।' वे दसवे द्वार पे पहुच गये। यह शब्द जैसे चाबी हो गया। इसने एकदम दसवा द्वार खोल दिया। और जब कोई दसवे द्वार पर पहुच जाता है, तो ससार से खो गया। वह रास्ते पर खडा हो, खतरा हो ट्रैफिक का, कि कार मे दबेगा कि बस मे, कोई फिक्र नही—वह वही खडा ही रहेगा।

रामकृष्ण को उनके भक्त जब कही ले जाते थे, तो खयाल रखते थे रास्ते मे, कोई परमात्मा का नाम न ले दे! तो रास्ते मे एक उपद्रव हो जाता है। और लोगो की तो कुछ समझ नही। लोग समझते है, यह पागल हो गया, दीवाना है! रामकृष्ण को लोग उत्सव, जलसो मे नही बुलाते थे। क्योकि यदि वो वहा पहुच जाए तो वे खुद ही जलसा हो जाए। किसको रोको, कोई कुछ कह दे!

किसी के घर शादी थी। भक्त थे रामकृष्ण के, उनको बुलाया। पहले ही वे प्रार्थना कर गये थे कि आप खयाल रखना, क्योकि शादी का वक्त है। पर रामकृष्ण कैसे खयाल रख सकते है! खयाल रखने वाला कौन! जब तारी लग जाती तो कैसा खयाल! कबीर ने कहा है कि पूरी मधुशाला पी गया हू, और तुम खयाल की बात करते हो! थोडी-बहुत शराब नही पी है—पूरी मधुशाला। रामकृष्ण गये। और जैसे ही वो दरवाजे मे प्रवेश कर रहे थे, किसी ने कह दिया, 'जय रामजी'—वे वही खडे हो गये! छह दिन तक! सब शादी-विवाह ठडा हो गया। दूल्हा-दुल्हन को लोग भूल गये, उनकी फिक्र करनी जरूरी हो गई। वे गिर पडते

और जब भी उठते रोते उठते, आख से आसुओ की धार बह रही और चिल्लाते उठते कि 'मा, मुझे दूर क्यो किये दे रही है? क्यो द्वार बन्द हो रहा है? क्यो मुझे वापिस भेजा जा रहा है?' उठते और रोते।

तारी का अर्थ है, दसवे द्वार का सम्मोहन। वहा से परमात्मा दिखता है। जिसकी आख उस पे पड गई, सारा ससार खो जाता है। शुरुआत मे तो बहुत कठिन होता है। शुरुआत मे तो चाहिए साथी-सगी, भक्त, जो ध्यान रख सके, अन्यथा वो आदमी मर जायेगा। क्योकि वह छह दिन बेहोश पडा, पानी भी देना पडता है मुह मे, दूध भी देना पडता, पखा भी करना पडता, ओढाना भी पडता। उसे तो कुछ पता नही। वो इस दुनिया मे है ही नही। लाश पडी है इस दुनिया मे। वो तो किसी और देश मे उड गया! कबीर कहते है—चल हसा वा देश—वो जो दूसरा देश है, चले वहा!

नानक एक गाव से गुजर रहे थे। और हस उड गये आकाश मे। सरोवर के किनारे खडे थे। और हसो की एक कतार उठी और नानक उनके पीछे भागने लगे। मरदाना उनका भक्त साथ था। उसने बहुत रोकने की कोशिश की कि यह क्या कर रहे हो, लेकिन वो रुके नही। मरदाना भी पीछे भागता रहा। जब तक हस न रुक गये, तब तक नानक न रुके। लगता है हस भी समझे। हस रुक गये। नानक उनके पास पहुच गये। मरदाना तो डरा कि वो पास जायेगे तो वो फिर उड जायेगे, मगर वे नही उडे। नानक उनके बीच बैठ गये। और आखो से आसुओ की धार बह रही है। और उन्होने जो वचन कहे, वे बडे अद्‌भुत थे! उन्होने कहा, 'हसो, तुम तो बडे दूर आकाश मे उडते हो, तुमने जरूर उस बनाने वाले को कभी देखा होगा! तुम तो बडी-बडी दूर की यात्रा पर जाते हो—चल हसा वा देश—तुमने जरूर मेरे बनाने वाले को देखा होगा! मै उसकी तलाश मे हू, कुछ खोज-खबर तुम मुझे दो, कुछ पता-ठिकाना! फिर आसू बह रहे हैं और वे कही रुके है। और एक परम मस्ती ने उनको घेर लिया।

मरदाना को वो हमेशा साथ रखते थे। मरदाना एक सगीतज्ञ था। जैसे ही नानक खोने लगते, वो अपना एकतारा छेड देता। वह एकतारा तरकीब थी उनको वापिस लाने की। वो मरदाना के एकतारा को सुनते, तत्क्षण वापिस आ जाते थे। वो कुजी थी। नही तो वो दसवे द्वार पर अटक जाये, तो जो रामकृष्ण की हालत होती थी वो नानक की होती।

लेकिन रामकृष्ण के पास मरदाना जैसा कोई कुशल कलाकार नही था, क्योकि वो वही धुन बजाता था जो वापिस लौटा ले। धीरे-धीरे धीरे-धीरे नानक वापिस आ जाते, स्वस्थ हो जाते, शरीर मे हो जाते। मरदाना को उन्होने जीवन भर साथ रखा। मरदाना मुसलमान था। नानक हिंदू थे। मदिर मे भी जाते तो तभी जाते जब मरदाना साथ जा सके, क्योकि मदिर मे तारी लग जाए! अगर कोई मदिर

कहता कि मुसलमान को न जाने देंगे तो वो मदिर नानक के जाने के लिए बद था।

तारी का अर्थ है, जब कोई दशम् द्वार पे खडा होता। जब कोई दसवे द्वार के आगे निकल जाता है, तब फिर तारी नही लगती। बुद्ध और महावीर को तारी नही लगती। इस दसवे द्वार पर खडे हो कर जब कोई देखता है, उस अनन्त के सौंदर्य को, तब तारी लगती है। इसलिए याद रखना इस बात को। रामकृष्ण को जैसी बेहोशी आती थी, ऐसी बुद्ध और महावीर के जीवन मे कभी नही आई। दसवे द्वार पे रुक के उन्होने देखा नही। वो तो सीधे उतर गये, द्वार पर ध्यान ही नही दिया। द्वार के पार कौन है, उस तरफ भी नही देखा—वे चले ही गये। वो खुद ही एक हो गये उसके साथ। फिर तारी नही लगती, क्योकि द्वैत चाहिए, तारी लगने को। परमात्मा मुझे दिखाई पड रहा है—तब तारी लगती है। जब मैं डूब ही गया परमात्मा मे, एक हो गया, तब तारी नही लगती। तारी किसको लगेगी ? तारी भक्त को लगती थी, भगवान को नही।

तो इसलिए यह एक बडी बेबूझ घटना है। लोग पूछते है कि रामकृष्ण को जैसा होता था वैसा बुद्ध को क्यो नही हुआ ? महावीर को क्यो नही हुआ ? या तो रामकृष्ण गलत हैं, या बुद्ध और महावीर गलत है। कोई भी गलत नही है। रामकृष्ण दसवे द्वार पे खडे हो के झलक ले रहे है। और वह भक्त की मनोदशा है। भक्त कहता है, हे भगवान, थोडी दूरी बनाए रखना, ताकि मैं तुझे देख सकू, और तेरा रस पी सकू, और तेरे सौन्दर्य को निहार सकू, थोडी दूरी बनाए रखना !

भक्त भगवान होना नही चाहता। भक्त कहता है, अखीर तक थोडा फासला बनाये रखना। मैं तेरे सिंहासन के पास आ जाऊ, लेकिन तेरे चरणो को छुऊ—बस इतना काफी है। जन्मो-जन्मो तक भक्त रहू !

निश्चित ही बडा अपरपार सौदर्य है, जो ज्ञानी को नही मिलता, जो भक्त को मिलता है, क्योकि भक्त थोडा फासला बनाए रखता है। और कहता है, तुम भगवान, मैं भक्त। तुम मालिक, मैं दास।

इसलिए कबीर बार-बार कहते हैं, 'कहे दास कबीर।' मालिक नही—दास। तुम्हारे चरण पकड लू, बस इतनी मेरी मजिल। वही मेरा बैकुठ, वही मेरा मोक्ष!

भक्तो ने गाया है कि मै मोक्ष नही चाहता, मुझे तुम्हारे चरणो की सेवा चाहिए। तो भक्त दसवे द्वार पर रुकता है उससे आगे नही बढता, क्योकि उससे आगे बढा कि सागर मे गया। जैसे गगा वही रुक जाए जहा मे सागर मे गिरती है, और वहा से खडे हो के सागर को देखे। यह तो नानक, कबीर और रामकृष्ण की दशा है।

बुद्ध और महावीर सीधे सागर मे चले जाते हैं, वे सागर हो जाते हैं। वहा भक्त और भगवान का कोई फासला नही रह जाता। वो स्वय भगवान हो जाते हैं। फिर तारी नही लगती—तारी किसको लगे, किस पे लगे? द्वैत खो गया, तारी खो गई।

'दसवे द्वार तारी लागी, अलख पुरुष जाको ध्यान धरै।

काल कराल निकट नहिं आवै, काम, क्रोध मद लोभ जरै॥'

और इस दसवे द्वार पर अब न तो मौत पास आती, क्योंकि पहले द्वार पर मौत है, दसवे द्वार पर अमृत है। पहले द्वार पर जीवन, मौत दोनो हैं। दसवे द्वार पर जीवन के पार जो जीवन है—जिसका कोई जन्म नही, जिसका कोई अत नहीं—महाजीवन है।

'काल कराल निकट नहिं आवै, काम क्रोध मद लोभ जरै' और अब काम, क्रोध मद, लोभ सब अपने-आप जल गया। हटाना नही पडता, लडना नही पडता। वे तो सब पहले द्वार के अनुषागिक अग हैं। जो पहले द्वार पे खडा है, काम के द्वार पर जो खडा है, उसे क्रोध भी होगा, मद भी होगा, लोभ भी होगा। क्योंकि जब तक कामना है, तब तक तुम क्रोध से कैसे मुक्त होओगे ? जो भी तुम्हारी कामना मे बाधा डालेगा, उसी पे क्रोध आयेगा। तब तक तुम मद सैं कैसे मुक्त होओगे ? क्योंकि अगर मद से तुम मुक्त हो गये, बेहोशी से मुक्त हो गये, तो कामवासना मे कौन गिरेगा ? तब तक तुम लोभ से कैसे मुक्त होओगे ? क्योकि लोभ का इतना ही अर्थ है, कामवासना को पूरा करने का साज-सामान जुटाना। अगर तुम झोपडे मे हो तो बहुत सुन्दर स्त्री न पा सकोगे। सुन्दर स्त्री पाने के लिए महल चाहिए। झोपडे मे हो तो झोपडे के लायक स्त्री मिलेगी।

तो लोभ का अर्थ इतना ही है कि कामवासना ठीक से पूरी हो सके, उसका इन्तजाम जुटाना। जब तक काम है तब तक क्रोध, लोभ सब जारी रहेगे। काम कैसे मिटेगा ? लड-लड के कभी नही मिटता। जिसकी जीवन-ऊर्जा दसवे द्वार पे पहुच जाती, वह अचानक पाता है, सब जल गया! न अब काम है, न क्रोध है, न लोभ है।

जुगत-जुगत की तृषा बुझानी ' और जन्मो-जन्मो की जो प्यास थी वह बुझ गई। क्योंकि जिसकी तलाश तुम ससार मे कर रहे हो, वह ससार मे है नही। तो प्यास तो बनी ही रहती है। कितना ही पियो इस पानी को, प्यास बुझती नही।

जीसस के जीवन मे उल्लेख है। एक कुए के पास गये। राह से गुजरते थे। एक औरत पानी भरती थी। जीसस ने कहा कि मुझे पानी पिला दे, मैं बहुत प्यासा हू। धूप थी, लम्बी यात्रा थी। दूर गाव मे चल के आए थे। उस स्त्री ने कहा, 'क्षमा करे, लेकिन मैं अछूत जात की हू, छोटी जात की हू। और बता देना उचित है। मेरे हाथ का छुआ पानी बडी जात के लोग नही पीते।'

जीसस ने कहा, 'तू उनकी फिक्र छोड। और अगर तु मुझे पानी पिलायेगी इस कुए का, तो मै तुझे उस कुए का पानी पिलाऊगा, कि फिर प्यास कभी लगती नही। मै तुझे वो पानी पिला सकता हू कि उसे पीने के बाद प्यास फिर कभी लगती नही।'

जीसस जिस कुए की बात कर रहे हैं, वह दसवा द्वार है। उस दसवे द्वार पर जो खडा हो जाता—'जुगत-जुगत की तृषा बुझानी, कर्म-मर्म अघ-व्याधि टरै'—

सब पाप, कर्म इत्यादि सब समाप्त हो गये, सब जल गये।

'कहै कबीर सुनो भाई साधो, अमर होय कबहू न मरै।' और इस दसवे द्वार को जिसने जान लिया वह अमर हो गया। उसकी फिर कोई मृत्यु नही है।

धर्म अमृत की खोज है। अमृत दसवे द्वार का अनुभव है। कैसे तुम्हारी ऊर्जा, तुम्हारी जीवन-शक्ति, पहले द्वार से उठे और दसवे तक पहुच जाए—यही सारी ध्यान-विधियो का लक्ष्य है।

यहा हम कुण्डलिनी ध्यान का प्रयोग कर रहे हैं। वो ध्यान तुम्हारी ऊर्जा को पहले द्वार से उठा कर दसवे द्वार तक ले जाने का मार्ग है। इसलिए पहले दस मिनिट तुम शरीर को कपाते हो। कपाने का अर्थ है कि जो-जो ऊर्जा जहा-जहा दबी पडी है, वह पिघल जाए, जहा-जहा रुकी पडी है, वहा-वहा से गतिमान हो जाये। अगर तुमने ठीक से दस मिनिट शरीर को सपूर्ण भाव मे कपाया तो सारी दबी हुई ऊर्जा प्रगट हो जायेगी, बहने लगेगी।

फिर दूसरे चरण मे नृत्य है। नृत्य का अर्थ है कि जो ऊर्जा अब फैल गई है, सब तरफ, वह आनद-भाव मे रूपातरित हो तुम नाचो, जैसे तुम एक उत्सव मे हो, जैसे कोई महा घटना घटी, जैसे तुम्हारे जीवन मे कोई प्रकाश उतरा! तुम नाचो आनद भाव मे! क्योकि जितने तुम आनदित होते हो, उतनी ही ऊर्जा ऊपर उठती है, जितनी ऊर्जा ऊपर उठती है, उतने तुम आनदित होते हो। तो अगर तुम मस्त हो गये, नाचने लगे, जैसे पूरी मधुशाला पी गये ऐसा कजूस का नाच—उससे काम न चलेगा—कि नाच रहे है ऐसा, जैसे कि बडी मजबूरी है, कि क्या करे, अब आ फसे है, या कि देख ले शायद कुछ हो! न, ऐसे नही चलेगा। ऐसा कुनकुना काम काम नही आयेगा। त्वरा चाहिए! नाच रहे है, जैसे पागल हो कर!

पागल हुए बिना परमात्मा नही मिलता। तुम अपनी बुद्धि मे चले तो तुम जहा हो वही रहोगे। तुम्हारी बुद्धि से थोडा पार जाने की जरूरत है। और जब तुम्हारी पूरी ऊर्जा आनदमग्न हो गई है, ऊपर की तरफ बह रही है आनदमग्न होने का अर्थ ही है कि ऊपर की तरफ बह रही है। क्योकि आनद का भाव ही ऊपर की तरफ बहने से होता है। जितनी नीचे बहती उतना दुख का भाव होता है, उतना ही जीवन मे नर्क उतरता है। इसलिए हम कहते है नर्क नीचे, और स्वर्ग ऊपर। उसका मतलब कुल इतना ही है कि पहले द्वार के साथ जुडा है नर्क और दसवे द्वार के साथ जुडा है स्वर्ग। ऊपर नीचे का और कोई मतलब नही।

जब तुम्हारी ऊर्जा पहले द्वार से नीचे गिरती है, तब तुम अपने जीवन मे नर्क पैदा कर रहे हो। और जब तुम्हारी ऊर्जा दसवे द्वार पर खडे हो कर विराट की तरफ बहती है, तब तुमने अपने जीवन मे स्वर्ग बना लिया। दोनो तुममे छिपे है। जब ऊर्जा प्रवाहित हो रही है और तुम आनदमग्न हो, तब ठहर के खडे हो जाना या बैठ जाना, ताकि ऊर्जा को अब पूरा मौका मिल जाए प्रवाहित होने का। बैठ

जाना उपयोगी है, ताकि सिर्फ रीढ बचे। सारा शरीर खो जाए, सिर्फ रीढ बचे। और रीढ से ऊर्जा ऊपर जाए और सारी ऊर्जा रीढ मे सगृहीत हो जाए। फिर लेट जाना है, ताकि जो ऊर्जा सगृहीत हो कर ऊपर बह रही है उसको और सुगम हो जाए, वह दसवे द्वार पर टक्कर मारने लगे।

कुण्डलिनी का पूरा प्रयोग दसवे द्वार पे टक्कर मारने का है। अगर तुमने ठीक से किया, तो तुम भी कह सकोगे

'जुगत-जुगत की तृषा बुझानी, कर्म-मर्म अघ-व्याधि टरै।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, अमर होय कबहू न मरै॥'

आज इतना ही।

दिनाक २० नवम्बर, १९७४,
श्री रजनीश आश्रम, पूना

मन मस्त हुआ तब क्यों बोले ।
हीरा पायो गांठ गठियायो, बारबार वाको क्यों खोले ।।
हलकी थी तब चढी तराजू, पूरी भई तब क्यों तोले ।।
सुरत कलारी भई मतवारी, मदवा पी गई बिन तोले ।
हसा पाये मानसरोवर, ताल-तलैया क्यों डोले ।।
तेरा साहब है घर मांही, बाहर नैना क्यों खोले ।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, साहब मिल गए तिल ओले ।।

१०

मन मस्त हुआ तब क्यो बोले

बुद्ध को ज्ञान हुआ, उसके बाद वे दो सप्ताह तक चुप रहे। कथाए कहती है कि सारा अस्तित्व खिन्न हो गया उदास हो गया। और देवताओ ने आ के उनके चरणो मे प्रार्थना की कि आप बोले, चुप न हो जाये, क्योकि बहुत-बहुत समय मे कभी मुश्किल से कोई बुद्धत्व को उपलब्ध होता है। और करोडो आत्माए भटकती है प्रकाश के लिए। वह प्रकाश आपको मिल गया है, उसे छिपाये मत, उस दूसरो को बताये, ताकि दूसरे अपने अधेरे मार्ग को आलोकित कर सके। जो खोज लिया है उसे अपने साथ मत डुबाये, उसे दूसरो के साथ बाट ले, ताकि उन्हे भी कुछ स्वाद मिल सके। चुप न हो, बोले!

कहते है, बुद्ध ने कहा 'अगर बोलूगा, तो जो मै कहूगा वह समझ मे न आयेगा। इसलिए चुप रह जाना ही उचित है। क्योकि जो भी मै बोलूगा वो दूसरे ही लोक का होगा। और उसका कोई स्वाद न हो तो समझ मे न आयेगा। अनुभव के सिवाय समझ का और कोई मार्ग नही है, इसलिए चुप रह जाना ही उचित है।

पर देवताओ ने फिर आग्रह किया और कहा कि कुछ को समझ मे आयेगा। थोडा-सा भी धक्का लगा उस यात्रा पर—न भी समझ मे आया, थोडा-सा रस पैदा हुआ, थोडा-सा कुतूहल जगा, जिज्ञासा जन्मी, मुमुक्षा पैदा हुई—तो भी उचित है।

बुद्ध ने कहा 'जो सच मे जिज्ञासु है, वे स्वय ही खोज लेगे, उन्हे कुछ कहने की जरूरत नही। और जो जिज्ञासु नही है, वे सुनेगे ही नही, उन्हे कहने मे कुछ सार नही।'

लेकिन देवताओ के सामने बुद्ध हारे, क्योकि देवताओ ने कहा कि कुछ ऐसे है, जो बिलकुल सीमात पर खडे है। अगर न सुनगे तो खोजने मे बहुत समय लग जायेगा, अगर सुन लेगे तो छलाग लग जायेगी। और फिर वे सुने या न सुने, जो आपने पाया है आप बाटे।

क्योकि करुणा प्रज्ञा की छाया है। जो जान लेगा वह महाकरुणा से भर जायगा। वो इसलिए नही बोलता कि बोलना उसकी कोई मजबूरी है। हमारे बोलने और उसके बोलने मे फर्क है। हम बोलते है इसलिए कि बिन बोले नही रह सकते। बिना

बोले रहेंगे तो बडी बेचैनी होगी। बोलना हमारा रेचन है, केथार्सिस है। बोल लेते हैं, निकल जाता है।

इसलिए तो लोग अपने दुख की चर्चा करते रहते है। क्योकि जितनी दुख की चर्चा कर लेते हैं, उतना दुख हलका हो जाता है। जितनी बार कर लेते हैं, उतना बिखर जाता है। न बात करने को मिले कोई, तो दुख भीतर-भीतर इकट्ठा होगा, घाव बनेगा।

मनसूविद कुछ भी नही करते, सिर्फ बीमारो की बात सुनते है। सुन-सुन के ही उन्हे ठीक कर देते हैं। सुनने से मन हलका हो जाता है। जो बोल लेता है, वो खाली हो जाता है।

हम बोलते है इसलिए कि बोलना हमारी रुग्ण दशा मे जरूरी है, अन्यथा हम जी न सकेगे। कुछ भी न बोलने को हो, तो हम व्यर्थ की बाते बोलते हैं। कहते हैं, 'मौसम कैसा है!' वह दूसरे को भी दिखाई पड रहा है, हमको भी दिखाई पड रहा है। 'सुन्दर सूरज उगा है!' दूसरे के पास भी आखे हैं, कहने की कोई जरूरत नही।

ऐसा हुआ कि एक सम्राट ने अपने वज़ीर से कहा कि मैं जानना चाहता हू, इस राजधानी मे अधे कितने हैं, तुम उनकी गिनती करो।

वजीर ने कहा, 'सचमुच अधो को जानना चाहते है या सिर्फ जिनकी आखें बद है, उनको?'

सम्राट ने कहा, 'सचमुच जो अधे है! क्या मतलब? फर्क है क्या दोनो बालो मे?'

उस वज़ीर ने कहा, 'अधो का पता लगाना हो तो गाव के वैद्य ही खबर दे देंगे, अस्पताल से पता चल जायेगा। वो कठिन बात नही है। लेकिन, अगर सच मे अधे जानने हो तो जरा मुश्किल है। समय चाहिए।'

वज़ीर दूसरे दिन सुबह जा के बाजार मे बैठ गया! उसने आसपास जूते फैला लिये! जूते सीने लगा, ठोकने लगा! जो भी आदमी निकला, वही पूछे, 'क्या कर रहे हैं?' वो उसका अधे मे नाम लिख ले। क्योकि जो वो कर रहा है, वो देख ही रहा है। पूछना क्या है—क्या कर रहे है! खुद सम्राट तक का नाम अधो मे आ गया। क्योकि सम्राट भी जब निकला दोपहर मे तो उसने पूछा, 'यह क्या कर रहे हो?' उसने तत्क्षण नाम लिख लिया। जब फेहरिश्त आयी तो बहुत लबी थी। सिर्फ कुछ बच्चो को छोड कर, जो उधर से निकले थे और उन्होने जरा भी फिक्र न की और न पूछा बाकी सब अधे थे।

अगर कोई हमारी बातचीत पर ध्यान दे तो बहुत हैरान होगा। हम वो बाते कर रहे हैं जिनका कोई भी अर्थ नही है। जो दूसरे को भी दिखाई पड रहा है, वह हम दिखा रहे हैं। जो दूसरे को भी पता है, वो हम बता रहे हैं। जो दूसरे ने भी सुन

लिया है, वह हम सुना रहे हैं। जो दूसरे ने भी पढ लिया है, वह हम समझा रहे हैं। हम कर क्या रहे हैं? और दूसरा हमे बर्दाश्त कर रहा है—सिर्फ इस आशा मे कि थोडी देर बाद जब हम चुप होगे तो वो भी अपना रेचन करेगा। हम बैठे रहते हैं तब तक, सुनते रहते हैं तब तक, जब तक हमे मौका न मिले। बस मौके की बात है। जब हम सुनते हैं, हम सुनते नही—क्योकि हम बोलने को तैयार है। दूसरा भी तुम्हे जब सुनता है, सुनता नही—वह भी बोलने को तैयार है। हम सब बोलने वाले हैं, सुनने वाला कोई है ही नही।

अगर तुम दो आदमियो की बाते बडे साक्षी-भाव से सुनो तो तुम हैरान होओगे, वो एकलाप है, वार्तालाप नही! वो एक-एक अपने-अपने से बोल रहा है। दोनो सिर्फ जुडे हुए मालूम पडते है। वह बहाना है। तुम कोई शब्द चुन लेते हो दूसरे की बातचीत से, उस शब्द की खूटी पे अपने को टाग देते हो और चल पडते हो। तुम्हारी गाडी किसी और तरफ जाती है। इसलिए तो दो व्यक्तियो के बीच विवाद आसान है, सवाद मुश्किल है। सवाद तो तभी हो सकता है, जब सुनना भी आता हो। हमे सिर्फ बोलना आता है। तो अगर हम परमात्मा के द्वार पर भी जाते है तो वहा भी बोलते है। वहा भी उसको हम बोलने का मौका नही देते।

वास्तविक प्रार्थना तब शुरू होती है जब तुम उसे बोलने का मौका दो। तुम्हारे बोलने की वहा जरूरत क्या है? तुम जो भी कहोगे, परमात्मा पहले से जानता है। तुम कृपा करके चुप हो जाओ। थोडा उसे बोलने दो।

लेकिन चुप होना हमे आता नही। चुप होना बहुत कठिन है। बीमार चित्त के साथ चुप होना एकदम कठिन है। स्वस्थ चित्त के साथ बोलना कठिन हो जाता है। क्योकि जब तुम शात हो जाते हो, तब कैसे बोलोगे? जब तुम शात हो जाते हो, तब एक-एक शब्द को बोलना कठिन हो जाता है।

सतो ने बोला है—करुणा के कारण, लेकिन बोलना बडी कठिनाई है। भीतर जो गहन शून्य मे खडे हो गये है, वहा एक शब्द बनाना भी मुश्किल है। फिर भी उनकी करुणा है कि वे शब्द बनाते है। उनकी करुणा है कि वे जानते हुए शब्द देते हैं कि शब्द से बहुत कुछ होगा नही। उनकी करुणा है वे तुम्हारे चेहरे को देखते है कि तुमने शब्द तो सुन लिया, अर्थ तुम्हारी समझ मे नही आया। फिर भी बोले जाते है इस आशा मे कि शायद सयोग बन जाये, निमित्त बन जाये और कोई जग जाये।

कबीर के ये वचन बहुत महत्त्वपूर्ण है 'मन मस्त हुआ तब क्यो बोले!'

जब मस्ती आ जायेगी, जब उस ज्ञान की मदिरा उतरेगी और जब तुम इतने आनदित हो जाओगे, जब 'मन मस्त हुआ तब क्यो बोले, तब बोलोगे कैसे! तब बोलना होगा ही क्या!

इसका यह अर्थ हुआ कि जब तक तुम मस्त नही हो तभी तक बोल रहे हो।

आदमी आनंदित होता है तो चुप होता है, दुखी होता है तो बोलता है। आदमी स्वस्थ होता है तो स्वास्थ्य की चर्चा नही करता, बीमार होता है तो बीमारी की बडी चर्चा करता है। जब तुम पूरे स्वस्थ होते हो, तब तुम शरीर की बात ही भूल जाते हो। तब शरीर की बात ही क्या करनी, शरीर का पता ही नही चलता।

च्वागत्सु कहता है जब जूता ठीक आ जाता है पैर पर तो पैर भूल जाता है। जब जूता काटता है, तब पैर की याद आती है। जब तुम्हारा सिर स्वस्थ होता है, तब तुम सिर को भूल जाते हो। सच तो यह है, तुम बे-सिर हो जाते हो। जब सिर मे दर्द होता है, तभी सिर का पता चलता है, बीमारी का बोध होता है।

इसलिए सस्कृत मे दुख के लिए जो शब्द है, वही शब्द ज्ञान के लिए है। 'वेदना' दुख का अर्थ भी रखता है और वेदना वेद का अर्थ भी रखता है—ज्ञान का। दुख का ही बोझ होता है। आनद तो, जैसे शराब हो—सब बोध खो जाता है। होश ही दुख का होता है। पैर मे काटा चुभता है तो पैर का पता चलता है, काटा न चुभे तो पैर का पता नही चलता। पीडा का बोध है, आनद का क्या बोध? आनद के साथ तो हम इतने एक हो जाते हैं कि बोध किसको होगा, किसका होगा! दुख के साथ फासला होता है।

इसलिए ज्ञानियो ने कहा है आनद तुम्हारा स्वभाव है, दुख तुम्हारा स्वभाव नही, क्योकि जिसके साथ हम एक नही हो पाते वो हमारा स्वभाव कैसे होगा? पैर मे काटा लगा होना अस्वाभाविक है, इसलिए दुखता है। जब पैर मे काटा नही है—यह स्वाभाविक है—सब दुख खो गया, पैर भी खो गया! जितने-जितने तुम स्वस्थ होते जाओगे, उतना-उतना कहने को क्या बचेगा? जब कोई परिपूर्ण स्वस्थ होता है—शरीर, मन, आत्मा, सब शात हो जाते हैं—तब कहने को कुछ भी नही बचता।

'मन मस्त हुआ तब क्यों बोलै।'

बोलना दुख के जगत का अग है। और इसलिए जब कोई आदमी विक्षिप्त हो जाता है, तो चौबीस घटे बोलता रहता है। सिर्फ विक्षिप्त बोलता है चौबीस घटे! रात मे भी बडबडाता है, दिन मे भी बोलता रहता है। एक छोर विक्षिप्त का है, जब वो चौबीस घटे बोलता है, दूसरा छोर विमुक्त का है, जब वो बिलकुल चुप हो जाता है। उसके घर मे कोई भी नही होता, सन्नाटा होता है। उसके घर मे कोई आवाज नही होती, कुछ कहने को नही होता, कोई शोर नही उठता, एक परम शून्यता की लयबद्धता होती है।

विक्षिप्त आदमी को देखो, पागल को ठीक-से अध्ययन करो, तो तुम अपने को भी पागल पाओगे। क्योकि तुम बोलो न बोलो, भीतर तुम्हारी बातचीत जारी रहती है।

सूफियो के पास एक विधि है, जो भीतर की बातचीत को रोकने के काम मे लग

जाती है। और सूफी कहते हैं कि जो इन्टरनल डायलाग है, वह जो भीतर बात चल रही है, वही बाधा है परमात्मा और तुम्हारे बीच। जैसे ही तुम वहा चुप हो गये, सब परदे गिर गये। वही घूघट है। और भीतर तुम चर्चा किये ही जाते हो। भीतर एक क्षण भी ऐसा नही आता, जब चर्चा बद होती हो। या तो तुम बाहर बात करते हो, अगर बाहर कोई न मिले तो भीतर बात करते हो, लेकिन बात जारी रहती है।

इसे थोडा होशपूर्वक जाचने की कोशिश करना। यह जो भीतर वार्तालाप चल रहा है, यही परदा है। और इसके तुम सजग, साक्षी हो जाना। देखना। एक दूरी निर्मित करना। तुम खुद नही कर रहे हो। यह वार्तालाप, यह तुम्हारा मन कर रहा है। तुम दूर हो के देख सकते हो। तुम एक साक्षी हो सकते हो। जब तुम देखने वाले बन जाओगे, तुम धीरे-धीरे पाओगे कि भीतर का वार्तालाप बद होने लगा। कभी-कभी बीच मे अतराल के क्षण आ जायेगे। कभी बादल हट जायेगे, खाली आकाश दिखाई पडेगा। उसी खाली आकाश मे पहली समाधि का अनुभव होगा।

तुम बादल नही हो, तुम शून्य आकाश हो। बादल आते हैं, चले जाते है—शून्य आकाश सदा वही है। बादल तुम्हारा स्वभाव नही है, शून्य आकाश तुम्हारा स्वभाव है। जो सदा रहता है, जो कभी नही बदलता, वही स्वभाव है। शब्द तुम्हारा स्वभाव नही, शून्यता तुम्हारा स्वभाव है। शब्द तो आते है, बादलो की तरह चले जाते हैं, उठते हैं लहरो की तरह, खो जाते है। तुम शब्द नही हो। लेकिन तुम चौबीस घटे शब्दो मे खोये हुए हो। जैसे हम किसी आदमी को आकाश देखने भेजे और वो बादलो की खबर ले के आ जाये—ऐसे ही जब भी तुम भीतर जाते हो, शब्दो को ले के बाहर आ जाते हो। आकाश तक पहुच ही नही पाते।

तुम्हारी जब तक आकाश की तरफ पहुच न हो, तब तक गगन-गुफा कैसे खुलेगी? तब तक कैसे झरेगा अजर अमृत? तब तक कैसे डूबोगे तुम रसधार मे? और जब कोई उस रसधार मे डूब जाता है तो कबीर ठीक ही कहते है 'मन मस्त हुआ तब क्यो बोले।' जब आनद आ गया, तो चुप्पी सध जाती है।

इसलिए सतो को बडी कठिनाई है बोलने की। श्रम से बोलते हैं। तुम श्रम मे अपने को चुप रखते हो। अगर तुमसे कहा जाये कि कोई मर गया और दो क्षण शाति रखो, तो दो क्षण ऐसे लगते है जैसे दो वर्ष। बडे लबे मालूम पडते हैं। लगता है, कोई भूल-चूक कर रहा है 'बद करो! दो क्षण हो गये होगे कब के। और ऊपर से तुम चुप भी हो जाते हो। भीतर तो सब चलता ही रहता है, भीतर जरा भी चुप्पी नही होगी।

दो क्षण तुम चुप नही रह सकते। कैसी तुम्हारी योग्यता! कैसी तुम्हारी समझ! काहे की कुसलात! और दो क्षण तुम चुप नही रह सकते तो तुम जान लेना कि तुम विक्षिप्त हो। तुम करीब-करीब पागल हो।

पागल और तुममे जो फर्क है वह मात्रा का है। तुम अभी अपने पागलपन को भीतर दबाये हो, वो कभी भी फूट सकता है। वो तैयार हो रहा है। वो मवाद की तरह भीतर इकट्ठा हो रहा है, कभी भी मुह मिल जायेगा, घाव हो जायेगा और वो फूट पडेगा। डिग्रीज के फर्क हैं। कोई नब्बे डिग्री का पागल है, कोई पच्चानबे डिग्री का, कोई सौ डिग्री का। सौ डिग्री पे विस्फोट हो जाता है। तब लोग तुम्हे पागलखाने पहुचा आते हैं।

लेकिन तुम दस मिनट अपने घर के कोने में बैठ कर मन मे जो भी चलता हो, उसे एक कागज पे लिख लेना। तो तुम जो भी पाओगे, तुम अपने मित्र को—निकटतम मित्र को भी बताने को राजी न होओगे। क्योकि वो बिलकुल पागलपन मालूम पडेगा। जो तुम्हारे मन मे चलता है, उसे लिखना कागज पर और बेईमानी मत करना—जो चलता हो, वही लिखना। तुम बडे हैरान होओगे मन कैसी छलागें लगा रहा है!

रास्ते से गुजरते हो, कुत्ता दिखाई पडता है। कुत्ता दिखाई पडा कि यात्रा शुरू हो गई। मित्र का कुत्ता याद आ गया। मित्र के कुत्ते की वजह से मित्र याद आ गया। मित्र की वजह से मित्र की पत्नी याद आ गई। और चल पडे तुम! अब इस कुत्ते मे उसका कोई लेना-देना नही। पर भीतर की यात्रा शुरू हो गई, अतरग वार्तालाप, इन्टरनल डॉयलाग चल पडा।

अगर तुम किसी से कहोगे कि कुत्ते को देख कर यह सब हुआ । यह भी हो सकता है कि मित्र की पत्नी के प्रेम मे पड गये, शादी हो गई, बाल-बच्चे हो गये। उनका तुम विवाह कर रहे हो!

तुमने शेखचिल्लियों की कहानिया पढी हैं? वो तुम्हारी ही कहानिया है। मन शेखचिल्ली है। यह मत समझना कि वो बच्चो को बहलाने के लिए लिखी गई कहानिया हैं, यह तुम चौबीस घटे कर रहे हो। यही तन्द्रा है, यही नीद है—जिसको कबीर कहते है 'सतो जागत नीद न कीजै।'

जागे तुम ऊपर-ऊपर से लग रहे हो, भीतर बडे सपने चल रहे हैं। पर्त-दर-पर्त सपनो की तुम्हें घेरे हुए है। पर्त-दर-पर्त बादलो की आकाश को घेरे हुए है। और यह पर्त-दर-पर्त जो पागलपन है, इसे तुम दूसरे पे उलीचते रहते हो, इसे तुम दूसरो पे फेंकते रहते हो। वही तुम्हारा वार्तालाप है।

'मन मस्त हुआ तब क्यो बोले।' लेकिन जब तुम मस्त हो जाओगे, नील गगन हो जाओगे, खुलेगी गगन की गुफा और बरसेगी अजर धार—तब तुम क्यो बोलोगे! तब तुम चुप हो जाओगे।

फिर भी जो चुप हो गये हैं, वे बोले हैं। उनके बोलने और तुम्हारे बोलने मे बुनियादी फर्क है—गुणात्मक फर्क है, क्वालिटेटिव फर्क है। वे बोलते है इसलिए कि उन्होने कुछ जाना है। तुम बोलते हो इसलिए कि तुम विक्षिप्त हो। वे बोलते

है इसलिए कि बोलने से वे कुछ देना चाहते हैं। तुम बोलते हो इसलिए कि तुम बोलने से कुछ रेचन करना चाहते हो।

तुम्हारा बोलना दूसरे के लिए अहितकर है, क्योंकि तुम बीमारी फेंक रहे हो। बोलना दूसरे के लिए परम कल्याण है, क्योंकि वे अपना आनद बाट रहे हैं। उनके शब्द-शब्द मे भीतर की झनकार होगी। उनके शब्द-शब्द मे भीतर का रस थोडा-सा भरा आ जायेगा। उनके शब्द-शब्द मे थोडी-सी सुगध साथ चली आयेगी। तुमने अगर फूल भी हाथ मे रखे तो हाथो मे सुगध आ जाती है। तुम अगर बगीचे से गुजर भी गये तो फूलो की गध तुम्हारे वस्त्रो मे आ जाती है।

सत के शून्य से जब कोई शब्द गुजरता है तो थोडी-सी शून्यता, थोडी-सी ताजगी उस भीतर के ससार की ले आता है। इसलिए सतो को समझने के लिए बस सुनना काफी है, विचारना जरूरी नही है।

नानक निरतर कहते हैं कि तीन चीजे है महत्त्वपूर्ण। एक है परमात्मा, जिसका हमे कोई पता नही। उस तक पहुचने के लिए द्वार है गुरु। लेकिन गुरु का भी तो हमे कोई पता नही कौन गुरु? उस तक पहुचने का द्वार है साधु-सगत—साधुओ का सग-साथ। जहा भले लोग हो, जहा भली बात होती हो, जहा उस ससार की कुछ चर्चा चलती हो—साधु-सगत—वहा बैठ के सुनना। उसी सुनते-सुनते साधु-सगत मे गुरु मिल जायेगा। और गुरु मिल गया तो तुम मार्ग पर आ गये। साधु-सगत से मिलेगा गुरु, गुरु से मिलेगा परमात्मा।

बडा मूल्य है—जहा भली बात चलती हो, वहा बैठ के सुन लेने का भी बडा मूल्य है।

और समझोगे कैसे तुम सतो को? समझ तो तभी होती है जब तुम भी उसी अवस्था मे पहुचोगे। रस ले सकते हो। उनकी वाणी को अपने भीतर प्रवेश हो जाने दे सकते हो। तुम ग्राहक-भाव रख सकते हो—खुला मन—ताकि उनके शब्द तुम्हारे भीतर चले जाए। शायद उनके शब्द जिस अज्ञात लोक से आ रहे हैं, उसकी थोडी-सी चोट तुम्हारे भीतर जगे।

सतो के पास अगर तुम मस्ती सीख लो, तो तुमने सब सीख लिया।

'मन मस्त हुआ तब क्यो बोले।
हीरा पायो गाठ गठियायो, बार-बार बाको क्यो खोले।'

हीरा मिल गया, गाठ मे बाध लिया, अब बार-बार उसको क्या खोलना?

तुम खोलते हो। अगर रास्ते पे तुम्हे हीरा मिल जाये, तुम गाठ तो गठियाओगे, लेकिन बार-बार खोल के देखोगे। क्यो? तुम्हे सदेह है, तुम्हे पक्का भरोसा नही है कि हीरा मिल सकता है, कि यह हीरा है, और मुझे मिल गया! तुम्हे अपने पे भी भरोसा नही है, तुम्हे हीरे पे भी भरोसा नही है। तुम सदेहग्रस्त हो, इसलिए बार-बार खोल के देखते हो।

जहा श्रद्धा है वहा सदेह कैसा? जहा श्रद्धा है, वहा हीरा मिला, गाठ गंठाया—बाको बार-बार क्यो खोले?

तो जब बुद्ध, कबीर, नानक उपलब्ध हो जाते हैं मिल गया हीरा, उसको गाठ गठिया लिया, अब उसको बार-बार क्या खोलना है वे उसकी चर्चा भी नही करते। वे उस सबध मे तो चुप ही रहते है, जो उन्होने पा लिया है। अगर वे चर्चा भी करते हैं तो चर्चा परोक्ष है।

ऐसा हुआ, एक सूफी फकीर बायजीद के पास एक औरत को लाया गया। वो बहुत मोटी थी। उसके पति ने कहा कि इससे बच्चे पैदा नही होते, आपकी कृपा हो जाये! बायजीद बोले, 'बच्चे! कृपा! तुम पागल हुए हो? चालीस दिन मे यह मरने वाली है। यह औरत बचेगी नही। साफ देख रहा हू इसकी माथे की रेखा। इसके लिए हम क्या करे? कुछ भी नही किया जा सकता।'

पति-पत्नी उदास लौटे। चालीस दिन बाद मौत! पत्नी खाट से लग गई, खाना-पीना बद हो गया। लेकिन चालीस दिन आये और गुजर गये, और वो नही मरी। फिर बायजीद के पास जाना पडा कि अच्छी मुसीबत खडी कर दी। चालीस दिन मौत मे गुजरे, रोते गुजरे और यह पत्नी तो जिंदा है!

बाजजीद ने कहा, 'अब जाओ, इसको बच्चा हो सकेगा, सिर्फ इसका मोटापा कम करना था। वो मौत की बात तो दवा थी!

यह इनडायरेक्ट, परोक्ष हुआ। वह स्त्री मानने वाली नही थी—अगर इससे कहा जाए कि तू मोटापा कम कर। यह सीधी बात नही हो सकती थी। मोटापा कम करने को तो बहुत वैद्य कह चुके थे, बहुत चिकित्सक कह चुके थे। फकीरो के पास तो कोई आता ही तब है जब सब चिकित्सक और वैद्य चुक जाते है, तभी तो कोई आशीर्वाद के लिए आता है। वो आखिरी उपाय है।

तो बायजीद ने देखा कि बात तो साफ है, इतनी मोटी स्त्री को बच्चे नही हो सकते। और मोटापा यह कम करेगी नही। मौत की बात तो झूठ थी। लेकिन हम इतने झूठे है कि झूठ ही हम पर काम करता है।

तो सत हीरे की बात नही करते। वो तो कुछ और ही बात करते है जिससे हीरे के प्रति रस लग जाये। हीरा तो तुम्हे दे भी दे तो तुम पहचान न सकोगे, क्योकि पहचान के लिए अनुभव चाहिए।

ऐसा हुआ, सूफी फकीर हुआ झुन्नून। एक आदमी उसके पास आया और उसने झुन्नून को कहा कि यह सब बकवास है। मैं कई सूफियो के पास गया, यह सब बातचीत है, कुछ सार नही पाया। वो फला सूफी है, धोखेबाज है। और फला सूफी है, उसके आचरण का कोई भरोसा नही। और एक सूफी है, वो बातचीत तो ऊची करता है लेकिन अनुभव उसे बिलकुल नही हुआ।

झुन्नून ने कहा, बात पीछे करेगे, जरा मुझे जरूरत है एक काम की, तुम थोडा-सा

सा काम कर दो। यह एक पत्थर मेरे पास है, तुम चले जाओ बाज़ार में, सोने और चादी की दुकानो पर, अगर कोई इसे एक सोने के सिक्के मे खरीद ले तो तुम बेच आओ।

वो आदमी गया। बाजार पास ही था। सोने-चादी की दुकानो पे गया, कोई उसे एक सोने के सिक्के मे लेने को राजी नही था। ज्यादा-से-ज्यादा एक चादी का सिक्का कोई देने को राजी हुआ था—वो भी बडे पशोपेश मे! वो लौट आया। उसने कहा कि यह पत्थर बिलकुल बेकार है! सोने की बात तो छोडो, उस वहम मे मत रहो, चादी का एक सिक्का मिलता है। और वो भी आदमी सदिग्ध है, वो भी पक्का नही है कि ले या न ले। क्या करना है?

झुन्नून ने कहा कि अब तुम जौहरी की दुकान पे चले जाओ। और बेचना मत पत्थर को, सिर्फ दाम पूछ के आना। वो गया। जौहरी एक हजार सोने के सिक्के देने को तैयार था। जब वो बेचने को राजी न हुआ तो वह दस हजार सोने के सिक्के देने को तैयार हो गया। तब भी वह बेचने को राजी न हुआ तो जौहरी ने कहा, 'तुम कितने चाहते हो, तुम बोलो? लेकिन पत्थर वापिस न ले जाने देंगे!' उसने कहा, 'बेचने को कहा ही नही उसने, जिसका यह पत्थर है, सिर्फ दाम पूछने को कहा है।

वापिस लौट कर आया। कहने लगा, 'हद हो गई! अच्छा हुआ कि मैं बेच नही आया, नही तो एक चादी का सिक्का मिलता! दस हजार तो वो देने को तैयार है और पूछना है, तुम बोलो!'

फकीर ने कहा, पत्थर बेचना नही है, सिर्फ तुम्हे इसलिए भेजा था कि तुम पता लगा लो। हीरे की पहचान के लिए जौहरी होना जरूरी है। तुम जौहरी हो कि सूफी की पहचान कर सको?'

चादी-सोने के दुकानदार को हीरे की क्या पहचान! फिर भी थोडा-बहुत खयाल होगा कि पत्थर रगीन है, थोडा बहुत चमकदार है, तो चलो खरीद लो, शायद किसी काम आ जाये। और कही तुम शाक-सब्जी की दुकान पे चले जाओ इसे बेचने, तो वो कहेगा दो पैसे मे दे जाओ, शाक-सब्जी तौलने के काम आ जायेगा।

उसने कहा, 'पत्थर वापिस रख दो, जौहरी चाहिए हीरे की पहचान के लिए।'

कौन पहचानेगा सूफी को? कौन पहचानेगा सत को, साधु को? हीरा तुम्हे दिया नही जा सकता। तुम पहचानोगे नही, तुम कही गवा दोगे—या बच्चो को खेलने को दे दोगे।

आज जो कोहिनूर है, वो गोलकोडा मे एक गरीब आदमी के घर मे बच्चो का खिलौना था, उसको खेत मे मिल गया था, और बच्चे उससे खेलते थे!

हीरे की पहचान जौहरी को ज्ञान की पहचान ज्ञानी को। हीरा तो तुम्हे दिया नही जा सकता। दे भी दे तो तुम उसका दुरुपयोग करोगे। इसलिए कबीर कहते हैं

'हीरा पायो गाठ गठियायो, बार बार बाको क्यो खोले।'

और खुद को तो कोई सदेह नही है, क्योकि वह जो अनुभूति है, असदिग्ध है।

लोग मुझसे पूछते हैं, लोग सदा से पूछते रहे हैं कि यह कैसे पक्का पता चलेगा कि ध्यान लग गया? यह कैसे पक्का पता चलेगा कि परमात्मा मिल गया? यह कैसे पक्का पता चलेगा कि यह समाधि है? मैं उनसे कहता हू कि तुम्हारी खोपडी मे कोई लट्ठ मार दे, तब तुम्हे कैसे पता चलता है कि दर्द हो रहा है? उसको तुम किसी और से पूछने जाते हो कि क्यो भाई, मुझे दर्द हो रहा है कि नही?

जब तुम्हे दर्द का अनुभव हो सकता है तो तुम्हे आनन्द का अनुभव न होगा? जब तुम पीडा को पहचान लेते हो तो तुम आनन्द को पहचानने की खबर दे दिए। क्योकि पीडा उसी का तो अभाव है। जब तुम्हे बीमारी का पता चल जाता है तो स्वास्थ्य का भी पता चल ही जायेगा। जब नरक को तुम पहचान लेते हो तो स्वर्ग को भी पहचान लोगे। यह पूछना न पडेगा कि जो मुझे मिला है, वो मिला है या नही?

नही, जब हीरा मिलता है—'हीरा पायो, गाठ गठियायो, बार बार बाको क्यो खोले'—सदेह तो कुछ होता नही। वह अनुभव असदिग्ध है।

परमात्मा का अनुभव सदेहातीत है। जब होता है, बस हो गया। फिर सारी दुनिया कहे कि नही हुआ तो भी कोई सवाल नही। सारी दुनिया सिद्ध कर दे कि नही हुआ तो भी कोई सवाल नही। सारी दुनिया कहे कि ईश्वर नही है, तो भी कुछ फर्क नही पडता। जब तुम्हे अनुभव हो गया—बस वही प्रमाण है।

परमात्मा का अनुभव सेल्फ-एविडेंट है, स्व-प्रमाण है। उसके लिए किसी और प्रमाण की जरूरत नही है। वो खुद ही अपना प्रमाण है। हो गया हो गया। लेकिन जब तक नही हुआ है, तब तक बडी मुश्किल है। कोई दूसरा अपना अनुभव तुम्हारे हाथ मे रख दे, तुम न पहचान सकोगे। क्योकि पहचान तो केवल अपने ही अनुभव की होगी, दूसरे के अनुभव की नही होगी। इसलिए कबीर लाख सिर पटके, तुम्हे भरोसा न आयेगा। भरोसा तो तभी आयेगा जब तुम्हे घटना घट जायेगी।

और तब 'हीरा पायो गाठ गठियायो, बारबार बाको क्यो खोले।'

'हलकी थी तो चढी तराजू, पूरी भई तब क्यो तोले।'

तराजू का पलडा जब तक हल्का रहता है, तब तक ऊपर रहता है। जैसे-जैसे भारी होने लगता है, नीचे उतरने लगता है। और जब पूरा ही भर जाता है तो जमीन से लग जाता है, फिर तौलना बद हो जाता है।

'हलकी थी तब चढी तराजू, पूरी भई तब क्यो तोले।'

फिर तौलना ही बद हो जाता है।

अभी तुम्हारी जिदगी मे तौलना-ही-तौलना चलता है। तौलने का अर्थ है तुलना, कम्पेरिजन। तुम अभी जब भी कुछ सोचते हो, हमेशा तुलना मे सोचते हो।

एक सौन्दर्य की प्रतियोगिता थी। देश की बीस सुदरिया इकट्ठी थी। उनमे से

चुनाव होना था कि कौन पूरे देश की प्रथम सुन्दरी होगी। निर्णायकों ने मुल्ला नसरुद्दीन को भी निमन्त्रित कर लिया था। बूढ़ा और अनुभवी आदमी था। जिंदगी के बहुत उतार-चढ़ाव देखे थे। बहुत स्त्रियों के संबंध, विवाह, तलाक—सब देखा हुआ था। पहली युवती आई, उसने कहा—फू! दूसरी आई, तीसरी आई, वह फू-फू कहता रहा। एक-से-एक सुन्दर स्त्रियां थीं, तय करना मुश्किल था कि कौन किससे ज्यादा है। जिन्होंने उसे बुलाया था, वे थोड़े संदिग्ध हुए। बीसवीं युवती आई, तब भी उसने कहा—फू! तो मित्रों ने पूछा कि 'नसरुद्दीन! कोई भी स्त्री पसंद नहीं आती? तुम फू-फू किये जाते हो!'

उसने कहा, इन स्त्रियों को नहीं कह रहा हूं, अपनी औरत को कह रहा हूं!

वो तुलना कर रहे हैं!

तुम्हारी जिंदगी तुलना से भरी है।

तुम अमीर हो सच में तुम अमीर हो? तुम अमीर हो नहीं सकते। हां, किसी गरीब की तुलना में अमीर हो, किसी अमीर की तुलना में गरीब हो।

तो अमीर-से-अमीर भी गरीब बना रहता है, क्योंकि कोई और है जो ज्यादा अमीर है। तुलना से छुटकारा नहीं हो सकता। तुम दस को पीछे छोड़ आये हो, लेकिन दस तुम्हारे सदा आगे हैं।

तुम सुन्दर हो? हां, किसी की तुलना में होओगे। लेकिन तुम कुरूप भी हो, क्योंकि किसी और की तुलना चल रही है।

तुम स्वस्थ हो? समझदार हो?

हर वक्त तुलना चल रही है। जब तुम कहते हो कि मैं स्वस्थ हूं, तब भी तुलना, जब तुम कहते हो कि सुन्दर हूं, तब भी तुलना।

तुलना के साथ तुम कभी शान्त न हो सकोगे, क्योंकि कोई-न-कोई आगे बना ही रहेगा। ऐसा असम्भव है। और जीवन इतना जटिल है कि हो सकता है एक चीज में तुम सबसे ज्यादा आगे पहुंच जाओ—तुम सबसे ज्यादा धन इकट्ठा कर लो,

हैदराबाद के निजाम के पास सबसे ज्यादा धन था दुनिया में। गोलकुंडा के इतने हीरे-जवाहरात इकट्ठे कर लिए थे कि उनसे बड़ा धनी आदमी दूसरा नहीं था। वर्ष में एक बार जब वो अपने सब हीरे-जवाहरातों को रोशनी दिखाने के लिए निकालते थे, तो सात छतों की जरूरत पड़ती थी उनको फैलाने के लिए। चोटी पर थे। लेकिन जब रात सोते थे, तो एक पैर एक बड़ी मटकी में—जिसमें नमक भरा हो—उसमें डाल के और बांध के सोते थे। क्योंकि भूत से उन्हें बहुत डर लगता था। और यह भूत से बचने की तरकीब थी नमक पास हो तो भूत हमला नहीं करता। इस भय के कारण, इस भूत के भय कारण वे कमजोर-से-कम-जोर, गरीब-से गरीब नौकर से भी दीन थे। नौकर भी उन पे हंसते थे कि 'यह क्या मालिक, आप और ऐसे भयभीत! हम नहीं डरते, कहां का भूत! यह क्यों इतनी

बडी कुंडी बांध कर सोते हैं?' लेकिन पूरी जिंदगी ही वे कुंडी बाध कर सोते रहे। उस भूत के भय के कारण जीवन उनका बडा दुखी था, क्योकि चौबीस घटे एक ही चिंता थी और वे मन-ही-मन मे कई बार कहते भी थे कि गरीब-से-गरीब आदमी होना मैं पसद करता, मगर निर्भय। दुनिया का सबसे बडा अमीर हो के भी क्या सार है ऐसा भयभीत हू! फकीर, नगे भिखारी को देख के भी वे ईर्ष्या से भर जाते थे कि कैसे निर्भय चला जा रहा है, कही भी सो जाता है, कोई चिंता नही, कोई डर नही!

. क्या करोगे? हैदराबाद के निजाम के पास पाच सौ स्त्रिया थी, इस जमाने मे। तुमने कृष्ण का सुना है कि सोलह हजार स्त्रिया थी। सदेह मत करना, क्योकि बीसवी सदी मे जब पाच सौ हो सकती हैं तो सोलह हजार कोई ज्यादा नही है—सिर्फ बत्तीस गुनी। हो सकती हैं।

पाच सौ स्त्रिया थी, लेकिन यह आदमी सदा दीन-हीन था। धन था, लेकिन यह आदमी दरिद्र से ईर्ष्या करता था। मौत का भय इतना ज्यादा था कि जीना ही असभव था।

अमेरिका का बहुत बडा करोडपति था, एन्ड्रु कार्नेगी। जब वो मरा तो उसके सेक्रेटरी ने उससे पूछा कि आप अपार सपदा के मालिक हैं, (दस अरब रुपये वो कैश, बैंक मे छोड के गया।)आप प्रसन्न तो मर रहे हैं? प्रसन्न तो छोड रहे है इस जगत को?

उसने कहा, 'कैसी प्रसन्नता? मुझसे असफल आदमी खोजना कठिन है, क्योकि मेरे इरादे सौ अरब रुपये इकट्ठे करने के थे और दस अरब ही कर पाया। हारा हुआ आदमी हू।'

उसने दस अरब इस तरह कहे, जैसे कोई कहे दस पैसे। लेकिन उसके लिए वे दस पैसे ही थे। क्योकि जिसके इरादे सौ के रहे हो, दस ही उपलब्ध कर पाये, वो हारा हुआ ही है—नब्बे से हारा हुआ।

तो वो दुखी ही मर रहा है। और उसके सेक्रेटरी ने उसकी जीवन-कथा लिखी है।' तो उसमे लिखा है कि अगर मुझे कोई कहता कि बदल लो जगह एन्ड्रु कार्नेगी से, तो मैं न बदलता। वो अगर सेक्रेटरी बनना चाहता और मैं मालिक, तो मैं न बनता। क्योकि उसका सेक्रेटरी हो के जितना मैं प्रसन्न था, उतना वह मालिक होके नही था।

उसने लिखा है कि दफ्तर का चपरासी दस बजे आये, क्लर्क साढे दस बजे आये। मैनेजर्स बारह बजे आयें। मैनेजर्स तीन बजे चले जायें, क्लर्क साढे चार बजे छुट्टी पा ले, चपरासी पाच बजे चला जाये। लेकिन एन्ड्रु कार्नेगी सुबह सात बजे से जुट जाए दफ्तर मे, रात बारह बजे तक।

कहानियां प्रचलित हैं कि एन्ड्रु कार्नेगी अपने बच्चो को नही पहचान पाता था,

क्योंकि फुर्सत ही कहा थी! सात बजे सुबह से बारह बजे रात तक जो जुटा हो, वो क्या बच्चो को पहचानेगा! उनके साथ कभी खेला नही, कभी दो बात नही की, कभी बैठा नही।

तुम धन पा लो तो और हजार चीजे है। तुम पद पा लो तो भी हजार चीजे है। तुम कुछ भी पा लो, तुम तृप्त न हो सकोगे—जब तक तुलना है, जब तक तराजू तौलता है। जिस दिन तुम कपेरिजन छोड दोगे, उसी दिन तुम मुक्त हो जाओगे। जिस दिन तुम यह खयाल ही छोड दोगे कि दूसरे से तौलना है स्वय को, उसी दिन दुख खो जायेगा। उस दिन तुम पाओगे कि तुम, तुम हो, दूसरे दूसरे है बात खत्म हो गई।

एक झेन फकीर से किसी ने पूछा कि 'तुम्हारे जीवन मे इतना आनद क्यो है? मेरे जीवन मे क्यो नही?' उस फकीर ने कहा 'मै अपने होने से राजी हू और तुम अपने होने से राजी नही हो। फिर भी उसने कहा, 'कुछ तरकीब बताओ।' फकीर ने कहा, 'तरकीब मै कोई नही जानता। बाहर आओ मेरे साथ। यह झाड छोटा है, वह झाड बडा है। मैंने कभी इन दोनो को परेशान नही देखा कि मैं छोटा हू, तुम बडे हो। कोई विवाद नही सुना। तीस साल मैं यहा रहता हू। छोटा अपने छोटे होने मे खुश है, बडा अपने बडे होने मे खुश है, क्योकि तुलना प्रविष्ट नही हुई। अभी उन्होने तौला नही है।'

घास का एक पत्ता भी उसी आनद से डोलता है हवा मे, जिस आनद से कोई देवदार का बडा वृक्ष डोलता है। कोई भेद नही है। घास का फूल भी उसी आनद से खिलता है, जिस आनद से गुलाब का फूल खिलता है। कोई भेद नही है।

तुम्हारे लिए भेद है। तुम कहोगे यह घास का फूल है, और यह गुलाब का फूल। लेकिन घास और गुलाब के फूल के लिए कोई तुलना नही, वे दोनो अपने आनद मे मग्न है। जो तुलना छोड देता है, वो मग्न हो जाता है। जो मग्न हो जाता है, उसकी तुलना छूट जाती है।

तो कबीर कह रहे है, 'हलकी थी तब चढी तराजू, पूरी भई तब क्यो तोले।

और अब जब पूरा आनन्द बरस गया है, गगन-गुफा मे अमृत की धार बह रही है, तो अब क्या तौलना!

इससे उलटा भी सही है तुम तौलना बन्द कर दो तो गगन की गुफा का द्वार खुल जायेगा। तुम तौलना बन्द कर दो तो तुम अभी आनदित हो जाओगे, या आनदित हो जाओ तो तौल बन्द हो जायेगी दोनो एक ही सिक्के के दो पहलू है, कही से भी शुरू करो।

कबीर ठीक ही कह रहे है, सिद्ध की दशा कि जब तक हलकी थी तराजू, तब तक तौलती रही है—और अब जब पूरी हो गई है तो अब क्या तौले!

तुम्हारी दशा तो सिद्ध की नही है—साधक की है। तुम कहां से शुरू

करोगे ? तुम तौलना छोडो। जैसे-जैसे तुम तौलना छोडोगे, मैं तुमसे कहता हू तराजू भारी होती जायेगी। किसने तुमसे कहा कि तुम किसी से तौलो ? तुम अकेले हो, तुम जैसा कोई दूसरा नही। न तुम जैसी बुद्धि है, न तुम जैसा चेहरा है, न तुम जैसी आखे हैं, तुम्हारे-जैसे हाथ नही, तुम्हारे अगूठे का निशान बस तुम्हारा ही है।

सारी दुनिया मे आज चार अरब आदमी हैं, चार अरब आदमियो मे एक के भी अगूठे का निशान तुम जैसा नही है। आज तक जमीन पर अरबो-खरबो लोग हो गये हैं, उन सबको कब्रो से उखाड लो, उनका एक का भी अगूठे का निशान तुम जैसा नही। भविष्य मे अरबो-खरबो लोग होंगे, उनमे से एक भी ऐसा नही होगा जिसका अगूठे का निशान तुम जैसा हो। तुम बिलकुल अद्वितीय हो, तौल कैसी ? तुम मुर्गे से तो नही तौलते कि देखो इसके सिर पर कैसी सुन्दर कलगी और हमारे सिर पर नही है, और दुखी हो के बैठ जाते। तुम वृक्ष से तो नही तौलते कि देखो यह सौ फीट आकाश मे उठ गया और हम केवल छह फीट—गये काम से ! जब तुम वृक्ष से नही तौलते, मुर्गे से नही तौलते, तो पडोसी से क्यो तौल रहे हो ? किसी मे क्यो तौल रहे हो ?

तौलोगे तो दुखी रहोगे, क्योकि तुम तौलते ही जाओगे। कोई-न-कोई भिन्न रहेगा, कोई-न-कोई ज्यादा रहेगा, कोई-न-काई । हजार तरह के फर्क रहेगे और तुम दुख मे घने गिरते जाओगे। तौल बन्द कर दो, तराजू पूरी हो जायेगी। यह साधक के लिए कह रहा हू।

सिद्ध की बात कबीर ठीक कह रहे है -'हलकी थी तब चढी तराजू, पूरी भई तब क्यो तौले।' स्मरण रखना कि जो सिद्ध के लिए सही है, ठीक उससे विपरीत तुम शुरू करना, क्योकि यह तो अन्तिम दशा का वर्णन है, तुम जहा खडे हो वहा का वर्णन नही है। वहा तो तुम्हारी तराजू तौले चली जाती है। और तब तुम व्यर्थ ही दुखी बने हो।

दुख अस्तित्व मे नही है, तुम्हारे तौलने वाले मस्तिष्क मे है।

'सुरत कलारी भई मतवारी, मदवा पी गई बिन तोले।

यह आखिरी बात कबीर कह रहे है। इसे गहरे उतर जाने देना।

'सुरत कलारी भई मतवारी, मदवा पी गई बिन तोले।'

'कलारी' है शराब की दुकान का नाम—मधुशाला। सारे पीने वाले—सुरत कलारी—जितने पियक्कड इकट्ठे हो गये थे 'सुरत कलारी भई मतवारी, मदवा पी गई बिन तोले।' और बिना तौले मधुशाला को पी गये ! बिना तौले ! तब सारे पियक्कड मस्त हो गये !

तौल-तौल के क्यो पी रहे हो ? आनद को इच-इच क्यो प्रवेश करने देते हो ? आनद से इतने भयभीत क्यो हो ? उसे पूरा क्यो नही उतरने देते ? पूरा आकाश तुम्हारा है। पूरा परमात्मा तुम्हारा है। तौलने की जरूरत क्या है ? यह कोई

दुकान है ? यहा तुम कुछ खरीदने तो नही आये। अस्तित्व पूरा खुला है, तुम किस-लिए भयभीत हो ? तुम बिना तौले पी जाओ !

इसे थोडा समझे।

आदमी दुख से इतना भयभीत नही होता जितना आनद से भयभीत होता है, क्योकि दुख का तो इलाज है, आनद का तो कोई इलाज नही, और दुख से तो बचने के लिए औषधिया है, आनद से बचने के लिए कोई औषधि नही। आनद से आदमी भयभीत होता है, क्योकि आनद इतना बडा है कि तुम उसके नीचे खो जाओगे, तुम बच न सकोगे। दुख के ऊपर तुम बैठे रह सकते हो। दुख की गठरी पे तुम बैठते हो, आनद की गठरी तुम्हारे ऊपर बैठेगी। आनद इतना विराट है !

दुख से तुम इतने भयभीत नही होते, जितने तुम आनद से भयभीत होते हो—इस तथ्य को विश्लिष्ट करके समझ लो।

बचपन से ही तुम्हे आनद से भय सिखाया गया है। अगर बच्चा नाच रहा है अकारण, तो मा-बाप कहेगे—'क्या बात है ? हसने की क्या जरूरत ?' अगर बच्चा कूद रहा है, प्रफुल्लित हो रहा है—और बच्चे अकारण होते है प्रफुल्लित। कारण का जगत अभी खुला नही है। अभी बुद्धि के द्वार बन्द है।

छोटी-छोटी चीजे अकारण ! एक तितली जा रही है, और बच्चा प्रसन्न हो गया, और भागने लगा तितली के पीछे। एक लाल पत्थर मिल गया, उसे उठा लाया, और समझा कि हीरा मिल गया और प्रसन्न है। कभी कुछ भी नही मिलता, बैठा है और प्रसन्न हो रहा है।

एक घर मे मैं मेहमान था। दो छोटे बच्चे, जिनकी उम्र करीब-करीब छह साल की रही होगी—एक लडका और एक लडकी, और एक और छोटा बच्चा, जिसकी उम्र मुश्किल से तीन, साढे तीन साल रही होगी—वे तीनो खेल रहे थे। घर के लोग बाहर गये थे, मै अकेला था। मैंने देखा कि बच्चे एक कमरे मे है—एक लडकी और एक लडका—और सबसे छोटा बच्चा बाहर सीढियो के पास बैठा बडा प्रसन्न हो रहा है, गदगद हो रहा है। कुछ कारण नही दिखाई पडता। वो खेल मे भागी-दार भी नही है, जो खेल चल रहा है।

तो मैं उसके पास गया और मैने पूछा, 'क्या मामला है, तुम खेल नही रहे हो ?'

उसने कहा, 'मै खेल रहा हू।'

'तू यहा बाहर बैठा हुआ है सीढियो पर ! खेल तो वहा भीतर चल रहा है ?'

उसने कहा, 'वह खेल है—उसमे लडका डैडी बना है, लडकी मम्मी बनी है, और मै होने वाला बच्चा हू ! अभी मैं पैदा नही हुआ !'

अभी वो पैदा भी नही हुए हैं और गदगद हो रहे है ! और तुम्हे पैदा हुए कितने साल हो गये, तुम अब तक गदगद नही हुए हो। कब होओगे ? क्या मरने की राह देख रहे हो ?

वह बडा प्रसन्न हो रहा है, क्योंकि जल्दी वक्त आ रहा है।

बच्चे अकारण प्रसन्न होते हैं, और हम उनकी प्रसन्नता को तोडते है, हम उन्हे गभीर बनाना चाहते है। गभीरता रोग है। लेकिन बाप पढ रहा है, या हिसाब लगा रहा है, या नोट गिन रहा है---वो समझता है, बहुत भारी काम कर रहा है। वो बच्चे से कहता है--'चुप रहो, मुझे गिनती भूल जाती है।'

तुम नोट गिन रहे हो---जिससे ज्यादा व्यर्थ काम दुनिया मे खोजना मुश्किल है, जिसको गिन-गिन के तुम कही न पहुचोगे---और बच्चे से कहते हो, 'चुप रहो!' और बच्चा आनन्द गिन रहा था, वह अकारण नाचना चाहता था, अकारण कूदना चाहता था---तुमने क्षुद्र के लिए विराट को रोक दिया!

और जब सब तरफ से बच्चे पर यह रुकावट पडती है, तो धीरे-धीरे वो गभीर होने लगता है। और तब एक बात उसको समझ मे आ जाती है कि इस समाज मे नियत्रण, कट्रोल का मूल्य है अपने को नियत्रित रखो! और जितना तुम ज्यादा अपने को नियत्रित रखोगे, उतना ही आनन्द के द्वार बद हो जायेगे। क्योंकि आनद तो उतरता है तुम्हारे स्वच्छन्द चित्त मे, स्वतत्र चित्त मे---जहा कोई नियत्रण नही, जहा सब कट्रोल, सब नियत्रण नीचे रख दिये गये है। तभी तुम पूरी मधुशाला को पीने मे समर्थ हो पाते हो।

हमारी सारी शिक्षा-दीक्षा व्यक्ति को उपयोगी बनाने की है, आनदित बनाने की नही। उपयोगी का अर्थ है---कही क्लर्क हो जाना, कही स्कूल मे मास्टर हो जाना, किसी दफ्तर मे, किसी ऑफिस मे, मशीनरी मे फिट हो जाना और जिदगीभर काम करना, और जिदगीभर पैसे कमाना, और बच्चे पैदा करना---और उनको भी इसी के लिए तैयार करना कि वे भविष्य मे फैक्टरी चलाए।

कुछ अर्थ नही मालूम पडता पहले तुम्हारे बाप फैक्टरी चलाते थे, अब तुम फैक्टरी चलाते हो। उन्होने तुम्हे तैयार किया, कभी सुख न जाना जीवन का, तुम्हे तैयार किया कि फैक्टरी चलाओ अब तुम और बच्चे पैदा करके तैयार कर रहे हो कि अब तुम फैक्टरी चलाना। जैसे कि फैक्टरी कोई बडी भारी बात है, जिसको चलाने के लिये सब को पैदा होने की जरूरत है।

फैक्टरी न चली तो कुछ हर्ज नही है। फैक्टरी चल गई तो होना क्या है? आदमी व्यवसाय मे कम कीमत का हमने कर दिया है। और जैसे-जैसे फैक्टरी चलती जाती है वैसे-वैसे आदमी कम कीमत का होता जाता है।

तुम्हारा उपयोग क्या है? तुम्हारा उपयोग इतना है कि तुम समाज के ढाचे मे काम के हो जाओ। हमारी सारी शिक्षा-दीक्षा बस इसीलिए है कि आदमी मशीन हो जाए और मशीन की जगह काम करने लगे। जितना कुशल आदमी हो मशीन होने मे, उतना हमारी व्यवस्था मे ऊपर पहुच जाता है। हम कहते है, यह आदमी बडा कुशल है। जितना अकुशल आदमी हो, उतनी हमारी व्यवस्था मे नीचे छूट

जाता है। लेकिन कुशलता का क्या अर्थ है, जिससे आनद उपलब्ध न होता हो ?

जीवन व्यवसाय नही है। और यही गृहस्थ और सन्यासी का फर्क है—मेरे लिए। जिसने जीवन को व्यवसाय समझा है, वह गृहस्थ। और जिसने जीवन को उत्सव समझा है, वह सन्यासी।

तुम्हे मैंने सन्यास के लाल रग के कपडे दिए हैं—सिर्फ इस खयाल से कि तुम समझोगे कि लाल फूलो का स्वाभाविक रग है। जिसका जीवन फल की आकाक्षा रखता है, वह गृहस्थ, और जीसका जीवन सिर्फ फूल होना चाहता है, वो सन्यासी। फल का उपयोग है, फूल का क्या उपयोग है ? फल को तुम खा सकते हो, पचा सकते हो, खून बना सकते हो, फूल का क्या करोगे ? फूल का कोई भी तो उपयोग नही है। इसलिए जब हम आनदित होते हैं, किसी के उत्सव मे सम्मिलित होते है, तो फूल ले जाते है। फूल निरुपयोगी है, नान-यूटिलिटेरियन है। वो कविता की तरह है। उसका कोई भी तो उपयोग नही है। उससे तुम प्रसन्न हो सकते हो, उससे तुम तिजोडिया नही भर सकते। तिजोडिया भरने के लिए तो मुर्दा नोट चाहिए, जिदा फूल काम न आयेगा। क्योकि जिदा फूल अगर तुमने तिजोडी मे भर लिए तो वे सब सड जायेंगे। मरे नोट चाहिए, जो सडते ही नही। मरी-मरायी चीज फिर नही मरती, जिदा चीज तो मरती है।

सन्यास का अर्थ है, जो जिदगी को फूल की तरह देखता है, फल की तरह नही। यही कृष्ण गीता मे अर्जुन को कह रहे है। प्रतीक अलग, कहानी और है, पृष्ठभूमि भिन्न है, पर सार तो यही है। वे यही कह रहे हैं कि 'तू कर्म-फल की आकाक्षा मत कर। तू फल की आकाक्षा मत कर। तू रिजल्ट की, परिणाम की, आकाक्षा मत कर। तू फूल की भाति हो जा। जो हो रहा है, होने दे, जो हो सकता है, कर, लेकिन तू इसको प्रयोजन मत बना, तू सिर्फ निमित्त रह।'

फूल की भाति होने का अर्थ है, तुमने जीवन मे उत्सव को जगह दी। अब तुम नाचोगे, गाओगे, प्रसन्न होओगे। लेकिन, अगर तुमसे मैं कहू 'नाचो,' तो तुम्हारा मन तत्काल पूछेगा—'क्या फायदा होगा ?'

मेरे पास लोग आते है। वे कहते हैं, 'ध्यान करने से फायदा क्या ?'

तुम बैंक के बाहर कभी निकलोगे कि नही ? तुम दुकान प्रॉफिट !

तुम्हारे सोचने का सभी ढग रुपयो मे बधा है। अगर मैं उनको कह दू कि 'जब समाधि लगेगी, तो एकदम हजार का नोट प्रगट होगा, तो वे कहेगे, 'करने जैसा है! जल्दी राज बताइये, गुर क्या है ? इत्ती देर क्यो की ?' लेकिन अगर मैं उनको कहता हू कि आनन्द बरसेगा, ऐसी घडी आयेगी—'सुरत कलारी भई मतवारी, मदवा पी गई बिन तोले'—तो वे कहेगे, 'यह अपने बस की बात नही ! फिर अभी समय भी नही आया !' वे इसके लिए मरने की प्रतीक्षा करेगे।

लोग ठीक मरते वक्त धार्मिक होते हैं। आखिरी वक्त पर टालते रहते हैं। इसी-

लिए लोग कहते हैं 'जब बूढे हो जाओ तब सुनना सतो की बातें। अभी तो जवान हो, अभी कहा जा रहे हो?'

लोग मेरे पास आते हैं। एक बूढे सज्जन मेरे पास आये। उनके लडके ने सन्यास ले लिया। लडका भी ऐसे अब कोई लडका नही है—पचास साल का है! उनकी उम्र कोई होगी पचहत्तर साल की। वे कहने लगे, 'यह आपने क्या किया? लडको को सन्यास देने लगे! अभी उसकी उम्र है? अभी मैं जिंदा हू! अब जब तक बाप जिंदा है, तब तक बेटा लडका ही है। आपने उसको सन्यास दे दिया? यह तो आखिरी बात है!'

मैंने कहा, 'अब आप आ ही गये, चलो छोडो, एक गलती मुझसे हो गई, मगर दूसरी न होने दूगा।'

उन्होने कहा, 'क्या मतलब?'

मैने कहा, 'आपको सन्यास ।'

मुस्कराने लगे। वो मुस्कराहट खोखी कि 'नही, सोचूगा, आऊगा।'

मैंने कहा, 'अब और क्या देर है?'

'कि नही, मैं इसलिए तो आया ही नही था। यह सवाल नही है।'

'अगर तुम कहते हो लडके के लिए थोडी देर से देना, तो देर तुम्हारे लिए हो गई। पचहत्तर साल काफी है। और सबसे ज्यादा तुम जी गये हो। मूल तो चूक गया, ब्याज मे जी रहे हो! अब भी सन्यास की हिम्मत नही?''

नही,' कहने लगे, 'सोचूगा, अभी कई काम-धाम पडे हैं, उलझने है, नाती-पोतो की शादी करनी है। पर आऊगा, एक दिन जरूर आऊगा!'

वे कह के गये थे। लेकिन वह एक दिन नही आयेगा, क्योंकि वे मर गये। कुछ दिन पहले उनके लडके का पत्र आया कि पिताजी चल बसे।

व्यवसाय मे ही मत चल बसना।

जीवन आनन्द-उत्सव है। इसका यह अर्थ नही है कि तुम व्यवसाय मत करना। तुम व्यवसाय आनन्द-उत्सव के लिए ही करना। तुम कमाना तो भी गवाने को। तुम इकट्ठा करना तो भी लुटाने को। तुम बचाना तो भी बाटने को। लक्ष्य तुम्हारा आनन्द रहे। लक्ष्य तुम्हारा फूल रहे। खिले और लुटा दे अपनी सारी सुगध।

'सुरत कलारी भई मतवारी, मदवा पी गई बिन तोले।'

तुम आनन्द को तौल-तौल के मत पीयो, तुम बिना तौले पी जाओ। यहा कुछ दाम भी तो नही लग रहे हैं! आनन्द का कोई मूल्य भी तो नही है! तुम्हे कुछ भी तो नही चुकाना पड रहा है। सिर्फ पीने की तैयारी काफी है—और कलारी खुली है, और मधुशाला के द्वार खुले हैं!

एक रात मुल्ला नसरुद्दीन ने मधुशाला के मालिक को फोन किया। कोई तीन बजे होगे, कि 'मधुशाला कब खुलेगी? उसने कहा कि 'बडे मियां! आधी रात,

यह भी कोई पूछने की बात है! नींद से जगा दिया नाहक! मधुशाला नियम से खुलेगी, सुबह नौ बजे। उसके पहले, एक मिनट पहले नहीं। सो जाओ!'

पांच-दस मिनट बाद फिर फोन की घटी आई। गुस्से मे उस आदमी ने फिर फोन उठाया। मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, कि कब तब खुलेगी मधुशाला? उसने कहा कि कह दिया एक दफा कि नौ के एक मिनट पहले नही, चुपचाप सो जाओ!

पन्द्रह मिनट बाद फिर फोन आया। तब तो वह आदमी नाराज हो चुका था कि सोने ही नहीं दे रहा है! उसने कहा कि मामला क्या है? क्या ज्यादा पी गये?

नसरूद्दीन ने कहा कि ज्यादा ही पी गये है। और असली बात यह है कि मैं मधुशाला के भीतर बद हू, बाहर नही। तो मुझे निकलना है, भीतर नही आना। मधुशाला कब खुलेगी?'

तुम सोचोगे, ज्यादा पी गया होगा। पूरी मधुशाला मिल गई बिना मालिक के। जब दुकान बद हुई, तब वे किसी तरह भीतर रह गये।

तुम भी आनन्द को ऐसे ही पीना, खरीद के नही। खरीदने की कोई बात ही नही है। तौल-तौल के क्या पी रहे हो?

लेकिन क्यो आदमी तौल-तौल के पीता है? डरता है!

मेरे पास लोग आते है। वे कहते है कि कि अगर हम ठीक से नाचने लगते है तो थोडा-सा भय पकडता है कि कही ऐसा न हो कि नियन्त्रण खो जाय। कन्ट्रोल है अपने पर वो कही खो न जाये! ध्यान मे जाते है, जैसे ही घडी करीब आती है जबकि विस्फोट हो, तभी भयभीत हो जाते है। मुझसे आ के कहते है कि वहा ऐसा लगता है कही हम खो न जाए! अब तक अपने प नियत्रण रखा है।

नियत्रण खोने का डर क्यो?

डर इसलिए है कि तुम्हारे समाज ने तुम्हे सप्रैशन, दमन सिखाया है। तुमने इतनी चीजे दबा रखी ह कि नियत्रण खो जायेगा। तो तुम्हे डर है कि वो प्रगट न हो जाए। तुम दबा के बैठे हो बहुत-सी चीजे। अगर तुमने आनद खुल के पिया, तो जो तुमने दबाया है वह उठ आयेगा। तब बडी मुश्किल होगी। तब बडा कठिन हो जायेगा।

गुरजियेफ के पास जब भी कोई नया साधक जाता था, तो वो पहला काम करता था उसे काफी शराब पिलाने का। गुरजियेफ अनूठा गुरु था, लेकिन बहुत काम का। अनूठे ही काम के होते है। जिन मुर्दों को तुम पूजते हो, वो तो किसी काम के नहीं होते। तुम पूजते ही उनको इसीलिए हो कि बिलकुल मुर्दा है, और तुम्हारे नियत्रण को कही से भी नही तोडते, बल्कि तुम्हारे नियत्रण मे सहयोगी है, तुम्हारे दुख मे सहयोगी है, तुम्हारे दुख को बढाते हैं, जमाते है।

तुम जाओ अपने गुरुओं के पास। कोई कहेगा, 'चाय पीना छोडो। कोई कहेगा, 'सिगरेट पीना छोडो। कोई कहेगा, ब्रह्मचर्य का व्रत ले लो।' कोई यह

कोई तुम वैसे ही काफी दुखी हो, तुम वैसे ही काफी बधे हो, तुमने वैसे ही काफी नियत्रण थोप रखे है—वो और थोडा नियत्रण बढा देंगे, वो तुम्हारे हाथ पर थोडी और जजीरे डाल देंगे। वे तुम्हे आनद पाने के लिए नही उकसाएगे, वो तुम्हे और बधन मे जाने के लिए उकसायेंगे।

यह सच है कि आनद के उतरने पर ये सब चीजें खो जाती हैं—जो क्षुद्र आज तुम्हे पकडे हुए हैं। वो पकडे ही इसलिए हैं।

अगर एक आदमी शराबी है, तो उससे शराब छुडाने के दो उपाय हैं। एक तो उपाय यह है कि उससे वचन लो, उसको आज्ञा दो, उससे कसम खवा लो, कि व्रत दे दो कि अब मैं शराब नही पिऊगा। यह तुमने उसके हाथ पर एक और जजीर डाल दी। और दूसरा रास्ता यह है कि उसे परमात्मा की शराब पीने की तरफ ले जाओ। और जिस दिन वो परमात्मा की शराब पी लेगा, उस दिन यह शराब छूट जायेगी। यह तुमने मुक्ति की तरफ, आनद की तरफ बढाया—बधन नही डाले, तोडे।

शराब तो छूट जायेगी, जब उसकी शराब पी ली तो यह शराब बदबू देने लगेगी। जब उसकी शराब पी ली तब यह शराब गदी नाली का पानी मालूम पडने लगेगी। जब उसका प्रेम पा लिया तो ब्रह्मचर्य तो अपने-आप घट जायेगा, उसे घटाने की कोई जरूरत नही। और जब उसकी सपदा मिल गई, तब इस सपदा पर, कोडियो पर आग्रह तुम्हारा अपने-आप छूट जायेगा। पाओ, ताकि यह ससार छूट जाये। यही तो परम-ज्ञानियो का सदा से सदेश है।

लेकिन, जिन मुर्दों को तुम पूजते हो, वो तुम्हे और हथकडिया डाल देंगे। उन्होंने ही तो हथकडिया डाली है, या उनके बाप-दादो ने। और उन्होंने सब तरफ से तुम्हे बाध दिया है। तुम मुस्करा भी नही सकते खुल के, क्योकि लोग कहेगे, 'यह असस्कारी है। ऐसे कही खिलखिला कर हसा जाता है।' हसते भी तुम ऊपर-ऊपर हो। तुम्हारी हसी पेट तक नही जाती, क्योकि वहा भय है। क्योकि पेट मे ही सब दमन है। वही कामवासना दबी पडी है। अगर हसी पेट तक गई, तो तुम तत्क्षण पाओगे कि वासना जाग रही है। तो डरते हो तुम। ऊपर-ही-ऊपर हसते हो, श्वास तक पूरी नही लेते।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि श्वास तुम तभी पूरी ले सकोगे, जब कामवासना के प्रति तुम्हारा विरोध मिट जाये। तुम श्वास भी ऊपर-ऊपर लेते हो, छाती के ऊपरी हिस्से से लेते हो, भीतर नही। क्योकि अगर श्वास भीतर तक जायेगी, तो वह काम के केंद्र पर चोट करती है।

मेरे पास लोग आते हैं। जब वे ठीक से सक्रिय ध्यान करते हैं, तो वे कहते है 'क्या मामला है? हम तो सोचते थे ब्रह्मचर्य आयेगा—वासना जग रही है।' मैं उनसे कहता हू 'जगेगी, क्योकि अब तक तुमने दबाया है। पर जगने दो, भयभीत मत

होओ। उसे जग जाने दो, ताकि भय मिट जाए। तुम उससे गुजर जाओ। और ध्यान तुम किये जाओ। क्योंकि वासना की ही शक्ति जब ऊपर चढ़ेगी, तभी ब्रह्मचर्य बनेगी।'

ब्रह्मचर्य काम का दुश्मन नही है—काम का रूपातरण है। रूपातरण के लिए पहले तो वासना का जगना जरूरी है। शक्ति हो तभी तो रूपातरित होगी, शक्ति ही न हो तो रूपातरण कैसा? तो तुम भयभीत मत होओ।

तुम्हारे साधु-सत तुम्हे सब तरफ से भयभीत करते हैं। एक बात सूत्र की तरह समझ लो जो तुम्हे भयभीत करे उससे बचना। जो तुम्हे निर्भय करे, उसके पास जाना।

गुरजियेफ के पास कोई जाता तो वो पहला काम करता कि शराब पिला देता—इतनी पिला देता कि लोग पूछते कि यह किसलिए करते है? तो वो लोगो को कहता कि अब बैठ जाओ। जब आदमी शराब पी लेता तो सारा रूप बदल जाता उस आदमी का। क्योंकि जो-जो दबा पडा है, वो बाहर निकलना शुरू हो जाता। शराब जब तक नही पी थी तब तक राम-राम, राम-राम, राम-राम कर रहा था, अब वो गालिया देना शुरू कर देता है।

तुम जानते हो शराबियों को? भला आदमी, लेकिन शराब पी के तुम कहते हो शराब की वजह से कर रहा है। कोई शराब गाली को पैदा नही कर सकती। कोई केमिस्टरी सिद्ध नही कर सकती कि शराब मे गाली पैदा हो सकती है। गाली भीतर दबी पडी थी, शराब ने बधन हटा दिया, गाली उठ के ऊपर आ गई। अब राम-राम नही कहता, राम चदरिया उतार के फेक देता है। अब तक बिल्कुल शात मालूम पडता था, एकदम क्रोधित हो जाता है!

मधुशाला मे जा के देखो, वहा तुम्हे असली तस्वीर दिखाई पडेगी आदमी की। वही तुम्हारी तस्वीर भी है। तुम सिर्फ छिपाये खडे हो। इसीलिए तो तुम डरते हो शराब पीने से, कि कही शराब पी ली तो प्रगट हो जायेगा।

कभी भाग-वगैरह पी के देखो, अनर्गल आदमी बकने लगता है! वह सब भीतर दबा पडा है। भाग कैसे उसे पैदा करेगी? भाग सिर्फ इतना करती है कि नियत्रण को हटा लेती है। तुम भूल गये—समाज, सस्कार, सभ्यता—सब भूल गये, अब तुम शुद्ध आदमी हो गये, जैसे तुम हो भीतर। अब शुद्ध आदमी बाहर प्रगट होने लगा। तो जब तुम होश मे थे, तब तुम कह रहे थे कि 'बडी कृपा की कि आप आये! बडा शकुन हुआ! आप जब आते है तो घर मे मगल की वर्षा शुरू हो जाती है। आपका चेहरा ही देख के फूल खिल जाते है। फिर शराब पी गये और कहने लगे—'निकलो बाहर! इस शकल को सुबह ही यहा ले आये! जब भी तुम दिखायी पड जाते हो, तभी दिन खराब जाता है।'

यही भीतर दबा पडा था, वो बाहर आ गया।

गुरजियेफ पहले भीतर के आदमी को बाहर लाता। वो कहता, पहले यह जान लेना जरूरी है कि यह आदमी भीतर कैसा है! फिर उस हिसाब से इसकी विधियां तय करेंगे। तुम सक्रिय ध्यान करते हो, कुंडलिनी करते हो, और ध्यान करते हो—उसमे तुम्हारे भीतर जो-जो दबा है, वह बाहर आ जाता है। गुरजियेफ शराब पिलाता था, मैं उसे जरूरी नही मानता। सक्रिय ध्यान बाहर ले आता है। देखो! सक्रिय ध्यान मे—जो आदमी बिलकुल शात था—चीख रहा है, पुकार रहा है! जो आदमी बिलकुल भला मालूम होता था, कि कभी चोट नही करेगा, वो एकदम घूसे तान रहा है हवा मे, युद्ध कर रहा है, जैसे किसी को मार डालेगा। यह असली आदमी है।

शराब की कोई जरूरत नही है, थोडा नियत्रण ढीला करने की जरूरत है, और चीजे बाहर आ जायेगी। यह ही असली है और इसी को बदलना है। वह जो नकली ऊपर-ऊपर है, वह तो रग-रोगन है। उसका कोई भी मूल्य नही है। उससे कुछ सार भी नही है। उसमे बदलाहट करने से कुछ बदलाहट होगी भी नही। असली को ही बदला जा सकता है, क्योकि वही शक्ति के स्रोत हैं।

'सुरत कलारी भई मतवारी, मदवा पी गई बिन तोले।'

तुम डरे हो आनन्द पाने से, क्योकि नियत्रण । जागो! नियत्रण की फिक्र छोडो, आनन्द की फिक्र मन मे लाओ! थोडे ही दिन मे, जैसे-जैसे आनन्द उतरेगा, नियत्रण आपने-आप हट जायेगा। इसका यह अर्थ नही कि तुम अनियत्रित हो जाओगे! इसका यह भी अर्थ नही कि तुम असामाजिक तत्व बन जाओगे, कि तुम कुछ गलत करने लगोगे। नही, अभी डर है, तब कोई डर न होगा। अभी तुम कभी असामाजिक कृत्य कर सकते हो।

हत्यारो का जीवन पढो। उन हत्यारो मे से कोई भी ऐसा नही था कि कोई भी कह सकता कि यह आदमी हत्या करेगा। ठीक तुम जैसे अच्छे-भले लोग थे एक दिन हत्या कर दी! मनोवैज्ञानिक तो बडे विपरीत निष्कर्ष पे पहुचे है। वे कहते है, जो आदमी रोज थोडा-थोडा क्रोध करता रहता है, वो हत्या कभी नही कर सकता। वो अच्छा आदमी है, क्योकि उसका क्रोध रोज ही निकल जाता है। जो आदमी रोज चेहरा बनाये रखता है शाति का, और इकट्ठा करता जाता है, वो किसी दिन हत्या कर सकता है।

विस्फोट के लिए काफी आग चाहिए! रोज ही चिनगारी निकल जाये तो विस्फोट क्या! इसलिए वो पति बेहतर, वो पत्नी बेहतर जो चौबीस घटे मे एकाध दफे कलह कर लेती। वह पति खतरनाक, कि पत्नी कलह करती है, वो बुद्ध बने रहते है। यह खतरनाक है, यह किसी दिन गरदन दबा देगा। इससे कम मे उसका काम नही चलेगा। इतना इकट्ठा कर लेगा कि फिर किसी दिन यह मार ही डालेगा।

साधुओ से सावधान! हत्यारे वही हो जाते हैं। तुम देखो, हिंदू-मुस्लिम दगा हो जाए, भले-अच्छे लोग—कल तक दुकान कर रहे थे, बाजार जा रहे थे—खरीद

रहे थे, बेच रहे थे—मित्र थे—अचानक सब समाप्त हो गया! वही आदमी जो कल रोज मस्जिद जाता था, नमाज पढता था पाच बार, वो आदमी जो रोज मदिर जाता था, राम-चदरिया ओढे रहता था—वे ही एक-दूसरे के मकान मे आग लगा रहे हैं, हत्याए कर रहे है, छोटे बच्चो को काट रहे हैं!

यह कैसे सभव होता है! यह सब भीतर दबा पडा है। तुम खतरनाक हो, जैसे तुम हो। तुम्हे विस्फोट के लिए जरा-सी जरूरत है—बस, आग पकड जाती है। इसलिए मनोवैज्ञानिक कहते है, हर दस साल मे, दुनिया मे एक बडा युद्ध चाहिए ही, क्योकि लोग इतना इकटठा कर लेते हैं कि अगर युद्ध मे नही निकलेगा तो लोगो का जीवन मुश्किल हो जायेगा। और छोटे-छोटे पागलपन चाहिए ही। किसी भी बहाने पागलपन बाहर निकल आता है। कोई बहाना मिल जाये। फुटबॉल खेल रहे है लोग। अब बडी हैरानी की बात है, लाखो लोग देखने इकट्ठे होते हैं! कुछ भी नही कर रहे हैं वे लोग, गेद इधर-उधर फेक रहे हैं। और ये धूप सह रहे है, और खेलने वालो मे भी ज्यादा उछल-कूद मचा रहे है! झगडे हो जायेगे, मारपीट हो जायेगी।

घोडो की रेस चल रही है, उस पे लोग जा के दाव लगा रहे है, बिलकुल पुलकित हो रहे है, दुखी हो रहे है, रो रहे है, हस रहे हैं। अगर तुम इनको गौर से देखो, तो तुम पाओगे यह बडा पागलपन है, यह किस तरह चल रहा है! तुम किसी घोडे को राजी न कर सकोगे! आदमियो को दौडाओ, घोडे कभी न आयेंगे देखने! घोडे कहेगे कि यह क्या पागलपन है! गधे भी न आयेगे, घोडो को तो छोडो। लेकिन घोडे दौड रहे है और आदमी वहा खडे है। बडे समझदार लोग है पैसा है, पद है—सब है, बुद्धिमान है। क्या कर रहे है? कुछ पागलपन है जिसको निकास के लिए रास्ते चाहिए।

मुर्गे लडा रहे है! बडे-बडे नवाब है, बैठे है, मुर्गे लडा रहे है। मुर्गे के लडाने से हिंसा निकल रही है। अगर मेरे मुर्गे ने तुम्हारे मुर्गे का मार डाला, तो यह प्रतीक है मैने तुम्हे मिटा डाला। यह बहाना है। अगर मेरा मुर्गा हार गया तो मैं रात सो न सकूगा हार हो गई!

फिर, मुर्गे-वगैरह महगे काम है तो लोग सस्ते काम—शतरज—उस पे घोडे, हाथी—नकली—असली तो महगा है, असली हाथी रखो, घोडा रखो—वे जमाने गये, राजा-महराजा न रहे—तो शतरज! बैठे है लोग, शतरज खेल रहे है। और ऐसे लीन है कि जैसे कबीर का वचन इन्ही के लिए है 'सुरत कलारी भई मतवारी, मदवा पी गई बिन तोले।' हिंसा, क्रोध, शतरज मे निकल रहा है।

हमारे खेल युद्ध के सक्षिप्त सस्करण हैं, हिंसा के रूप हैं। हम सब भाति भरे हुए है—व्यर्थ कचरे से! तुम्हे उसे हटाना पडेगा। नही तो तुम आनद से भयभीत रहोगे। और जो आनद से भयभीत हो गया, वो भ्रष्ट हो गया। क्योकि सारा जीवन,

सारे जीवन की यात्रा एक ही मजिल को मानती है—वह आनद।

'सुरत कलारी भई मतवारी, मदवा पी गई बिन तोले।'

'हसा पाये मानसरोवर, ताल-तलैया क्यो डोले।'

यह सूत्र है सार का 'हसा पाये मानसरोवर, ताल-तलैया क्यो डोले।'

अब हस को मानसरोवर मिल गया तो अब वो क्षुद्र ताल-तलैया मे क्यो भटके! जिसको परमात्मा मिल गया, वो अब क्षुद्र मे क्यो भटकेगा! जिसको वह आखिरी शराब मिल गई, वो अब इन मधुशालाओ मे क्यो जायेगा! इनमे भी तो उसी की तलाश मे जाता है।

पत्नी मे तुम उसी प्रेम को खोज रहे हो, जो तुम्हे प्रार्थना से ही मिल सकता है—पति मे भी तुम उसी प्रेम को खोज रहे हो, जो कोई पति से कभी नही मिल सकता—सिर्फ परमात्मा से मिल सकता है। धन मे भी तुम वही खोज रहे हो—जो परम धन मे ही मिल सकता है। पद मे भी तुम वही खोज रहे हो, जो परमपद मे मिल सकता है। ससार मे तुम उसी को खोज रहे हो, जो ससार मे नही है।

'हसा पाये मानसरोवर, ताल-तलैया क्यो डोले।'

इसलिए असली सवाल ताल-तलैया छोडने का नही है, मानसरोवर खोजने का है। यह सवाल नही है कि तुम क्षुद्र को छोडो। क्षुद्र छोडने-योग्य भी नही है—इतना क्षुद्र है। उसकी बात ही उठानी व्यर्थ है। अगर तुम क्षुद्र को छोडने मे लगोगे, तुम उसको बडा महत्व दे दोगे। इतना महत्व भी नही है उसका। तुम तो विराट पाने मे लगो।

ससार को छोडना नही है, परमात्मा को पाना है। कबीर और नानक का यही गहनतम सदेश है। इसलिए उन्होने सन्यासी नही बनाये। उनका सन्यासी गृहस्थ है। वो घर मे है।

ससार को क्या छोडना! छोडने-योग्य भी नही है। परमात्मा को पाना है। और जिसने परमात्मा को पा लिया, ससार उसके लिए क्या बाधा है? रहा आये। ताल-तलैया जहा है, रहे आये। मेरा मानसरोवर मुझे मिल गया, मैं ताल-तलैयो मे नही डोलता। ताल-तलैयो को छोड के भागने की कोई जरूरत नही। ताल-तलैयो को मिटाने की भी कोई जरूरत नही। अभी जिनके मानसरोवर नही मिले है, उनके लिए कुछ तो बचने दो! जिनको मानसरोवर नही मिला है कम-से-कम ताल-तलैया रहने दो!

जीवन के दो ढग है एक ढग है—नकारात्मक, निगेटिव, एक ढग है—विधायक, पॉजिटिव। एक ढग है कि जो गलत है, उसको छोडो वो नकारात्मक है। और दूसरा ढग है कि जो सही है, उसे पाओ, वो विधायक है। तुम नकारात्मक से बचना, क्योंकि निषेध सिर्फ मृत्यु मे ले जाता है।

मैं तुमसे नही कहता धन छोडो। मैं तुमसे नही कहता घर छोड़ो। मै तुमसे

कहता हू जागो! यह घर तुम्हारे लिए काफी नही है, बडे घर को खोजो! और बडा घर मिल जाए तो तुम इस घर मे भी रहे आओगे, लेकिन कमलवत् हो जाओगे। यह घर तुम्हे छुएगा नही। तुम रहोगे ससार मे और ससार के बाहर रहोगे, ससार तुम्हारे भीतर प्रवेश न करेगा।

'हसा पाये मानसरोवर, ताल-तलैया क्यो डोले।
तेरा साहब है घर माही, बाहर नैना क्यो खोले।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, साहब मिल गए तिल ओले॥'

'तेरा साहब है घर माही, बाहर नैना क्यो खोले।'

ससार का अर्थ है जो भीतर है उसे हम बाहर खोज रहे हैं। धर्म का अर्थ है जो जहा है उसे हम वही खोज रहे हैं।

सूफी फकीर औरत हुई राबिया! बडी बहुमूल्य! स्त्रियो मे दो-चार स्त्रिया ही मनुष्य-जाति के इतिहास मे इस ऊचाई तक पहुची हैं, जहा राबिया है। एक दिन लोगो ने देखा, घर के बाहर कुछ खोजती है। बूढी औरत! तो दूसरे लोग भी साथ देने आ गये। पुरानी कहानी है, अब तो कोई नही आता। छोटा गाव, पास-पडोस के लोग आ गये। उन्होने कहा कि राबिया, क्या खो गया है?

उसने कहा, 'मेरी सुई खो गई है।'

तो खोजने लगे वे भी। साझ का ढलता सूरज, अन्धेरा उतरता है। फिर एक आदमी ने पूछा कि 'सुई बहुत छोटी चीज़ है, रास्ता बडा है, कहा गिरी? ठीक जगह बताओ तो मिल भी जाए। अन्यथा रात उतरने के करीब है।

राबिया ने कहा 'वो मत पूछो कि कहा गिरी, क्योकि गिरी तो घर के भीतर है!'

वे सब हसने लगे, उन्होने कहा, 'राबिया, पागल तो नही हो गई? अगर सुई घर के भीतर गिरी है तो बाहर क्यो खोज रही है?'

राबिया ने कहा 'मजबूरी है। घर मे दीया नही है, अन्धेरा है। और अन्धेरे मे खोजने मे क्या सार! बाहर खोजती हू, सूरज की थोडी रोशनी शेष है। रोशनी मे ही खोजा जा सकता है।'

लोगो ने कहा, 'पागल, रोशनी मे खोजा जा सकता है, यह सच है। लेकिन अगर खोया ही न हो वहा, तो रोशनी भी क्या करेगी? रोशनी कोई सुई को बना तो न देगी। अच्छा हो राबिया कि दीये को हम घर के भीतर ले जाए। क्योकि जो चीज जहा खोई है, वही मिलेगी।'

राबिया ने कहा कि तुम बडे समझदार हो, लोगो। लेकिन अपनी जिदगी मे तुमने ऐसा नही किया। और मैं वैसा ही कर रही हू, जैसा तुमने अपनी जिदगी मे किया है। भीतर जिसे खोया है, तुम बाहर खोज रहे हो। तो मैने सोचा यही तर्क तुम्हारा है, तुम्हारी बस्ती मे रहती हू, इसी तर्क को मान के चलना ठीक है। लेकिन तुम मुझे पागल कह रहे हो।

तुमने कभी सोचा कि तुमने आनद कहा खोया है?

तुमने आनद कारो मे खोया है, बडे मकानो मे खोया है, तिजोडियो मे खोया है—तुम्हे याद आता है कभी? तुम जब इस ससार मे आये थे, तो न तो तिजोडिया साथ लाये थे, न बडी कारे, न बडे मकान। तुम क्या ले के आये थे? लेकिन आनद तुम्हारे साथ था—तुम प्रफुल्लित थे। बच्चे की भाति तुम परम आनदित थे, आह्लादित थे। आनद तुम भीतर ले कर आये थे।

इस बात को समझ लेना जरूरी है कि जिसका हमने स्वाद न लिया हो, उसे हम खोजेगे कैसे। हर आदमी आनद खोज रहा है। इसका मतलब है कि कभी-न-कभी उसने आनद को जाना है, कोई स्वाद पहचाना है। खोजोगे कैसे?

हर बच्चा आनद से पैदा होता है। हर बच्चा आनद के जगत से आता है। हर बच्चा अपने भीतर आनद की धुन लगाता है। फिर धीरे-धीरे हम उस पे हावी हो जाते है, समाज सस्कारित करता है।

इसीलिए तो तुम्हे चार साल के पहले कि याद नही आती। तुम खोजने की कोशिश करो अपने अतीत मे, तो तीन साल, चार साल, पाच साल—बस उस उम्र तक तुम याद्दाश्त ले जा सकोगे। फिर याद्दाश्त समाप्त हो जाती है। क्यो? क्या कारण है? तुम थे, तो याद्दाश्त तो होनी चाहिये। लेकिन तुम इतने आनदित थे कि याद्दाश्त तो दुख की बनती है, आनद की नही बनती। जब जूता पैर मे ठीक आ जाता है तो दर्द होता ही नही, तो याद्दाश्त कैसे बनेगी? तुम चार-पाच साल की उम्र तक याद नही कर पाते, क्योकि तुम इतने प्रफुल्लित थे, इतने प्रसन्न थे, याद्दाश्त बनी ही नही। दुख ही न था तो लकीर ही न खिची। तुम्हारा मन कोरा-का-कोरा ही रहा।

आनद की कोई लकीर नही खिचती। आनद तो आकाश मे उडते हुए पक्षियो की भाति है, उनके पद-चिह्न नही छूटते। इसलिए तुम याद नही कर पाते। मगर कुछ अनजानी धुन भीतर गूजती रहती है। इसलिए बूढे-से-बूढा आदमी भी कहता है कि बस, बचपन सब कुछ था। बचपन के गीत गाता है।

जीसस कहते है जब तक तुम पुन बच्चो की भाति न हो जाओगे तब तक प्रभु का राज्य तुम्हे न मिल सकेगा। इसका अर्थ ही हुआ कि बच्चो को प्रभु के राज्य की कुछ झलक थी। निश्चित थी। आनद भीतर था, समाज ऊपर से छा गया। शिक्षा और सस्कार ने सब दबा दिया। तुम्हे फिर से शिक्षा और सस्कार काटना पडे, और अपने भीतर के आनद की तलाश करनी पडेगी।

'तेरा साहब है घर माही, बाहर नैना क्यो खोलै।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, साहब मिल गए तिल खोलै॥'

'तिल' शब्द को समझना उपयोगी है। आख खोल के तुम देखते हो, हिमालय दिखाई पडता है—विराट हिमालय! उत्तुग उसके शिखर! आकाश को छूती हुई

उसकी भुजाए। हिम से ढके हुए हिमालय को तुम देखते हो। इतना विराट हिमालय और तुम्हारी छोटी-सी आख इतने बडे हिमालय को देख पाती है। अगर हिमालय को छिपाना हो तुम्हारी आख से, तो क्या करना पडे? एक छोटा-सा तिल तुम्हारी आंख मे डाल देना काफी है। कोई हिमालय को छिपाने की जरूरत नही, बस एक छोटा-सा रेत का टुकडा तुम्हारी आखो मे डाल देना जरूरी है। बस, आख तिलमिला गई, हिमालय खो गया। हिमालय छिप गया तिल की ओट मे। आख मे किरकिरी—और हिमालय खो गया। एक जरा-से रेत के टुकडे ने, जो आख से दिखाई भी न पडे, उसमे हिमालय दब गया इतना विराट!

कबीर कहते हैं, ऐसा ही तुम्हारा साहब खो गया है। आख मे जरा-सा तिल, जरा-सा कचरा पड गया है, और इतना विराट परमात्मा छिप गया है! तुम्हे कुछ परमात्मा को खोजने के लिए और नही करना, सिर्फ आख को साफ कर लेना है आख की किरकिरी को साफ कर लेना है। साफ आख—और परमात्मा उपलब्ध है। वो सदा वहा मौजूद है।

'कहै कबीर सुनो भाई साधो, साहब मिल गए तिल ओले।

तिल की ओट मे छिपा है—साहब मालिक प्रभु! उसको खोजने कही दूर जाने की जरूरत नही, बस आख से तिल हट जाए!

क्या है तिल? किस आख और किस तिल की बात कर रहे है कबीर?

तुम्हारा अहकार बस रेत की तरह तुम्हारी आख पे पडा है। 'मै हू'—यही है तिल। इसी के नीचे वो छिप गया है—जो वस्तुत है। और जैसे ही हटा दोग कि 'मैं हू,' यह गया वही हो गया। 'मैं' के हटते ही तिल हट जाता है साहब मिल जाते हैं।

तुम जब तक हो, तब तक तुम उसे न पा सकोगे। तुम अपने को जिस क्षण खोने को राजी हो जाओगे उसी क्षण वो मिला हुआ है। वो मिला ही हुआ था। उसे कभी खोया ही न था बस आख मे तिल पड गया था।

इस पद को मै पूरा दोहरा देता हू, ताकि तुम्हारे हृदय मे गजता रह जाए

मन मस्त हुआ तब क्यो बोले।
हीरा पायो गाठ गठियायो, बारबार वाको क्यो खोले।
हल्की थी तब चढी तराजू, पूरी भई तब क्यो तोले॥
सुरत कलारी भई मतवारी, मदवा पी गई बिन तोले।
हसा पाये मानसरोवर, ताल-तलैया क्यो डोले॥
तेरा साहब है घर माही, बाहर नैना क्यो खोले।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, साहब मिल गए तिल ओले॥

बस इतना ही।